हिन्दी बाल साहित्य की रूपरेखा

डॉ॰ श्रीप्रसाद

हिन्दी बाल साहित्य की रूपरेखा

हिन्दी बाल साहित्य की रूपरेखा



डॉ० श्रीप्रसाद

लोकभारती प्रकाशन
१५-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-१

लोकभारती प्रकाशन
१५-ए, महात्मा गांधी मार्ग
इलाहाबाद-१ द्वारा प्रकाशित
●
प्रथम संस्करण : १९८५
●

●
वर्तमान प्रिंटर्स
इलाहाबाद-२ द्वारा मुद्रित

मूल्य : ६०.००

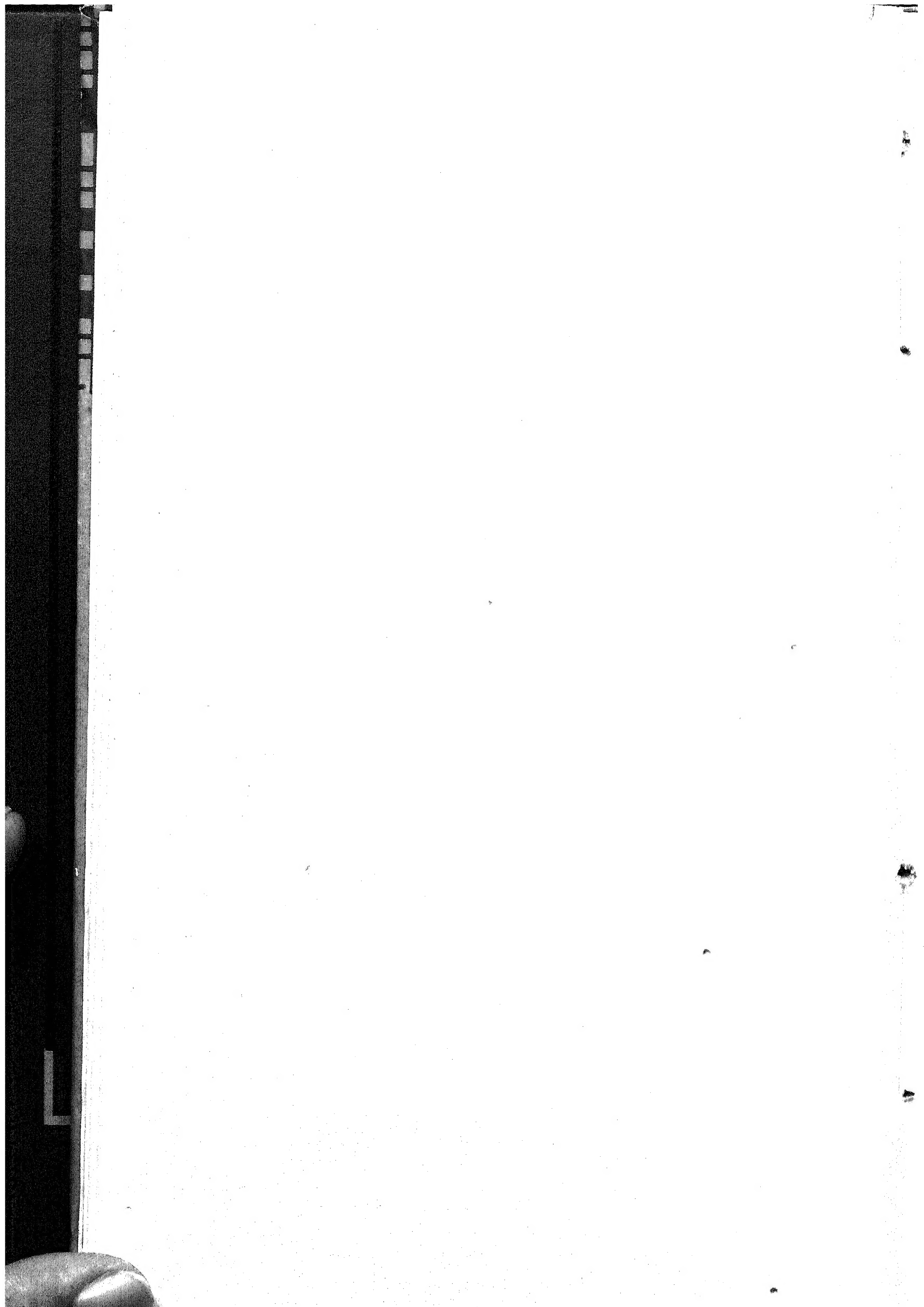
माँ

और

पिताजी

को

—श्रीप्रसाद



भूमिका

विगत सात दशकों से हिन्दी बाल साहित्य की क्रमिक परंपरा प्राप्त होती है। इस सुव्यवस्थित परंपरा के प्रथम साहित्यकार पं० श्रीधर पाठक माने जा सकते हैं, जिन्होंने बच्चों के लिए तोता, कोयल, तीतर आदि विषयों पर कविताएँ लिखीं। इन कविताओं में वे तत्त्व हैं, जिनसे कविता बालोपयोगी बनती है।

पर बाल साहित्य का विकास आधुनिक शिक्षा के साथ हुआ है और आधुनिक शिक्षा की शुरुआत भारतेंदु युग से भी पहले हो चुकी थी। इस शिक्षाक्रम में निर्मित की गई पुस्तकों के माध्यम से आधुनिक बाल साहित्य अस्तित्व में आ चुका था। इस प्रकार बाल साहित्य की परंपरा सात दशकों से भी पहले जाती है—संस्कृत साहित्य में या लोक कथाओं के माध्यम से अथवा मध्यकाल में जो बाल साहित्य निर्मित हुआ, वह अलग। पुराना जीवंत बाल साहित्य रह गया। पहले की पाठ्य-पुस्तकों के माध्यम से जो बाल साहित्य अस्तित्व में आया होगा, आज वह प्राय: उपलब्ध नहीं है। उपलब्ध क्रमिक परंपरा सात दशकों की ही है।

सात दशकों से काव्य, कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध आदि विधाओं के रूप में बाल साहित्य निर्मित हो रहा है। बाल पत्रिकाओं और सभी साहित्य विधाओं की बाल पुस्तकों से बाल साहित्य अब काफी समृद्ध हो चुका है।

ऐसे बाल साहित्य का अध्ययन रोचक ही नहीं, उपयोगी भी है। अंततः बाल साहित्य बालकों के व्यक्तित्व से सीधे जुड़ता है। ऐसी स्थिति में बाल साहित्य के स्वरूप के अनुसार ही बालकों का व्यक्तित्व गठित होगा। यों बाल साहित्य के अध्ययन का गंभीर शैक्षिक मूल्य है।

बाल साहित्य की पूरी परंपरा को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि स्वतंत्रता के पहले बाल साहित्य के प्रति मिशनरी दृष्टि थी, स्वतंत्रता के बाद के बाल साहित्य में कला का विकास हुआ। किंतु भावदृष्टि से बाल साहित्य का कुछ ह्रास भी हुआ। स्वतंत्रता के पहले की बाल कविता स्थूल थी, स्वतंत्रता के बाद कविता में कलात्मक प्रयोग के साथ सामान्य कोटि की कविताएँ भी लिखी गईं। कविता के प्रति कुछ बाल साहित्यकारों का दृष्टिकोण अस्पष्ट हो गया। कथा-साहित्य की पुरानी परंपरा के साथ आधुनिक स्वस्थ बाल कथा साहित्य का विकास हुआ। नाट्य विधा तो स्वातंत्र्योत्तर काल में ही अधिक विकसित हुई।

स्वातंत्र्योत्तर काल में बाल साहित्य को समृद्ध बनाने की भावना कम नहीं

अन्य भारतीय भाषाओं में गुजराती, मराठी, तमिल आदि कुछ भाषाओं का बाल साहित्य समृद्ध है, पर इन भाषाओं में अनुसंधान नहीं हुए हैं।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध बाल साहित्य के प्रति दृष्टि निर्मित करेगा और बाल साहित्य की अध्ययन परंपरा को आगे बढ़ायेगा, ऐसी मुझे आशा है।

—श्रीप्रसाद

विषय-सूची

विषय निरूपण

जन्म के समय बालक एक कोरे कागज के समान होता है। पृथ्वी पर आते ही उसकी पहली ध्वनि सुनाई पड़ती है 'कहाँ, कहाँ।' यह रोदन ध्वनि होती है। पर इस विषय में कवि कल्पना यह की गयी है कि शिशु पहली बार पृथ्वी पर आते ही कहता है 'कहाँ ?' अर्थात मैं किस लोक में आ गया—यह कैसा अपरिचित आश्चर्यलोक है ?

वस्तुतः बालक का रोदन एक शारीरिक प्रक्रिया मात्र है, किन्तु इतना सत्य है कि जैसे-जैसे उसका मानसिक विकास होता है—वह जागतिक आश्चर्यों का अनुभव करता जाता है।

शरीर विज्ञान की दृष्टि से जन्म के पहले सप्ताह में बालक भूख का अनुभव करता है, तापमान से प्रभावित होता है, सर्दी में काँपने लगता है, गर्मी में व्याकुल हो जाता है और पीड़ा का अनुभव करने लगता है। उसकी उँगलियों की जकड़ में कोई वस्तु आ जाय तो उसे छोड़ता नहीं तथा चमक और जोर की ध्वनियों को नापसंद करता है।

दूसरे सप्ताह में वह प्रकाश को देखने लगता है और प्रकाश के हटाए जाने पर दृष्टि से उसका पीछा करता है।

तीसरे सप्ताह में इन्हीं गुणों का और विकास होता है, किन्तु इसके साथ ही गाना गाए जाने पर वह ध्यान से सुनता है और माँ को पहचानने लगता है तथा उसे देखकर प्रसन्नता का अनुभव करता है।[1] अर्थात तीसरे सप्ताह से बालक का भावात्मक और ज्ञानात्मक विकास होने लगता है। संगीत की कोमल ध्वनियाँ उसके मनोरंजन का प्रथम माध्यम हैं और 'माँ' संसार का प्रथम ज्ञान है। यही संगीत आगे चलकर ध्वनि और लयपूर्ण काव्य बनता है और आश्चर्यमयी आनन्द-दायक माँ का विस्तार आश्चर्यपूर्ण ज्ञानमय विश्व तक हो जाता है।

---

1. शिक्षा मनोविज्ञान : ले० चंद्रावती लखनपाल, पृ० १७७।

बालक की शारीरिक और मानसिक अवस्थाएँ आगे भी विकसित होती रहती हैं, पर सूक्ष्म रूप में बालक के लिए साहित्य की आवश्यकता का प्रारंभ हो जाता है।

बालक की लगभग तीन वर्ष की वय वह वास्तविक अवस्था है जब बालक अपनी सीमा में 'घर' नामक अपने संसार से परिचित हो जाता है, अपने शरीर के अंगों को पहचानने लगता है और उसे छोटे-छोटे वाक्य बोलना आ जाता है। वह अपना नाम भी जान जाता है और बतला देता है तथा वस्तुओं के पृथक वैशिष्ट्य को समझने लगता है।

बाल साहित्य की वास्तविक आवश्यकता यहीं से प्रारम्भ होती है, क्योंकि इसी अवस्था पर आकर बाल साहित्य के आभोग की मानसिक क्षमता बालक में आ पाती है।

यह मानसिक क्षमता जन्म से लेकर पारिवारिक परिवेश में क्रमशः विकसित होती है। लौक ने लिखा है---मनुष्य का मन एक स्वच्छ काले तख्ते के समान है, जिस पर बिना लिखे कोई संस्कार अंकित नहीं होता। जिस प्रकार काले तख्ते पर लिखे जाने के कारण अनेक प्रकार के संस्कार अंकित हो जाते हैं, इसी प्रकार हमारे स्वच्छ मन पर वातावरण, जीवन अनुभवों के कारण अनेक संस्कार पड़ते हैं।[१]

लौक के द्वारा संकेतित क्रिया बालक की जन्मगत अवस्था से ही सम्बद्ध है, जिस पर धीरे-धीरे संस्कारों की लिपि की रचना होती जाती है जो तीन वर्ष की बाल्यावस्था पर आकर बालक के व्यक्तित्व को एक स्वरूप प्रदान करने लगती है।

बालक की तीन वर्ष की अवस्था से लेकर युवापूर्व अवस्था तक बाल्यावस्था है, जिसका भावात्मक और ज्ञानात्मक विकास की दृष्टि से अनेक रूपों में विभाजन किया गया है। एक विभाजन इस प्रकार है---

(१) शिशु अवस्था---तीसरे-चौथे वर्ष की आयु तक
(२) बचपन---आठ या नौ वर्ष की आयु तक
(३) पूर्व किशोर अवस्था---ग्यारह या बारह वर्ष की आयु तक
(४) उत्तर किशोर अवस्था---चौदह वर्ष की आयु तक
(५) कुमारावस्था---बीस वर्ष की आयु तक[२]

बाल्यावस्था का दूसरा विभाजन इस प्रकार है---

---

१. बालगीत साहित्य : ले० निरंकारदेव सेवक, पृ० ३ से उद्धृत।

२. चाइल्ड स्टडी : ले० रेंड जी० एच० डिक्स।

(१) पहली अवस्था—ढाई वर्ष की आयु से छः-सात वर्ष की आयु तक
(२) दूसरी अवस्था—छः-सात वर्ष की आयु से नौ वर्ष की आयु तक
(३) तीसरी अवस्था—नौ वर्ष की आयु से चौदह वर्ष की आयु तक
(४) चौथी अवस्था—चौदह वर्ष की आयु से बीस वर्ष की आयु तक[1]

तीसरा सर्वमान्य मनोवैज्ञानिक विभाजन इस प्रकार है—

(१) शिशु अवस्था—तीन से छः-सात वर्ष की आयु तक
(२) बाल्यावस्था—छः-सात से तेरह-चौदह वर्ष की आयु तक
(३) किशोरावस्था—तेरह-चौदह से सत्रह-अठारह वर्ष की आयु तक

उपर्युक्त तीनों अवस्थाओं में बालक की मानसिक स्थिति भिन्न-भिन्न होती है। बाल साहित्य के भी इन तीनों अवस्थाओं के अनुसार भेद किये गये हैं अर्थात् (१) शिशु अवस्था के लिए शिशु साहित्य, (२) बाल्यावस्था के लिये बाल साहित्य और (३) किशोर अवस्था के लिए किशोर साहित्य। मनोवैज्ञानिक दृष्टि के विकास के साथ-साथ बाल साहित्यकारों से भी यह अपेक्षा की गई कि वे इन्हीं तीनों वयवर्गों को दृष्टि में रखकर बाल साहित्य की रचना करें।

प्रारंभिक काल में इस मनोवैज्ञानिक वयवर्ग की जानकारी साहित्यकारों को नहीं थी। फलतः साहित्यकार संपूर्ण बाल जीवन को दृष्टि में रखकर साहित्य रचना करते थे और बाल पाठक अपनी रुचि के अनुसार चयन करके साहित्य ग्रहण करते थे।

पर व्यवहार में इस वय विभाजन का आभास साहित्यकारों को होने लगा था। इसी का परिणाम था कि 'बालसखा' मासिक के कुछ समय बाद ही 'शिशु' जैसी पत्रिका प्रकाशित हुई जो मुख्यतः शिशु वर्ग के लिए थी।

किन्तु उपर्युक्त वयवर्ग सामान्य आयु विभाजन है। इसमें निश्चित विभाजक रेखा खींचना सम्भव नहीं है। यह विभाजन एक अवस्था के सामान्य बौद्धिक और मानसिक गुणों पर निर्भर है। अन्यथा बुद्धिलब्धि (आई० क्यू०) और संस्कार वैभिन्न्य के कारण यह भी देखा गया है कि जो पुस्तक जिस आयुवर्ग के लिए निश्चित की गई उसका आनन्द आगे या पीछे के अन्य आयुवर्ग ने लिया। फिर भी यह वयवर्ग युक्ति संगत है और साहित्य रचना के लिये उपयोगी है, कारण इसका आधार विभिन्न आयु के बालकों का मानसिक स्तर है।

उपर्युक्त तीनों प्रकार की साहित्य श्रेणियों का विवेचन इस प्रकार है—

---

१. डंबिल : बालगीत साहित्य, पृ० ५ से उद्धृत।

बालक की शारीरिक और मानसिक अवस्थाएँ आगे भी विकसित होती रहती हैं, पर सूक्ष्म रूप में बालक के लिए साहित्य की आवश्यकता का प्रारंभ हो जाता है।

बालक की लगभग तीन वर्ष की वय वह वास्तविक अवस्था है जब बालक अपनी सीमा में 'घर' नामक अपने संसार से परिचित हो जाता है, अपने शरीर के अंगों को पहचानने लगता है और उसे छोटे-छोटे वाक्य बोलना आ जाता है। वह अपना नाम भी जान जाता है और बतला देता है तथा वस्तुओं के पृथक वैशिष्ट्य को समझने लगता है।

बाल साहित्य की वास्तविक आवश्यकता यहीं से प्रारम्भ होती है, क्योंकि इसी अवस्था पर आकर बाल साहित्य के आभोग की मानसिक क्षमता बालक में आ पाती है।

यह मानसिक क्षमता जन्म से लेकर पारिवारिक परिवेश में क्रमशः विकसित होती है। लौक ने लिखा है---मनुष्य का मन एक स्वच्छ काले तख्ते के समान है, जिस पर बिना लिखे कोई संस्कार अंकित नहीं होता। जिस प्रकार काले तख्ते पर लिखे जाने के कारण अनेक प्रकार के संस्कार अंकित हो जाते हैं, इसी प्रकार हमारे स्वच्छ मन पर वातावरण, जीवन अनुभवों के कारण अनेक संस्कार पड़ते हैं।[१]

लौक के द्वारा संकेतित क्रिया बालक की जन्मगत अवस्था से ही सम्बद्ध है, जिस पर धीरे-धीरे संस्कारों की लिपि की रचना होती जाती है जो तीन वर्ष की बाल्यावस्था पर आकर बालक के व्यक्तित्व को एक स्वरूप प्रदान करने लगती है।

बालक की तीन वर्ष की अवस्था से लेकर युवापूर्व अवस्था तक बाल्यावस्था है, जिसका भावात्मक और ज्ञानात्मक विकास की दृष्टि से अनेक रूपों में विभाजन किया गया है। एक विभाजन इस प्रकार है---

(१) शिशु अवस्था---तीसरे-चौथे वर्ष की आयु तक
(२) बचपन---आठ या नौ वर्ष की आयु तक
(३) पूर्व किशोर अवस्था---ग्यारह या बारह वर्ष की आयु तक
(४) उत्तर किशोर अवस्था---चौदह वर्ष की आयु तक
(५) कुमारावस्था---बीस वर्ष की आयु तक[२]

बाल्यावस्था का दूसरा विभाजन इस प्रकार है---

---

१. बालगीत साहित्य : ले० निरंकारदेव सेवक, पृ० ३ से उद्धृत।

२. चाइल्ड स्टडी : ले० रेंड जी० एच० डिक्स।

(१) पहली अवस्था—ढाई वर्ष की आयु से छः-सात वर्ष की आयु तक
(२) दूसरी अवस्था—छः-सात वर्ष की आयु से नौ वर्ष की आयु तक
(३) तीसरी अवस्था—नौ वर्ष की आयु से चौदह वर्ष की आयु तक
(४) चौथी अवस्था—चौदह वर्ष की आयु से बीस वर्ष की आयु तक[1]

तीसरा सर्वमान्य मनोवैज्ञानिक विभाजन इस प्रकार है—

(१) शिशु अवस्था—तीन से छः-सात वर्ष की आयु तक
(२) बाल्यावस्था—छः-सात से तेरह-चौदह वर्ष की आयु तक
(३) किशोरावस्था—तेरह-चौदह से सत्रह-अठारह वर्ष की आयु तक

उपर्युक्त तीनों अवस्थाओं में बालक की मानसिक स्थिति भिन्न-भिन्न होती है। बाल साहित्य के भी इन तीनों अवस्थाओं के अनुसार भेद किये गये हैं अर्थात् (१) शिशु अवस्था के लिए शिशु साहित्य, (२) बाल्यावस्था के लिये बाल साहित्य और (३) किशोर अवस्था के लिए किशोर साहित्य। मनोवैज्ञानिक दृष्टि के विकास के साथ-साथ बाल साहित्यकारों से भी यह अपेक्षा की गई कि वे इन्हीं तीनों वयवर्गों को दृष्टि में रखकर बाल साहित्य की रचना करें।

प्रारंभिक काल में इस मनोवैज्ञानिक वयवर्ग की जानकारी साहित्यकारों को नहीं थी। फलतः साहित्यकार संपूर्ण बाल जीवन को दृष्टि में रखकर साहित्य रचना करते थे और बाल पाठक अपनी रुचि के अनुसार चयन करके साहित्य ग्रहण करते थे।

पर व्यवहार में इस वय विभाजन का आभास साहित्यकारों को होने लगा था। इसी का परिणाम था कि 'बालसखा' मासिक के कुछ समय बाद ही 'शिशु' जैसी पत्रिका प्रकाशित हुई जो मुख्यतः शिशु वर्ग के लिए थी।

किन्तु उपर्युक्त वयवर्ग सामान्य आयु विभाजन है। इसमें निश्चित विभाजक रेखा खींचना सम्भव नहीं है। यह विभाजन एक अवस्था के सामान्य बौद्धिक और मानसिक गुणों पर निर्भर है। अन्यथा बुद्धिलब्धि (आई० क्यू०) और संस्कार वैभिन्न्य के कारण यह भी देखा गया है कि जो पुस्तक जिस आयुवर्ग के लिए निश्चित की गई उसका आनन्द आगे या पीछे के अन्य आयुवर्ग ने लिया। फिर भी यह वयवर्ग युक्ति संगत है और साहित्य रचना के लिये उपयोगी है, कारण इसका आधार विभिन्न आयु के बालकों का मानसिक स्तर है।

उपर्युक्त तीनों प्रकार की साहित्य श्रेणियों का विवेचन इस प्रकार है—

---

१. डंबिल : बालगीत साहित्य, पृ० ५ से उद्धृत।

(१) शिशु साहित्य

यह साहित्य तीन से छः वर्ष की आयु के बालकों के लिए है। इस अवस्था के बालक अपने परिवार से पूर्णतः परिचित होने के साथ-साथ परिवार के बाहर पशु-पक्षी जगत से परिचित होते हैं और उनकी क्रियाओं में आनन्द लेते हैं। बौद्धिक विकास की अपेक्षा इस अवस्था में भावात्मक विकास अधिक होता है। साथ के बच्चों से मिलकर खेलने की प्रवृत्ति बढ़ती जाती है। उनका प्रेम आत्म-केन्द्रित न रहकर सहजात बालकों के साथ बढ़ने लगता है।

इस अवस्था के बालकों का एक सीमा में भाषिक विकास भी होने लगता है। क्रमशः शब्दों से वाक्य रचना तक का ज्ञान उन्हें हो जाता है, किन्तु संयुक्त शब्दावली का अधिक ज्ञान नहीं हो पाता। वे सीधे सरल वाक्य ही लिखते पढ़ते हैं।

शिशु साहित्य की रचना इसी आधार पर होती है। चार से लेकर आठ पंक्तियों के शिशु गीत (नर्सरी राइम्स) इस अवस्था के अधिक उपयुक्त माने गये हैं। इस आयु के बच्चे सरल शिशु गीतों को याद भी कर लेते हैं और उनकी लय तथा मधुर शब्द योजना की सौंदर्यानुभूति भी करते हैं।

शिशुगीतों के अतिरिक्त पशु-पक्षियों के स्वरूप और उनकी क्रियाओं से सम्बन्धित तथा 'छाता', 'छड़ी', 'घर', 'पेड़' आदि अन्य विषयों पर छोटी-छोटी कविताएँ शिशुओं को रोचक लगती हैं। जैसे—

म्याऊँ, म्याऊँ म्याऊँ,
बोलो, आऊँ, आऊँ ?
दूध कहाँ रक्खा है ?
मक्खन कहाँ छिपाया ?
बहुत ढूँढ़ कर हारी,
बिस्कुट एक न पाया।
अब बोलो, क्या खाऊँ ?
म्याऊँ, म्याऊँ, म्याऊँ !
घर है खूब तुम्हारा,
चूहा एक न आता,
कहीं न चुहिया का भी
कोई बिल दिखलाता।
कैसे भूख मिटाऊँ ?
म्याऊँ, म्याऊँ, म्याऊँ !

ऐसे बालकों को पशु-पक्षियों से सम्बन्धित छोटी-छोटी सरल कहानियाँ और पशु-पक्षियों, पेड़-पौधों आदि से सम्बन्धित परिचयात्मक लेख दिए जा सकते हैं। हिन्दी में इस अवस्था के बालकों के लिए काव्य के अतिरिक्त कहानी और निबन्धों की विशेष रचना नहीं हुई। बँगला में पुण्यलता चक्रवर्ती ने छोटे बच्चों के लिए अनेक छोटी-छोटी कहानियाँ लिखी हैं।[१]

(२) बाल साहित्य

बालकों के लिए दूसरी श्रेणी में बाल साहित्य आता है। बालक की छः-सात से लेकर तेरह-चौदह वर्ष की अवस्था इसके अन्तर्गत आती है। इस अवस्था के आते-आते बालक का पर्याप्त बौद्धिक और भावात्मक विकास हो जाता है। खेलों में वह सरलता से जटिलता की ओर बढ़ता है और अध्ययन क्षेत्र क्रमशः विकसित होता चला जाता है। वह अपने देश का भौगोलिक और ऐतिहासिक ज्ञान प्राप्त करने के साथ ही विश्व ज्ञान की देहरी पर भी खड़ा हो जाता है।

भाषा के सभी स्तरों का भी उसका ज्ञान बढ़ जाता है। किन्तु यह अवस्था भावात्मक ही अधिक होती है। अतः उनके सामने एक हँसी-खुशी से पूर्ण और जीवनमय संसार आना चाहिए। इस अवस्था के साहित्य में जीवन के प्रति दृढ़ विश्वास और उमंग तथा उत्साह होना चाहिए।

बाल साहित्य के अन्तर्गत काव्य का क्षितिज अत्यन्त व्यापक हो जाता है। गहन व्यंजनापूर्ण, प्रेरणाप्रद तथा लम्बी-लम्बी कविताएँ बालक पसन्द करते हैं। नाट्य रूप में लम्बी कविताएँ प्रस्तुत की जा सकती हैं। काव्य की भाषिक बोझिलता इस अवस्था में बालकों को खटकती नहीं। खेद है कि कहानी को ही बाल साहित्य की एक मात्र विधा मानकर अपनी व्यावसायिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए कुछ बालपत्रिकाओं के सम्पादकों ने काव्य को पूरी तरह विकसित नहीं होने दिया। उन्हें किसी प्रकार यह भ्रम हो गया है कि बालक काव्य पसन्द नहीं करते। वास्तविकता यह है कि काव्य का बाल नाटकों में तो उपयोग सम्भव है ही, स्वयं कविताएँ नाट्य रूप में मंचित होकर आनन्द प्रदान करती हैं। स्वतन्त्रतापूर्व काल में काव्य की इन सम्भावनाओं की ओर दृष्टि गयी थी, स्वातंत्र्योत्तर काल में इन सम्भावनाओं का पूर्ण विकास नहीं हो पाया।

इसका एक कारण यह भी रहा है कि बालपत्रिकाओं के सम्पादक प्रायः गद्यविधा के साहित्यकार रहे हैं, जो काव्य की विविध सम्भावनाओं से परिचित

१. दे० बँगला बाल मासिक "संदेश" के विभिन्न अंक।

नहीं हैं। 'पराग' मासिक में एक हद तक कविता को उपयुक्त महत्त्व दिया गया था।

अंग्रेजी और बँगला बाल साहित्यकारों ने काव्य के विविध प्रयोग किए हैं। स्वयं रवीन्द्रनाथ टैगोर ने काव्य नाटक और छोटी कविताओं के साथ लम्बी बाल कविताओं की भी रचना की।

कविता में विचारों की उदात्तता के साथ शब्दों की युक्तियुक्त योजना से जो लय और संगीत की रचना होती है, वह सौंदर्य जगत की एक उपलब्धि है। कालरिज ने कविता को 'संगीतमय विचार'[१] कहा है। ई० ए० ग्रीनिग लैंबोने काव्यगत भाव के अतिरिक्त अकेले इस संगीतत्व से ही इतने अधिक प्रभावित हैं कि इसकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं--कविता का आनन्द मूलतः ऐंद्रिक होता है--शब्दों के अर्थ से स्वतंत्र इसमें आनन्दित करने की स्वाभाविक शक्ति होती है।[२]

बाल पत्र-पत्रिकाओं के द्वारा ऐसे महत्त्वपूर्ण काव्य की उपेक्षा विवेकपूर्ण नहीं है।

बाल साहित्य के रूप में विविध शैलियों के काव्य के अतिरिक्त बाल जीवन की समस्याओं से सम्बद्ध प्रतीकात्मक और सीधे बाल जीवन की कहानियाँ प्रस्तुत की जाती हैं। बालकों के मानसिक क्षितिज के विकास के लिए, भूगोल, इतिहास तथा विज्ञान से सम्बन्धित अनेक विषयों पर निबन्ध और पुस्तकें प्रस्तुत की जा सकती हैं। विश्व अपने समस्त आश्चर्यों के साथ वस्तुतः इसी अवस्था में दिखाई देता है।

इस अवस्था का एक काव्यांश प्रस्तुत है—

सागर तालों वाले हम
हरे दुशालों वाले हम,
अब कहते हैं तुम्हें विदा,
बादल भैया टा, टा, टा!

तुमने प्यासी धरती को,
नेह भरी बरसातें दीं,

---

१. पोइट्री इज ए म्यूजिकल थाट।

२. द डिलाइट आफ पोइट्री इज प्राइमरिली ए सेंसुअस वन—दैट इट हैज ए नेचुरल पावर टु चार्म इंडिपेंडेंट आफ द मीनिंग आफ इट्स वर्ड्स।

द रूडीमेंट्स आफ क्रिटिसिज्म : ले० ई० ए० ग्रीनिग लैंबोने, पृ० २६।

तुमने सूखे खेतों को,
मोती की सौगातें दीं,
छोटे और बड़े सबको,
खुशियों का मौसम बाँटा,
बादल भैया टा, टा, टा !

(३) किशोर साहित्य

बालक में किशोरावस्था का उदय तेरह-चौदह से लेकर सत्रह-अठारह वर्ष की वय तक होता है । शिशु और बाल्यावस्था के बाद यह तीसरी अवस्था क्रमशः आती है । इस अवस्था में किशोर में विशेष प्रकार का मानसिक परिवर्तन होता है । किंतु यह अवस्था एकाएक नहीं धीरे-धीरे आ पाती है ।

किशोरावस्था में आकर बालक कल्पनाजीवी बन जाता है । कल्पनाजीवी शिशु भी होता है, पर किशोर यथार्थ और कल्पना के अंतर को समझते हुए कल्पना जीवी बनता है, जबकि शिशु के सामने यथार्थ होता ही नहीं, केवल कल्पना होती है ।

उस अवस्था में जाकर किशोर का व्यक्तित्व भी बनने लगता है । अभिभावक भ्रमवश किशोर को बच्चा ही समझते रहते हैं, जब कि किशोर स्वयं निर्णय लेने, अपनी धारणा बनाने, रुचि अरुचि प्रकट करने और चिन्तन करने में समर्थ हो जाता है । इस स्थिति को न समझने के कारण ही कभी-कभी माता-पिता बालक के साथ प्रतिकूल व्यवहार कर बैठते हैं ।

इसी वय में बालक में चारों ओर के वातावरण को आँखों से देखने की इच्छा होती है । उसमें भ्रमणवृत्ति पनपती है । साथ ही स्वार्थ छोड़कर परार्थ भावना का विकास होता है । देश और जाति के लिए त्याग करने की इच्छा पैदा होती है । विजातीय के प्रति प्रेम भावना भी हृदय में घर करने लगती है—लड़कों का लड़कियों के प्रति और लड़कियों का लड़कों के प्रति प्रेम भाव बढ़ता है ।

वीरपूजा एक अन्य महत्वपूर्ण भाव है जो इस अवस्था में देखा जाता है । प्रत्येक बालक या बालिका किसी को महान् मान लेते हैं और उसकी प्रशंसा करते हैं ।[1]

किशोर साहित्य इन्हीं भावदशाओं को लेकर निर्मित होता है ।

इस अवस्था में भाषा पर भी किशोर का पूरा अधिकार हो जाता है । भाषागत जटिलता किशोर साहित्य में बाधक नहीं बनती । काव्य-व्यंजनाओं की

---

१. शिक्षा मनोविज्ञान : (किशोरावस्था) : ले० चन्द्रावती लखनपाल, पृष्ठ २३१-२३५ ।

सूक्ष्मता भी किशोर समझ लेते हैं।

हिंदी में शिशु साहित्य की भाँति किशोर साहित्य का भी अभाव है। पत्रिकाओं में एक मात्र पटना से प्रकाशित 'किशोर' मासिक है। 'पराग' की अनेक कहानियाँ किशोरवर्ग की रहती हैं, जबकि उसकी कविताएँ शिशु और बालवर्ग की होती है।

किशोरवर्ग की एक कृति इस प्रकार है—

झनझनझन बाजी रणभेरी, दुर्बल पहने कोपीन दीन
नत मस्तक, ले उन्नत विरोध, मैं चला युद्ध करने नवीन
ढालों में, ना तलवारों में, अब नाज न मुझे प्रहारों में
मैं चला जीतने अरि का उर, कुछ प्यार भरी मनुहारों में
दृग जल की करुणाधारा से, लेगा मन का दुर्भाव छीन
नतमस्तक, ले उन्नत विरोध, मैं चला युद्ध करने नवीन।[१]

जहूरबख्श का वर्गीकरण

बाल साहित्य के प्रमुख लेखक जहूरबख्श ने नया वर्गीकरण किया है। उन्होंने बाल साहित्य को तीन श्रेणियों में बाँटा है—

(१) **शिशु साहित्य (६-१० वर्ष)**
(२) **बाल साहित्य (१०-१५ वर्ष)**
(३) **कन्या साहित्य**[२]

जहूरबख्श का यह वर्गीकरण अवैज्ञानिक भी है और अपूर्ण भी। बालक बालिकाओं के मनोभावों में इतना अंतर नहीं होता कि बालिकाओं के लिए अलग साहित्य की कल्पना की जाय। जिन मूल्यों को बाल साहित्य के द्वारा स्थापित किया जाता है, वे बालक बालिका, दोनों के लिये समान महत्त्व के हैं। बालक-बालिका दोनों की जीवन प्रक्रिया में भी विशेष अंतर नहीं है। यदि कुछ अंतर है तो वह अत्यंत सामान्य और व्यक्तिगत है, जिसका बाल साहित्य के व्यापक मूल्यों से कोई संबंध नहीं।

यह वर्गीकरण अपूर्ण भी है, क्योंकि इसमें किशोर साहित्य पर विचार नहीं हुआ है। लेखक ने दो ही प्रकार के साहित्य की कल्पना की है, जबकि बाल्यावस्था से युवापूर्व अवस्था (१५ से २० वर्ष) के बीच के वय के लिये साहित्य नहीं है।

---

१. **नवीन योधा : ले० सोहनलाल द्विवेदी : कुमार, नवंबर, १९३९।**
२. **बाल साहित्य का निर्माण : सुधा : नवंबर-दिसंबर, १९२८।**

वस्तुतः यह वर्गीकरण बाल साहित्य की प्रारंभिक अवस्था में किया गया था। उस समय शिशु साहित्य और बाल साहित्य, दो ही वयवर्गों के लिए साहित्य रचना हो रही थी। किशोर वय के लिए साहित्य की अपेक्षा उस समय नहीं सोची गई थी।

आज हिंदी में तीनों वयवर्गों के लिए साहित्य रचना हो रही है, किंतु हिंदी बाल साहित्य के लगभग सात दशकों के इतिहास में सबसे अधिक बालवर्ग का साहित्य है, फिर शिशु साहित्य और तब अल्प मात्रा में किशोर साहित्य। इसका प्रमुख कारण किशोरों की इकाई को पहचानने का अभाव है। किशोर इकाई अत्यंत जटिल होती है। इसमें कभी बाल्यावस्था का भ्रम होता है, कभी युवावस्था का। फलतः जितनी आसानी से शिशु या बालवर्ग को कल्पना से पकड़ा जा सकता है, किशोर वर्ग को नहीं।

किन्तु अब किशोरों के लिए साहित्य रचना हो रही है और साहित्यकार इनकी मनोदशाओं को पकड़ने में सफल हुए हैं।

बाल साहित्य की परिभाषा तत्त्व और क्षेत्र

(अ) बाल साहित्य की परिभाषा

बाल साहित्य उतना ही पुराना है, जितना बालवर्ग। जिस दिन बालक ने पहली बार अपनी ज्ञान की आँख खोली होगी, उसके चारों ओर का परिवेश एक रहस्यमय बालगीत या एक अनपढ़ी कहानी के रूप में उसके सामने आया होगा। इस रहस्यमय गीत को समझाने और इस अनपढ़ी कहानी को पढ़ाने का प्रयत्न किया होगा बड़ों ने, बालक के माता-पिता आदि ने।

माता-पिता आदि के सामने रोते हुए बालक को मनाने की भी समस्या आई होगी। और इस समस्या को सुलझाने के लिए उसने कुछ गुनगुनाया होगा, रंग-बिरंगे पशु-पक्षियों या रात के समय चाँद और तारों को दिखाया होगा। पेड़-पौधे, फूल-पत्तियाँ भी उसके आश्रय बने होंगे।

तात्पर्य यह कि बालक को समझाने और उसका मनोरंजन करने की एक स्थिति पैदा हुई होगी, जिसने क्रमशः विकसित होकर बाल साहित्य का रूप ग्रहण किया। प्रारंभ का यह बाल साहित्य बालक के चतुर्दिक जीवन से ही संबद्ध था जिसमें पशु-पक्षी, पेड़-पौधे, नदियाँ-तालाब तथा धरती और आकाश विशेष रूप से थे। प्राचीन युग का यह बाल साहित्य पुरालोक कथाओं के रूप में आज भी सुरक्षित है। यद्यपि यह साहित्य केवल बालकों के लिए नहीं है, मानव के जीवन संघर्ष और सांस्कृतिक विकास की इसमें सरणि भी है, पर इसमें बाल साहित्य के भी तत्त्व हैं और अनेक कहानियाँ बालोपयोगी हैं।

इस तमा

में यह

गतियों

का आन

बाल

निहित है

अत

तीनों के

कल्पना और

(इ) बाल

बाल

काव्य के

कहानियाँ भी

तादात्म्य

और समन्वया

के माध्यम

का समन्वय

हैं। वे नये

हैं जिसके लि

बाल साहि

अभिव्यक्ति होगी

भी होती है

हुआ था। गोर्की

1. है डिडि

द कैट पै

द काउ

द लिटि

टु सी

ऐंड द डि

—वेड टा

का मानसिक विकास पहले की अपेक्षा अधिक है। फलतः
ोक कथाएँ बालकों की हो गई हैं। इस स्थिति की कल्पना
क ने न की थी। उन्होंने लोक कथाएँ अपने ऐतिहासिक
त्र की थीं, किंतु उनका प्रकाशन बालकों के लिए हुआ और
लक उन सरस कथाओं को हृदय पर आसीन किए हुए हैं।
भारतीय भाषाओं की लोक कथाओं की भी यही स्थिति
लोक कथाएँ एक अर्थ बड़ों के लिए देती हैं, तो दूसरी ओर
गत सरलता के कारण बालकों के उपयोग की भी हो जाती
ए ग्रिम की कहानी 'सोती सुन्दरी' (स्लीपिंग ब्यूटी) का
और उसका जागरण बसंतकाल। सिंड्रेला की विजय का
के बाद उदित होनेवाला प्रातःकालीन ज्योतिर्मय सूर्य हो

हुआ कि वह साहित्य, जिसकी रचना बालकों के लिए या
खकर नहीं की गई थी, पर जिसे बाद में बालकों ने अपना
ो है। 'अन्ततः बाल साहित्य की कसौटी बालक ही हैं। वे
कि कौन साहित्य बाल साहित्य है, कौन नहीं—अभिभावक,
हाँ तक कि लेखक भी यह निर्णय नहीं कर सकते।'[1]
आज क्लासिक मानी जानेवाली अनेक बाल साहित्य की
के लिए निर्मित नहीं हुई थीं। नडैनियल डिफो ने रोबिंसन
के लिए की थी और न जोनाथन स्विफ्ट ने 'गुलिवर की
लिखी थी। ये आज से ढाई सौ वर्ष पूर्व की व्यंग्य कृतियाँ
ोकर रह गई हैं। रामायण और महाभारत की अनेक कहा-
की कथाएँ अथवा जातक आदि की कहानियाँ भी आज
हैं; जबकि इनके रचयिताओं ने संभवतः स्वप्न भी नहीं
अपनाएँगे।
साहित्य की परिभाषा इस प्रकार होगी—'वह समस्त
हत्य के तत्त्व हैं, अथवा जिसे बालकों ने पसन्द किया है,
लतः बालकों के लिए न हुई हो, बाल साहित्य है।'

ा द ऐंड, नाट द पेरेंट्स, द टीचर्स, द प्रीचर्स, नाट
वल्ड्रेन देमसेल्वज टू डेटरमिन व्हाट देयर लिटरेचर इज
आफ चिल्ड्रेंस लिटरेचर : ले० कार्नेलिया मीग्स, भूमिका,

(आ) बाल साहित्य के तत्त्व

बाल साहित्य के तत्त्वों का अनुसंधान बाल मनोविज्ञान के अध्ययन तथा बाल-जीवन के निरीक्षण से संभव है। बाल मनोविज्ञान का विकास भी बालजीवन के निरीक्षण से ही हुआ है। यही कारण है कि अनेक श्रेष्ठ बाल साहित्यकार बालकों के बीच में रहे हैं। 'आश्चर्यलोक में एलिस' के रचयिता ल्यूइस केरोल सदा बच्चों के बीच में रहते थे। रूस के सुप्रसिद्ध बाल साहित्यकार कानेई चुकोवस्की भी बच्चों के साथ अपना समय बिताते थे। इस निरीक्षण से बालकों के मनोजगत और उनके भाषिक स्तर को पकड़ने में मदद मिलती है।

बाल मनोजगत को प्राप्त करने का एक उपाय अपनी बाल्यावस्था की स्मृतियाँ जगाना भी है। यदि साहित्यकार अपनी प्रौढ़ावस्था को छोड़कर अपनी बाल्यावस्था की स्मृतियाँ जगा ले और उस वास्तविकता में लीन हो जाय, तब भी उसे बाल साहित्य रचना के कल्पना सूत्र प्राप्त हो सकते हैं। अधिकांश साहित्यकार अपनी स्मृतियों और बालजीवन की कल्पना से ही बाल साहित्य के तत्त्वों तक पहुँचते हैं। जिस साहित्यकार में बालकों के प्रति जितनी अधिक सहानुभूति होगी, वह उतनी ही अच्छी बाल साहित्य की रचना कर सकेगा।

तत्वतः बाल साहित्य रचना एक ऐसे लोक का निर्माण है, जिसमें बच्चे मनःशांति का अनुभव करें, नन्हें बालजीवन की अनुभव सीमा में साहस, सक्रियता और जीवन और आनन्द और दुख भी—सबकी बालक को अनुभूति हो जाय। इसके साथ ही 'रोचकता और महत्ता हो और कथ्य ऐसी भाषा में सजाया गया हो कि बालपाठक उसे ग्रहण कर ले और उसमें साहित्यिक वैशिष्ट्य भी आ जाय।'[1]

बाल साहित्य में बालकों के उस लोक का उद्‌घाटन होता है, जो बालकों का अपना है। उनका हर्ष, विषाद, अनुभूतियाँ बड़ों के जीवन से भिन्न होती हैं। उनका मानस लोक ही पृथक होता है। बड़ों के लघु रूप तो वे कदापि नहीं होते। दुनिया को देखने का उनका अपना जीवन दर्शन होता है, जिसकी तर्कना उनकी अपनी होती है। अंग्रेजी के एक लोकप्रिय शिशुगीत में कहा गया कि 'बिल्ली बाजा बजा रही है, गाय उछल कर चाँद पर पहुँच गई है, नन्हा कुत्ता

---

1. ए क्रिटिकल हिस्ट्री आफ चिल्ड्रेंस लिटरेचर : ले० कार्नेलिया मीग्स, पृ० ३४४।

चिढ़ नहीं

तैयारी के

बालक

मुख्य रूप से

साहित्य उपयु

है अथवा बा

बाल सा

स्रजित बाल

तक बाल सा

साहित्य

सही उपयोग

साहित्य के रूप

पूर्णतः बालको

जासूसी साहित्य

है, थोड़ी देर के

यथार्थ जीवन

कीय नायकों से

और साहसी प्राणी

का अन्वेषण कर

करते हैं ।[२]

यद्यपि यह

की पुस्तकों से

सकता है । आज

और एक सीमा

रहा है और ऐसा

बाल साहित्य

एक लघु कहानी

१. नथिंग इज

इज मीयरली ए प्रि

—रायटिंग फा

२. चिल्ड्रेन एंड बुक्स

ाली चम्मच सहित भाग जाती है ।[१]

ही तर्कातीत हो, पर बालकों की दुनियाँ

यधिक कल्पनाजीवी होते हैं, अतः विसं-

ोति पैदा कर लेते हैं और उस कल्पना

यों में भी, बालकों की इन कल्पनाओं में

ाल्यावस्था, और चाहे किशोरावस्था—

और उनकी जीवन पद्धति में हैं । उर्वर

न्हें सहज में प्राप्त किया जा सकता है ।

व्यापक है, जितना बालजीवन । बालक

ालित्य प्रधान रचना चाहते हैं तो ऐसी

में वे खो जायँ, जिनके नायक से

ीवन की आशा आकांक्षा, हर्ष, विषाद

ाल साहित्य में चाहते हैं । वे साहित्य

टन चाहते हैं, नवीन और प्राचीन

ों का भी वे अनन्त विस्तार चाहते

ों को देखने की भी अभिलाषा करते

से भागते हैं ।

स्त मनोकांक्षाओं और भावनाओं की

क्षेत्र की अभिव्यक्ति उस पत्रोत्तर से

मैक्सिम गोर्की को बालकों से प्राप्त

ा पत्र प्रकाशित कराया था, जिसके

न प्लेजर बुक्स : लंदन

उत्तर में बच्चों ने लिखा था कि---हम, दुनियाँ में जो कुछ है, उस सबके विषय में पुस्तकें चाहते हैं। हम रूस के महान पुरुषों के विषय में पुस्तकें चाहते हैं, जिन्हें हम अपना मार्गदर्शक बना सकें। हम परी कहानियों की पुस्तकें चाहते हैं, वैज्ञानिक उपन्यास चाहते हैं, उल्लासपूर्ण कविताएँ चाहते हैं और विनोदपूर्ण कहानियाँ चाहते हैं।

उपर्युक्त कथन के अनुसार बाल साहित्य की सीमा अत्यन्त विस्तृत हो जाती है। वस्तुतः काव्य, कहानी, उपन्यास, नाटक, निबन्ध, यात्रावृत्त, स्थान परिचय और रिपोर्ताज—सभी कुछ बाल साहित्य के अन्तर्गत आता है और इन सभी विधाओं में बाल साहित्य की रचना होनी चाहिए। वर्तमान में बाल कहानी की रचना सर्वाधिक हो रही है, अनंतर बालकाव्य है, शेष विधाओं में साहित्य रचना बहुत कम है।

केवल कहानी रचना को सर्वाधिक महत्त्व देने में बाल पत्रिकाओं के सम्पादकों का भी आग्रह है। वास्तविकता यह है कि कहानी बालक के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण करने में असमर्थ है। बालकों में कहानी की अधिक रुचि का कारण उनमें इस रुचि का बढ़ाया जाना भी है। श्री आनन्दी प्रसाद मिश्र लिखते हैं—भारतवर्ष में आमतौर पर यह ख्याल किया जाता है कि छोटे बच्चों के लिए कहानियों से बढ़कर अधिक दिलचस्प की और दूसरी नहीं है। परन्तु विद्वानों की सम्मति इसके विरुद्ध है। वे कहते हैं कि अगर बच्चों को कहानियाँ पढ़ने और सुनने का आदी बना दिया गया तो वे इसी शौक में पड़ जाएँगे और दूसरी लाभप्रद वस्तुओं की ओर ध्यान भी न देंगे। अनुभवी विद्वानों ने मालूम किया है कि कहानियों से पहले उनमें आविष्कार की रुचि उत्पन्न होती है और बालकों का जीवन ही इतना सुन्दर होता है कि उसे औरों के जीवन अर्थात कहानियों पर ध्यान देने का अवकाश ही नहीं मिलता।[1]

आज कहानी की सर्वाधिक रचना के कारण बाल साहित्य की अन्य विधाएँ दब गईं हैं, जो बाल साहित्य के समग्र विकास के लिए उचित नहीं है।

अध्ययन का उद्देश्य

बाल साहित्य का सम्बन्ध सीधा बालकों की व्यक्तित्व रचना से है। आज यह तथ्य भलीभाँति सामने आ चुका है कि बालक न मानव का अल्प रूप है, न भविष्य की तैयारी में लीन कोई प्राणी। 'उसे इससे बढ़कर और किसी बात से

१. बच्चों के लिए पाठ्य पुस्तकें: ले० आनन्दी प्रसाद मिश्र, विद्यार्थी मासिक : फाल्गुन सं० १९८० वि०।

चिढ़ नहीं कि उसे यह बताया जाय कि उसका वर्तमान तो सिर्फ भविष्य की तैयारी के लिए है।'[१]

बालक का मानसिक विकास प्रारम्भ होते ही पाठ्य पुस्तकों के रूप में और मुख्य रूप से पाठ्येतर बाल साहित्य से बालक का संबंध होता है। यदि यह बाल साहित्य उपयोगी नहीं हुआ तो बालकों के स्वतंत्र व्यक्तित्व का ह्रास हो सकता है अथवा बालकों की पूरी की पूरी पीढ़ी भ्रमित हो सकती है।

बाल साहित्य के रूप में बालक बहुत बड़ी उपलब्धि करता है। किन्तु यह सृजित बाल साहित्य के वास्तविक अध्ययन से ही प्रतीत हो सकता है कि यह कहाँ तक बाल साहित्य के मूलभूत सिद्धांतों के अनुकूल है।

साहित्य सर्जना मानसिक क्रिया है। साहित्य की विधाओं का जिस प्रकार सही उपयोग होता है, उसी प्रकार गलत उपयोग भी संभव है। आज बाल-साहित्य के रूप में बालकों को ऐसा साहित्य भी प्रदान किया जा रहा है, जो न पूर्णतः बालकों के मानस स्तर का है और न उनके व्यक्तित्व का विधायक। जासूसी साहित्य की प्रकृति इस प्रकार की है कि 'पाठक उसमें तन्मय तो होता है, थोड़ी देर के लिए अपने को भूल भी जाता है, पर ऐसे साहित्य से बालक के यथार्थ जीवन की किसी समस्या का समाधान नहीं होता। कारण, कच्चे पुस्तकीय नायकों से अपना तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं और जब ये चरित्र बुद्धिमान और साहसी प्राणी सिद्ध होते हैं, उस समय नन्हें पाठक अपने में नवीन साहस का अन्वेषण करते हैं, प्रतिस्पर्धी अथवा महान् कार्य के लिए नई योग्यताएँ प्राप्त करते हैं।[२]

यद्यपि यह सत्य है कि जीवन रचना मात्र पुस्तकों से नहीं होती, पर साहित्य की पुस्तकों से जीवन काफी सुसंस्कृत, ज्ञानपूर्ण और मनोरंजन युक्त बनाया जा सकता है। आज के शिक्षा-दीक्षा के युग में तो साहित्य अनिवार्य हो गया है और एक सीमा में वह बालकों के व्यक्तित्व गठन में आधारशिला का कार्य कर रहा है और ऐसा करने की उसमें पूर्ण क्षमता है।

बाल साहित्य की उपयोगिता के संबंध में एक उदाहरण देना उपयुक्त होगा। एक लघु कहानी में एक पिता अपनी पुत्री को कहानी सुनाता है। पुत्री गंदे पाँवों

---

१. नथिंग इज मोर रिपगनेंट टु ए चाइल्ड देन टु बी टोल्ड दैट हिज प्रेजेंट इज मीयरली ए प्रिप्रेरेशन फार व फ्यूचर......।

—रायटिंग फार चिल्ड्रेन टु डे, व्हाई ऐंड हाऊ? पृ० ३।

२. चिल्ड्रेन ऐंड बुक्स : ले० मे हिल आरबथनाट, पृ० ६।

आकर फर्श को गंदा कर देती है। पिता कहानी में उसके जैसी ही एक लड़की की कहानी में बताता है कि वह अपने गंदे पैरों से फर्श गंदा कर दिया करती थी। श्रोता बालिका दौड़कर जाती है और बिना कहे अपने पैर धो डालती है। बालिका पर कहानी का यह मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है।

कहानी यहीं समाप्त भी हो जाती है। वास्तव में इस सोद्देश्य कहानी में आगे कुछ कहने को था भी नहीं। साहित्य के इस माध्यम द्वारा अनेक बालकों को प्रभावित किया जा सकता है या इस प्रकार उनका मानसोपचार किया जा सकता है। यह एक प्रकार का ग्रंथोपचार (बिबलियो थिरैपी) है। बाल साहित्य अज्ञात रूप से बालकों का यही मानसोपचार करता है।

बाल साहित्य के द्वारा बालक अपनी दुष्प्रवृत्तियों के रेचन (कथारसिस) में भी सफल होता है। जो हिंसापूर्ण और समाजघाती प्रवृत्तियाँ उसे कभी-कभी मार्गभ्रष्ट करने पर उतारू हो जाती हैं, वे बाल साहित्य के तदनुरूप घटना चक्र से हृदय से निकल जाती हैं और बालक अपने को स्वस्थ-तनावहीन अनुभव करता है।

मनोरंजन और ज्ञानवृद्धि का तो बाल साहित्य अद्वितीय माध्यम है।

बालकों के संदर्भ में बालसाहित्य की इसी अनिवार्यता को दृष्टि में रखकर विश्व के शिक्षाविदों और साहित्य समीक्षकों ने बाल साहित्य का अध्ययन किया है। रचनाशैली से लेकर विचार सरणि तक बाल साहित्य चिंतन और अध्ययन का विषय है। बच्चों के सर्जक ल्यूइस कैरोल ने 'आश्चर्यलोक के एलिस' की रचना करते समय ऐसी भाषा का उपयोग किया जो एक ओर बालकों की अपनी भाषा है, तो दूसरी ओर वह अत्यंत व्यंग्यपूर्ण है, इतनी व्यंग्यपूर्ण कि उसके कुछ वाक्य खंड मुहावरे बन गए। एक श्रेष्ठ बाल साहित्य सर्जक किसी भी महान् साहित्य सर्जक से कम नहीं होता है।

बाल साहित्य के अध्ययन की उपादेयता सही बाल साहित्य को पहचानने में तो सहयोगी होती ही है, इससे बड़ों के साहित्य और बाल साहित्य के भेद को समझने में भी सहयोग मिलता है। जैसे कभी-कभी समीक्षक सूरदास के बाल वर्णन को पढ़कर उन्हें महान् और आदि बाल साहित्यकार सिद्ध करने लगते हैं।[1] वास्तव में सूरबाल साहित्यकार नहीं हैं। एक बच्चे या बालकृष्ण के विषय में लिखा गया उनका भक्ति प्रधान काव्य बच्चों के लिए नहीं, बड़ों के लिए है। 'जो सुख सूर अमर मुनि दुर्लभ, सो नित जसुमति पावै' उक्ति बालक कृष्ण के वर्णन में ही कही गयी है। बाल पाठकों के लिए इस युक्ति की क्या उपयोगित्ता ?

---

१. बालगीत साहित्य : ले० निरंकारदेव सेवक, पृ० १२१।

सूर का बालवर्णन महान् है, पर बालकाव्य नहीं।

बाल साहित्य में बालकों की एक पीढ़ी अपने ऐतिहासिक और सांस्कृतिक रूप में निबद्ध हो जाती है। बालकों के सांस्कृतिक अध्ययन के लिए अब तक का बालसाहित्य ऐतिहासिक पृष्ठभूमि प्रदान करता है।

अतः बाल साहित्य के अध्ययन से अनेक उद्देश्य एक साथ सिद्ध होते हैं। यह एक प्रकार से बालजीवन का मनोरंजक अध्ययन है। इस अध्ययन का सामाजिक मूल्य भी है—आगे की समाज रचना बालकों के व्यक्तित्व पर निर्भर है, जिनका आधार बाल साहित्य है। पाल हैजार्ड ने लिखा है कि 'बाल पुस्तकों से इंग्लैंड का पूर्णरूप से पुनर्निर्माण किया जा सकता है[1] इसके मूल में बाल साहित्य के सामाजिक मूल्य ही निहित हैं।

इस प्रकार बाल साहित्य का अध्ययन केवल शिक्षाविदों के लिए ही नहीं, बाल साहित्यकारों, बाल कल्याणकर्ताओं और अभिभावकों तक के लिए महत्व-पूर्ण है।

१. इंग्लैंड कुड बी रिकंस्ट्रक्टेड ऐंटायरली फ्राम इट्स चिल्ड्रेंस बुक्स : ले० पालहैजार्ड : ए क्रिटिकल हिस्ट्री आफ चिल्ड्रेंस लिटरेचर : मीग्स, पृ० १३।

संस्कृत और पालि में बाल साहित्य की परंपरा : विश्लेषण और विवेचन

पूर्वपीठिका—संस्कृत साहित्य विश्व का प्रचीनतम साहित्य है। वाङ्मय की विविध विधाओं का उसमें सम्यक् विकास हुआ है। वेदों, पुराणों तथा परवर्ती काव्यों और शास्त्रों का संस्कृत में विपुल भंडार है। प्राकृत भाषा के विकास के पूर्व तक सहस्रों वर्षों की संस्कृत साहित्य की विशाल परंपरा है। अतीत के रचयिताओं ने वेदों की ऋचाओं में स्वर संधान किया, अपने सामाजिक, वैयक्तिक और आन्तरिक जीवन का अर्थ प्राप्त किया तो आदिकवि वाल्मीकि ने रामायण में रामगान छेड़ा। वाल्मीकि रामायण जीवन और जगत की अभिव्यक्ति है।

इसी युग के आस-पास अन्य महान मनीषी व्यास हुए जिनका महाभारत जीवन के महान प्रश्नों को उठाता है। वह वस्तुतः भारत के महत रूप का परिचायक है और इसी अर्थ में वह महाभारत है। भास अपने नाटकों के लिए प्रसिद्ध हैं जिनसे आदि भारत की नाट्य प्रवृत्तियों का परिचय मिलता है। इसी प्रकार कादंबरीकार अलंकृत गद्य के स्रष्टा बाण, सौंदरनंद काव्य के रचयिता बौद्ध कवि अश्वघोष तथा विश्वविख्यात महाकवि कालिदास से लेकर राधाकृष्ण के ललित जीवन के अमर गायक जयदेव तक संस्कृत साहित्य की श्रेष्ठता अक्षुण्ण है।

बाल साहित्य

इस विशाल काव्य, नाट्य और गद्य की परंपरा में बाल साहित्य को प्रथम दृष्टि में ही पृथक् कर लेना संभव नहीं है। निश्चित रूप से इस भंडार में बाल साहित्य का वह स्वरूप नहीं है, जो आज है। आज बाल शिक्षा और बाल जीवन दोनों का स्वतंत्र अस्तित्व है। परिणामस्वरूप आज बाल शिक्षा भी पृथक है और बाल साहित्य भी। फिर उस युग की सामाजिक व्यवस्था भी आज की सामाजिक व्यवस्था से भिन्न थी।

अतीत का युग, जब संस्कृत साहित्य की रचना हुई, चतुर्वर्ण प्रधान था। संपूर्ण समाज ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णों में विभाजित था। शास्त्रानुसार चारों वर्णों के कार्य भी निश्चित थे। नियमतः शिक्षा का कार्य केवल ब्राह्मणों से संबद्ध था। उन्हीं के बालक अध्ययन कर शिक्षा की परंपरा को आगे बढ़ाते थे। यह माना जा सकता है कि यह परंपरा बहुत कड़ी नहीं रही होगी और ब्राह्मणेतर वर्ण भी कुछ शिक्षा प्राप्त कर लेते होंगे, पर इसे अपवाद ही माना जायगा। साहित्यचिंतन और मनन की क्षमता पैदा कर सकने वाली शिक्षा ब्राह्मणों को ही मिल पाती थी।

ब्राह्मण वर्ग को जो शिक्षा दी जाती थी वह थी साहित्य, दर्शन, व्याकरण, न्याय, ज्योतिष आदि की। इसमें बालकों की विशिष्ट शिक्षा का ऐसा कोई स्वरूप नहीं है, जितना परंपरित शिक्षा का। ऐसी स्थिति में संस्कृत में बालकों के लिए उनकी भावनाओं, प्रवृत्तियों-संक्षेप में उनकी अपेक्षाओं के अनुसार साहित्य रचना की विशिष्ट परंपरा विकसित नहीं हुई।

पर यह बात लिखित साहित्य के लिए ही कही जा सकती है। मौखिक साहित्य की परम्परा में बच्चों को सुनाने के लिए कहानियाँ अवश्य रही होंगी। भारत कथा साहित्य की जन्मभूमि रहा है। विश्व की अनेक लोककथाओं के स्रोत पंचतंत्र और कथासरित्सागर में हैं। और ये कहानियाँ प्रारम्भ में मौखिक रही हैं, अनन्तर इन्हें लिखित रूप प्राप्त हुआ है।

मौखिक रूप से कहानियाँ सुनाने की एक विशेष शैली होती है। कुछ ही व्यक्ति कहानी सुनाने की कुशलता प्राप्त कर पाते हैं। इन क़िस्सेबाज या कहानी सुनानेवालों की शैली प्रायः नाटकीय होती है। तभी श्रोता आकर्षित होता है।

ऐसे आदिकालीन क़िस्सेबाज प्राचीनकाल में बड़ों के साथ-साथ बच्चों को भी कहानियाँ सुनाते ही होंगे। बच्चों को सुनाई जाने वाली उनकी कहानियों में सामान्यतः पशु-पक्षियों का आधार होता होगा, जिनके माध्यम से वे आदर्शात्मक या उपदेशात्मक निष्कर्ष प्रस्तुत करते होंगे। बाल साहित्य की कहानियों से परिपूर्ण विष्णुशर्मा कृत 'पंचतंत्र' तथा नारायण पंडितकृत 'हितोपदेश' की कहानियों के पशु-पक्षियों का आधार उसी परम्परा से जुड़ा हुआ दिखाई देता है।

क़िस्सा कहनेवाले वयोवृद्ध ग्रामीणों का उल्लेख कालिदास के मेघदूत[1] में भी प्राप्त होता है। ये ग्रामवृद्ध राजा उदयन की कथा सुनाते हैं। ऐसे कहानी

१. **मेघदूत : पूर्वमेघ, श्लोक संख्या ३५।**

कुशल ग्रामवृद्धों की परम्परा आज भी सुरक्षित है जो गाँव में बड़ों को और बच्चों को कहानी सुनाकर उनका मनोरंजन करते हैं।

मौखिक कथा परम्परा का प्रभाव महाकाव्यों तथा अन्य कृतियों में भी दिखाई देता है। संस्कृत साहित्य के ग्रंथों में कुछ ऐसी कहानियाँ उपलब्ध होती हैं जो बालकों के उपयोग की भी हैं। ऐसी कहानियाँ वाल्मीकि रामायण में भी हैं और महाभारत में भी। आगे इन कहानियों का विवेचन किया जायगा।

और लिखित परम्परा में पंचतंत्र और हितोपदेश के अतिरिक्त भासकृत 'बालचरित' नाटक भी है, जिसकी रचना बालकों के लिए हुई है।

यह पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि प्राचीनकाल के साहित्यकार का उद्देश्य बाल साहित्य की विधा के रूप में बाल साहित्य रचना नहीं था। अपने साहित्य से वह अनेक उद्देश्यों की पूर्ति एक साथ करता था, जैसे काव्य के माध्यम से ही धर्म, दर्शन, नीति, संस्कृति और आचार-विचार की शिक्षा प्राप्त कराता था। इसी में बालकों के मनोरंजन की सामग्री का भी समावेश रहता था। इतना ही नहीं वह अपनी रचना से बालकों और बड़ों, दोनों को समान रूप से प्रभावित करने की चेष्टा करता था। यों अतीत युग के साहित्यकार के लिए बड़ों और बच्चों में किसी प्रकार का अन्तर न था।[१]

इस प्रकार संस्कृत साहित्य में दो रूपों में बाल साहित्य उपलब्ध होता है—

१. रामायण, महाभारतादि में संनिविष्ट बाल साहित्य।

२. पंचतन्त्रादि के रूप में स्वतन्त्र रूप से लिखित बाल साहित्य।

वाल्मीकि रामायण

संस्कृत साहित्य में सर्वप्रथम वाल्मीकिकृत रामायण पर दृष्टि जाती है। यह आदिकवि की आदि रचना है। राम के जीवन पर आधारित रामायण का बालकों से किसी प्रकार का सीधा संबंध नहीं है, पर बीच-बीच में ऐसे कथाप्रसंग आते हैं जो बालकों के लिए रोचक हैं। संभव है, ये प्रसंग लोक कथाओं के ही हों जो कथा प्रवाह में आए हों। ऐसा एक प्रसंग सारमेय कुत्ते के राम के दरबार में जाकर शिकायत करने से संबद्ध है। सारमेय कुत्ता सर्वार्थ सिद्धि नामक ब्राह्मण

---

१. इन दैट एनसियेंट वर्ल्ड आफ प्रीमिटिव आइडियाज़ ऐंड प्रीमिटिव इंपल्सेज, देयर वाज लिटिल डिस्टिंक्शन बिट्विन ह्वाट ऐंटरटेंड द ऐल्डर्स ऐंड ह्वाट ऐंटरटेंड द यंग।

—ए क्रिटिकल हिस्ट्री आफ चिल्ड्रेंस लिटरेचर, मीग्स : पृ० ४।

के घर में रहता था। एक दिन अकारण सर्वार्थसिद्धि ने कुत्ते का सर फोड़ दिया। अभियोग लेकर कुत्ता राम के दरबार में आया और राजा के कर्तव्यों तथा गुणों का विस्तार से वर्णन करके सर्वार्थसिद्धि पर सिर फोड़ने का अभियोग लगाया।

इसी प्रकार एक अन्य कहानी गीध और उल्लू के विवाद की है। गीध और उल्लू दोनों साथ-साथ रहते थे। एक बार गीध के मन में उल्लू के घर पर कब्जा करने का पाप आ गया। दोनों में झगड़ा हुआ। अन्त में दोनों ही न्याय के लिये राम के दरबार में गए।[1]

बालकों को पशु-पक्षी अधिक प्रिय लगते हैं, यह आदि मानव ने ही समझ लिया था। पशु-पक्षियों के माध्यम से प्रस्तुत किये गये निष्कर्षों से आदर्श, नीति, सत्यता और परोपकार आदि के विचार बालकों तक आसानी से पहुँचाये जा सकते हैं।

परवर्ती काल में पंचतंत्र और हितोपदेश में पशु-पक्षियों की कहानियों के आधार पर ही विविध प्रकार की मनोरंजक बाल शिक्षा का आयोजन हुआ और आज भी पशु-पक्षियों से संबद्ध साहित्य का लेखन केवल हिन्दी में ही नहीं, विश्व के बाल साहित्य में हो रहा है।

वाल्मीकि रामायण की उपर्युक्त कहानियाँ अथवा ऐसी ही अन्य कहानियाँ चाहे मूल हों, चाहे प्रक्षिप्त, पर उस अतीत युग में बाल साहित्य या बालकथाओं का अस्तित्व सूचित करती हैं।

उस युग के यदि अन्य साहित्यिक साक्ष्य उपलब्ध होते तो बाल साहित्य की विस्तृत दिशाओं का ज्ञान होता। कोई युग बाल साहित्य से रहित नहीं हो सकता—बाल साहित्य लिखित रूप में हो या अलिखित रूप में। बच्चों को सुलाने की लोरियाँ, सोते समय बच्चों के मनोरंजन की कहानियाँ, खेल गीत और अर्थविसंगत (नानसेंस) काव्य सदा रहा है। ऐसी स्थिति में सुश्री आशा गंगोपाध्याय का यह कथन कि 'प्राचीन लोगों का बाल साहित्य की दिशा में कोई लक्ष्य न था, समीचीन नहीं है।'[2]

---

१. बाल्मीकि रामायण, पृष्ठ १५४३।

२. किंतु शिशु साहित्येर दिके प्राचीनदेर विशेष लक्ष्य छिलो : 'बलिया मने हय ना'। : बांग्ला शिशु साहित्येर क्रम विकाश : ले० आशा गंगोपाध्याय, पृ० ८।

महाभारत

महर्षि वेदाव्यासकृत महाभारत कौरवों और पांडवों के बीच हुए महायुद्ध की कहानी है। महाभारत में निबद्ध विचार जीवन की दार्शनिक भूमि का स्पर्श करते हैं। धर्म और अर्थ के गूढ़ रहस्यों से युक्त (धर्मार्थ संश्रिता)[१] यह महाकाव्य सभी अख्यानों में श्रेष्ठ है, रमणीय अर्थ से युक्त है, वेद, पुराण और समस्त शास्त्रों के ज्ञान से परिपूर्ण है।[२] किंतु इसमें भी ऐसे अनेक प्रसंग हैं जो बालकों को रुचिकर प्रतीत होंगे। महाभारत में जहाँ बड़ों के परितोष के लिए सुविस्तृत कथाप्रसंग हैं, वहीं बालकों के परितोष के लिए भी बीच-बीच में कहानियाँ आती रहती हैं।

कहानियाँ सुनाकर कहने की स्पष्ट परंपरा तो महाभारत काल में थी ही। महाभारत के आदिपर्व में एक ब्राह्मण कुंती को कहानियाँ सुनाता है। कहानियाँ सुनने के लिए कुंती के पाँचों पुत्र भी आकर बैठ जाते हैं।[३]

महाभारत के अंतर्गत अनेक बालोपयोगी कहानियाँ प्राप्त होती हैं। प्रारंभ में ही महाभारतकार महर्षि आयोदधोग्य के शिष्य उपमन्यु और आरुणि पांचाल के जीवन का परिचय देता है। उपमन्यु जिस प्रकार अपने गुरु के आदेश का पालन करता है और इसके लिए उसे जितना कष्ट उठाना पड़ता है, वह एक आदर्श बालक और आज्ञाकारी शिष्य की कहानी है, जो बालकों के लिए प्रेरणाप्रद सिद्ध हो सकती हैं। कहानी इस प्रकार है—

महर्षि आयोदधोम्य शिष्य उपमन्यु को गायों की रक्षा का भार सौंपते हैं। उपमन्यु गाएँ चराता है और भिक्षा से जीवनयापन करता है। महर्षि उपमन्यु को स्वस्थ पाकर उसके अच्छे स्वास्थ्य का रहस्य पूछते हैं। उपमन्यु बता देता है कि भिक्षा से ही वह इतना स्वस्थ है। गुरु को अर्पित किए बिना भिक्षा ग्रहण महर्षि को अनुचित लगा। तब उपमन्यु भिक्षा महर्षि को अर्पित करने लगा और अपना जीवन दूसरी भिक्षा माँग कर चलाने लगा। महर्षि को यह भी अनुचित लगा। अनंतर उपमन्यु गायों का दूध पीने लगा। गुरु के आदेश से उसे भी छोड़ कर बछड़ों के पीते समय गिरे हुए दूध से ही जीवनयापन करने लगा। जब यह भी गुरु के आदेश से छूट गया तो भूख से छटपटाकर उपमन्यु ने आक के पत्ते खा लिए। परिणामस्वरूप उसकी आँखें फूट गईं। अश्विनीकुमार ने उसकी आँखें ठीक कीं।[४]

उपर्युक्त कहानी गुरु के प्रति एक शिष्य की आज्ञाकारिता की कहानी है। शिष्य उपमन्यु अनेक कष्ट उठाता है, पर गुरु की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करता।

---

१. महाभारत आदिपर्व : अनुक्रमणिका : श्लोक १६।

२. वही : १७-२१।

३. वही : आदिपर्व के अन्तर्गत चैत्ररथ पर्व : अध्याय १६४।

४. वही : पौष्यपर्व : तृतीय अध्याय।

गुरु अपनी कठोरता के द्वारा शिष्य की परीक्षा लेता है और शिष्य अपनी परीक्षा में अंत तक सफल होता है । शिष्य उपमन्यु आज्ञाकारिता का प्रतीक है । उसके द्वारा सबको, विशेषतः शिष्यवर्ग को गुरु का आज्ञानुगामी बनने का आदेश प्राप्त होता है । विश्व का साहित्य सत और सच्चारित्र्य के उद्देश्य से ही निर्मित हुआ है । विश्व के बाल साहित्य का समस्त प्राचीन अंश आदर्शों की ही स्थापना करता है । ईश्वर भक्ति, गुरुभक्ति, सेवापरायणता, आज्ञाकारिता, अभिमानशून्यता आदि अनेक गुणों का बालकों में समावेश करना ही ऐसे साहित्य की विशेषता है ।

वस्तुतः महाभारत में ऐसी कहानियों का भंडार है, जिनसे विविध प्रकार के आदर्शों की स्थापना होती है । उपर्युक्त गुरु शिष्य की कहानी के क्रम में एक अन्य कहानी आरुणि पांचाल की है । शिष्य आरुणि गुरु के धान के खेत की क्यारी बाँधने जाता है । किंतु जब किसी प्रकार पानी नहीं रुकता तो स्वयं लेटकर पानी रोकता है । जब गुरु को पता लगता है तो वे उसे संपूर्ण वेद और धर्मशास्त्र का ज्ञाता बनने का आशीर्वाद प्रदान करते हैं ।

इस कहानी में भी गुरु के आदेश की अनुगामिता सिद्ध की गई है । कहानी के द्वारा यह गुरु भक्ति दूसरों के लिए प्रेरणाप्रद है ।

महाभारत की ऐसी ही एक और कहानी उल्लेखनीय है । यह कहानी जरिता नामक एक पक्षी के विलाप की है । जंगल में आग लगने पर यह पक्षी अपने बच्चों की रक्षा के लिए चिंतित होता है ।[1] पशु-पक्षी बच्चों की कहानियों के प्रिय विषय हैं । इस सन्दर्भ में बच्चों के लिए यह उपयोगी कहानी है । भावनाशील बच्चे पशु-पक्षियों की कहानियाँ पढ़ते या सुनते समय उनमें खो जाते हैं । इसका कारण उनकी कल्पना की विशेषता है । वे पशु-पक्षियों पर मानवीय व्यक्तित्व का आरोप कर लेते हैं । अवस्था प्राप्त व्यक्तियों के लिए यह संभव नहीं है । पर बालजगत की प्रकृति यही है । तब न पशु पशु रहते हैं, न पक्षी पक्षी । ये सजीव मानव रूप हो जाते हैं और बच्चे उनके साथ तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं ।

पंचतन्त्र

पंचतंत्र संस्कृत में बाल साहित्य की अमूल्य निधि है । इसकी कहानियों में दिए गए विचार व्यावहारिक जगत के हैं । पंचतंत्र की अनेक कहानियों ने लोक कथाओं का रूप ले लिया है और इस प्रकार युगों से ये कहानियाँ शिक्षितों से लेकर अशिक्षितों तक नगर से लेकर दूर अगम्य ग्रामांचलों तक लोगों का मनोरंजन और

---

१. महाभारत : आदिपर्व के अन्तर्गत : मयदर्शन पर्व : २९ वाँ अध्याय ।

जीवन निर्माण करती आ रही हैं। अनेक कहानियों ने काव्य आदि अन्य विधाओं का भी रूप लिया है। विश्व के लोक साहित्य को भी इन कहानियों ने सूत्र प्रदान किए हैं।

पंचतंत्र के रचयिता विष्णु शर्मा हैं जिन्होंने मुख्यतः बालकों को दृष्टि में रखकर इस कृति की रचना की। बालकों की मनोभूमि, उनका परिवेश, उनका बोध और उनकी रुचि को ध्यान में रखकर इन कहानियों की रचना करने के कारण ही आज भी बाल जगत में ये कहानियाँ लोकप्रिय बनी हुई हैं।

ग्रन्थ का रचनाकाल विवादास्पद है। हटेल इसे २०० ई० पूर्व के बाद की रचना मानते हैं जब कि कीथ के अनुसार इसका रचनाकाल गुप्तों का समय अथवा उनके साम्राज्य स्थापन के कुछ पहले का है।

पर रचनाकाल जो भी हो, इसमें बाल साहित्य रचना के आधारभूत तथ्यों का समावेश हुआ है। पशु-पक्षियों के प्रति बालमन सदा से आकृष्ट रहा है। इस-लिए पशु-पक्षियों की कहानियाँ उनका उच्चकोटि का मनोरंजन करती हैं। पशु-पक्षियों के प्रति बालकों का अधिक आकर्षण क्यों होता है, इसका संभवतः कारण यह हो कि पशु-पक्षी प्रकृति के अंग होते हैं। प्रकृति बालकों को बहुत अधिक प्रिय लगती है। मनुष्य अपने मानसिक विकास के साथ-साथ इन प्राणियों से अलग होता जाता है, पर बालक को तो प्रकृति और उसके विविध अंगों में ही आनंद का अनुभव होता है।

पंचतन्त्र का रचयिता बालकों के इस मनोविज्ञान से परिचित था। वास्तव में उसे पंचतंत्र की कहानियों के माध्यम से ऐसे बालकों को लौकिक और व्यावहारिक—नीति, धर्म, शास्त्र आदि विषयों की शिक्षा देनी थी जो ज्ञानशून्य थे। इस संबंध में कहा जाता है कि दक्षिण में महिलारोप्य नाम का एक नगर था। वहाँ अमरशक्ति नाम का अत्यन्त दानी और प्रतापी राजा राज्य करता था। पर वह अपने तीन पुत्र—बहुशक्ति, उग्रशक्ति और अनन्तशक्ति के कारण दुखी रहता था, क्योंकि ये बालक अविनीत ही नहीं, अज्ञानी भी थे।

राजा के अनेक मंत्री थे। पर इन बालकों को शिक्षा प्रदान करने में कोई समर्थ न था। अन्त में सुमति नाम के मन्त्री ने सभी शास्त्रों के आचार्य विष्णु शर्मा को बुलाने की संमति दी।

राजा ने विष्णु शर्मा से अपने अज्ञानी पुत्रों को शिक्षित करने का निवेदन किया। विष्णु शर्मा ने छः महीने में ही बालकों को सभी विद्याएँ सिखा देने का आश्वासन दिया।

विष्णु शर्मा ने बालकों को प्रकृति के अनुकूल पशु-पक्षियों से सम्बन्धित कहानियों की रचना की। इन कहानियों का एक ही उद्देश्य था—बालकों को राजनीति और व्यावहारिक ज्ञान में पारंगत करना। इसलिए पंचतंत्र की प्रत्येक कहानी में कोई न कोई नीति है। नीति वचन बालकों को ग्रहण हो जाय और हमेशा उनकी स्मृति में बना रहे, इस उद्देश्य से लेखक सम्पूर्ण कहानी तो गद्य में कही और निष्कर्ष रूप नीतियों को श्लोकों में पद्यबद्ध प्रस्तुत किया।

व्यावहारिकता के उद्देश्य से लेखक ने पंचतन्त्र को पाँच भागों में बाँटा—

१—मित्रभेद
२—मित्रसम्प्राप्ति
३—काकोलूकीयम
४—लब्ध प्रणाशम
५—अपरीक्षितकारकम्

इन्ही पाँचों भागों के अनुसार पाँच प्रकरणों में कथासूत्र बुने गए हैं।

प्रकांड पण्डित विष्णु शर्मा ने संकल्प किया था ज्ञानशून्य राजकुमारों को राजनीति और व्यावहारिक ज्ञान कराने का। परिणामस्वरूप राजनीतिक जीवन की जितनी परिस्थितियाँ हो सकती हैं, और उन परिस्थितियों का कैसे सामना करना चाहिए—कुछ कहानियाँ लेखक ने इस उद्देश्य से रचीं। राजनीति में साम, दाम, दंड, भेद सभी का महत्त्व है। पंचतंत्र के पशु-पक्षी कहीं साम अर्थात मधुर बोलकर अपने उद्देश्य की पूर्ति करते हैं, कहीं दाम अर्थात अधिकार में करके अपने उद्देश्य की पूर्ति करते हैं, कहीं दंड अर्थात दंडित करके अपना काम निकालते हैं और कहीं भेद अर्थात चतुरता या कूटनीति से काम लेते हैं। उदाहरण के लिए दमनक नामक स्यार[1] पहले तो पिंगलक शेर और संजीवक बैल की मित्रता कराता है, और अपने मित्र करटक के साथ सुखपूर्वक जंगल में रहता है; पर जब देखता है कि संजीवक की मित्रता के कारण पिंगलक की दृष्टि में अन्य जीवों के साथ दमनक का भी महत्त्व कम हो रहा है तो कूटनीति से दोनों में भेद पैदा कर देता है। अन्त में पिंगलक और संजीवक में लड़ाई होती है, जिसमें संजीवक मारा जाता है। दमनक को फिर महत्त्व मिल जाता है और पिंगलक का मन्त्री बनकर सुखपूर्वक रहने लगता है।

---

१. मित्रभेद प्रकरण।

कहानियों की रचना में रचयिता की महान प्रतिभा के दर्शन होते हैं। प्रत्येक प्रकरण विभिन्न कहानियों के जाल में गूँथा हुआ है। एक कहानी से दूसरी कहानी फूटती है और दूसरी से तीसरी। बीच-बीच में नीति और आदर्श के उपदेश वाक्य चलते हैं जैसे 'बिना पूछे अनधिकार संमति देना असम्मानजनक है।'[1] या 'राजा, स्त्री और लता का यही नियम है कि वे पास रहनेवाले को ही अपनाते है'[2] अथवा 'मन के भाव छिपे नहीं रहते। चेहरे से, इशारों से, चेष्टा से, भाषण शैली से और आँखों की भ्रूभंगी से सब के सामने आ ही जाते हैं।'[3]

अनेक पात्रों द्वारा अनेक कहानियों का यह गुंफन इतना जटिल है कि सभी पात्र और सभी कहानियाँ आसानी से स्मृति में नहीं बैठ पातीं। किंतु सभी कहानियाँ प्रबन्ध शैली की एक सूत्रता में आबद्ध हैं, और मनोरंजन तथा ज्ञान एक साथ संप्रेषित करती हैं।

पशु-पक्षियों की यह सुसंबद्ध कृति इस बात की ओर भी संकेत करती है कि मौखिक रूप में पशु-पक्षियों की कहानियों की परंपरा अवश्य रही होगी, जिसको विष्णु शर्मा ने अपने उद्देश्य के लिए ग्रहण कर लिया। कीथ ने तो वेदों तक इस प्रकार की कहानियों की परंपरा ढूँढ़ने का प्रयास किया है।[4] कीथ के अनुसार ऋग्वेद में यज्ञ के अवसर पर मंत्रगान करते हुए ब्राह्मणों की तुलना मेंढकों की टर्र टर्र से की गई है। पशु-पक्षियों द्वारा विचार प्रदान करने का सूत्र यहाँ निहित है। इसी प्रकार छांदोग्योपनिषद में ऐसे कुत्तों की कहानी है जो चिल्लाने वाला नेता ढूँढ़ते हैं तथा दूसरी कहानी में दो हंस परस्पर बातचीत करते हैं।

पंचतंत्र की कहानी का प्रायः प्रत्येक वाक्य अपरिहार्य और सार्थक है क्योंकि प्रत्येक वाक्य में कथातत्त्व के साथ-साथ जीवन का कोई संदेश निहित है।

पर बालकों को पंचतंत्र देते समय संपादन और संक्षेपीकरण आवश्यक है। स्त्री पुरुषों के संबंधों पर आश्रित कतिपय प्रसंग बालोपयोगी नहीं हैं। ऐसे

---

१. अपृष्टोऽत्राप्रधानो यो ब्रूते राज्ञः पुरः कुधीः ।
न केवलंमसम्मानं लभते व विडम्बनम्—मित्रभेद : ३३ ।

२. प्रायेण भूमिपतयः प्रमदा लताश्च य पार्श्वतो भवति तत्पर्यवेष्टयन्ति —मित्रभेद : ३७ ।

३. आकारेरिङ्गितेर्गत्या चेष्टया भाषणेन व ।
नेत्रवक्त्रविकारेश्च लक्ष्यतेऽन्तर्गतं मनः—मित्रभेदः ४५ ।

४. संस्कृत साहित्य का इतिहास : ले० ए० बी० कीथ : अनु० डॉ० मंगलदेव शास्त्री, पृ० ३०० ।

प्रसंगों को हटाकर ही पंचतंत्र बालकों के लिए उपयोगी बनाया जा सकता है ।

हितोपदेश

पंचतंत्र की ही भाँति बालकों को राजनीति, लोकनीति और व्यवहार आदि की शिक्षा देने के लिए हितोपदेश की रचना हुई थी । इसके रचयिता नारायण पंडित थे, जिन्होंने संवत् १३९३ के पूर्व ग्रन्थ की रचना की थी । ये नारायण पंडित बंगाल के राजा धवलचन्द्र के आश्रित थे ।

हितोपदेश पंचतंत्र की ही कहानियों के आधार पर निर्मित है । इस ग्रन्थ में आयी कथाएँ पंचतंत्र से ली गई हैं और आयी कथाओं के स्रोत महाभारत, शुक सप्तति आदि हैं। उपदेशात्मक श्लोकों की रचना लेखक ने संभवतः स्वयं की है ।

कथाक्रम में भी लेखक ने मौलिकता का परिचय दिया है अर्थात पंचतंत्र से भिन्न हितोपदेश की कथा को चार भागों में बाँटा गया है और क्रम विपर्यय करके मित्रलाभ, सुहृदभेद, विग्रह और संधि के रूप में प्रस्तुत किया गया है ।

बालकों की रुचि के तत्त्व कहानियों में भरपूर है । पहला तत्त्व तो कहानियों का पशु-पक्षियों से संबद्ध होना ही है । फिर भाषा की सरलता और निष्कर्षात्मक काव्यमय श्लोक ग्रन्थ को आकर्षक बना देते हैं । उदाहरण के लिए पहले अंग मित्रलाभ में मित्रता के लाभ बताने के लिए लेखक शिकारी और कबूतरों की कहानी कल्पित करता है । शिकारी द्वारा बिखेरे गए दानों पर कबूतरों का मन ललच जाता है । कबूतरों का सरदार चित्रग्रीव दानों में कुछ धोखा देखता है और कबूतरों को खाने से रोकता है । कबूतर उसकी बात पर ध्यान नहीं देते । फलस्वरूप वे जाल में फँस जाते हैं और पछताने लगते हैं ।

चित्रग्रीव ने फिर विवेक का परिचय दिया और जाल में फँसे कबूतरों को जाल सहित उड़ने की राय दी । कबूतर जाल सहित उड़कर चित्रग्रीव के मित्र हिरण्यक चूहे के पास पहुँचे । हिरण्यक ने जाल काट दिया और कबूतर उड़ गये ।

बच्चों के लिए यह कहानी जितनी रोचक है उतनी ही शिक्षाप्रद भी । बीच-बीच में ऐसे मार्मिक अंश आते हैं जो हृदय में प्रवेश करते चले आते हैं । जैसे कबूतरों के जाल में फँस जाने और जाल लेकर उड़ जाने के बाद समस्या जाल को काटने की उत्पन्न होती है । इस विषय में कौन सहायक बन सकता है । चित्रग्रीव सोचता है—'आपत्ति में माता-पिता और मित्र ये ही तीन स्वाभाविक सहायक होते हैं और शेष तो अपनी कार्यसिद्धि के लिए ही हित करते हैं ।'[1]

---

१. माता मित्रं पिता चेति स्वभावात् त्रितयं हितम् ।
कार्यकारणतश्चाऽन्ये भवन्ति हितबुद्धयः ।।
—हितोपदेशः मित्रलाभः श्लोक ३८ : चौखंबा सरीज ।

कहानियों के माध्यम से लोक व्यवहार और लोकनीति समझने में तथा जीवन के निर्माण में हितोपदेश सहायक है। यही इसके सर्जक का लक्ष्य है।

कथासरित्सागर

सोमदेव भट्ट विरचित संस्कृत ग्रन्थ कथासरित्सागर तो कथाओं का सागर ही है। ई० १०६३ और १०८१ के बीच में इसकी रचना हुई थी। रचयिता का उद्देश्य कश्मीर के राजा अनन्त की रानी सूर्यमती का मनोरंजन करना था, जिसके लिए उसने गुणढ्यकृत पैशाची के ग्रन्थ वृहत्कथा (बड्डकहा) को आधार बनाकर अनन्त कहानियों की रचना कर डाली। सम्पूर्ण ग्रन्थ १२४ तरंगों और १८ लम्बकों में विभक्त है।

कथासरित्सागर यद्यपि कथाओं का सागर है, पर आज की दृष्टि से इसकी सभी कहानियाँ बालोपयोगी नहीं हैं। प्राचीन समय में, जब बालकों और बड़ों की रुचि में अन्तर नहीं किया जाता था, इसमें बालकों और बड़ों की रुचि की कहानियों का समावेश किया गया था। उस समय बालक और बड़े दोनों के लिए एक साथ साहित्य प्रस्तुत कर दिया जाता था। बड़े उसमें से अपनी रुचि की सामग्री ले लेते थे और बालक अपनी रुचि की। इस प्रकार उस विशाल भंडार से बालकों ने अपनी रुचि के रत्न एकत्र करके अपने व्यक्तित्व की रक्षा की।[1]

ऐसा भी हुआ है कि जो रचनाएँ बड़ों के लिए प्रस्तुत की गयी थीं, आगे चलकर उन्हें बालकों ने इतना अधिक अपनाया कि लोग यह भूल ही गए कि वे मूलतः बड़ों की रचनाएँ थीं। डान क्विक्जोट, राबिंसन क्रूसो अथवा गुलिवर की यात्राएँ वस्तुतः बड़ों को ध्यान में रखकर निर्मित हुई थीं। तीनों रचनाओं का व्यंग्य बड़ों के बोधस्तर का है। पर वर्णन की सहजता, एक-एक दृश्य का बिंबवत प्रस्तुतीकरण और आश्चर्य की अनुभूति जगाने वाले नवीनतापूर्ण कथानक ने इन कृतियों को बालकों के हृदय की वस्तु बना दिया। आज इन कृतियों के प्रायः बाल संस्करण ही तैयार किए जाते हैं और विश्व की अनेक भाषाओं के बालक इन कृतियों से अपना मनोरंजन करते हैं। प्राचीन संस्कृत और लोक भाषाओं में रचित बड़ों का साहित्य भी आज इसी रूप में बालकों के लिए उपयोगी हो गया है।

---

१. 'चिल्ड्रेन हैव डिफेंडेड देमसेल्व्ज 'बाई टेंकिंग फॉर देयर ओन, मास्टर-पीसेज फ्रॉम देयर एल्डर्स' लिटरेचर, ऐंड डेटरमीनेड्ली फारगेटिंग दैट व्हिच वाज सपोज्ड टु बी फॉर देम।

—द क्रिटिकल हिस्ट्री आफ चिल्ड्रेंस लिटरेचर : मीग्स, पृ० २३।

कथासरित्सागर की अनेक कहानियाँ बालकों के लिए उपयोगी हैं। जैसे 'चूहे से धनी बननेवाले सेठ की कहानी' 'वत्सराज उदयन की कहानी', 'हरिशर्मा ब्राह्मण की कहानी', 'उल्लू, नेवला' बिल्ली और चूहे की कहानी, तथा ऐसी ही अन्य अनेक कहानियाँ। नीति, उपदेश, ज्ञान, उद्योगशीलता आदि आदर्श गुणों का सम्प्रेषण ही इन कहानियों का उद्देश्य है। उदाहरण के लिए चूहे की कहानी इस प्रकार है—

एक वैश्यपुत्र एक मरे हुए चूहे को उठा लेता है। थोड़े से चने के बदले में वह उस चूहे को बिल्ली के खाने के लिये एक अन्य बनिए को दे देता है। चने भुनाकर चतुर वैश्यपुत्र पानी का घड़ा भरकर एक पेड़ के नीचे बैठ जाता है। वहाँ से लकड़ी लेकर जाते हुए मजदूरों को वह पानी पिलाता है और चना खिलाता है। बदले में कुछ लकड़ी ले लेता है।

इस प्रकार एकत्र की हुई लकड़ी को वह बाजार में बेच देता है और फिर चने खरीदकर और उन्हे भुनाकर उसी प्रकार मजदूरों को खिलाता रहता है।

इस प्रकार उसके पास लकड़ियों का काफी संग्रह हो जाता है। संयोग से जब लकड़ी आना बन्द हो जाती है तो अधिक मूल्य पर लकड़ियाँ बेचकर वह व्यक्ति धनी बन जाता है और फिर दुकान खोलकर बड़ा व्यापार करता है।

निर्धन से युक्तिपूर्वक धनी बनने की यह कल्पित कहानी बालकों के लिए रोचक भी है और शिक्षाप्रद भी।

जातक कथाएँ

बौद्धधर्म से सम्बद्ध जातक कथाओं में भी अनेक बालोपयोगी कहानियाँ पाई जाती हैं। जातक कथाओं की संख्या लगभग तीन सहस्र है। मूलतः इन कहानियों की रचना पालि भाषा में हुई थी। इनका संकलन काल तीन सौ ई० पूर्व है।[१]

गौतमबुद्ध के पूर्वजन्म का वर्णन ही जातक कथाओं का विषय है। पर इस माध्यम से विविध प्रकार की कहानियाँ निर्मित हो गई हैं जिनमें अनेक बालकों के लिए भी रोचक है। विषय की दृष्टि से विंटरनित्स ने जातकों के सात विभाग किए हैं–व्यावहारिक, चातुरी, पशु पक्षी कल्पना, विनोद, रोमांचक उपन्यास, नीति कहावत और धार्मिक वृतांत।' इनमें से प्रारंभ के चार भागों का संबंध

१. संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास : ले० वाचस्पति गैरोला, पृ० २७२।

बौद्धधर्म से लेशमात्र भी नहीं है और शेष भागों का सम्बन्ध बहुत थोड़ा ही है ।[1] निश्चित रूप से पशु-पक्षियों की कल्पना पर आश्रित कहानियाँ बालोपयोगी हैं। उदाहरण के लिये दूसरों को उपदेश देनेवाली लोभी चिड़िया की कहानी इस प्रकार है—

एक चिड़िया थी जो आम रास्ते पर जाकर पड़ी रहती । गाड़ियों से गिरे हुए धान, मूँग आदि के दाने खाया करती ।

दूसरे पक्षी उसके दानों में हिस्सा न बटाएँ, इस उद्देश्य से वह लोभी चिड़िया उनको उपदेश देती रहती कि आम रास्ते पर नहीं जाना चाहिए । वहाँ हाथी, घोड़े और मरखने बैलोंवाली गाड़ियाँ सदा चलती रहती हैं । जल्दी कोई उड़कर भी नहीं जा सकता ।

एक दिन वह स्वयं आम रास्ते पर दाने चुग रही थी । तभी एक गाड़ी आई । उससे सोचा कि गाड़ी अभी दूर है । वह बैठी दाना चुगती रही । गाड़ी तेजी से आई और वह कुचलकर मर गई ।[2]

प्रस्तुत कहानी का उद्देश्य उपदेश शिक्षा है। ऐसी ही अधिकांश कहानियाँ हैं। शैली पर ही पंचतंत्र का प्रभाव नहीं है, (जातक की कहानियाँ भी पंचतंत्र की कहानियों की तरह परस्पर गुंफित हैं), कतिपय कहानियाँ भी पंचतंत्र की छाया लिए हुए हैं जैसे मितचिंती मच्छ की कहानी ।[3] ठीक इसी प्रकार की तीन मछलियों की कहानियों की कहानी पंचतंत्र में भी है ।

इसी प्रकार सिंहासन बत्तीसी, शुकसप्तति और वैतालपच्चीसी संस्कृति की कहानी प्रधान कृतियाँ हैं, जिनका संस्कृत बाल साहित्य के लिए महत्त्वपूर्ण अवदान है ।

सिंहासनबत्तीसी के सम्बन्ध में कहा जाता है कि ग्यारहवीं शताब्दी में राजा भोज को एक सिंहासन मिला । उस सिंहासन में बत्तीस पुतलियाँ बनी हुई थीं । जब राजा भोज ने उस सिंहासन पर बैठने का प्रयत्न किया तो पहली पुतली ने एक कहानी सुनाकर कहानी में बताए गए गुणों के विषय में राजा से प्रश्न किया कि क्या वे गुण उसमें हैं जो उक्त सिंहासन के वास्तविक अधिकारी महाराज विक्रमदित्य में थे ?

---

१. हिंदी विश्वकोश : भाग ४, पृ० ४५४ ।
२. जातक : द्वितीय खंड : हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, पृ० २७ ।
३. जातक द्वितीय खंड, पृ० २५ ।

इसी प्रकार दूसरी तीसरी और क्रमशः बत्तीसों पुतलियाँ कहानी सुनाती हैं। पुतलियाँ कहानियों में जिन गुणों का उल्लेख करती हैं, राजा उन गुणों का अपने में अभाव पाता है। अंत में सिंहासन उड़कर आकाश में चला जाता है।

इन सभी कहानियों की रचना आदर्शों की स्थापना के लिए हुई है। आकर्षक शैली और रोचकता के कारण ये कहानियाँ बालोपयोगी बन गई हैं।

शुकसप्तति को हेमचन्द्र ने बारहवीं शती की रचना माना है। इसमें कहानियाँ एक सुग्गे के द्वारा कहलाई गई हैं। मूल विषय को काफी परिष्कार के बाद ही इसे बालकों को दिया जा सकता है। अधिकांशतः यह बड़ों के उपयोग की रचना है।

बैतालपच्चीसी पच्चीस रोचक कहानियों का संग्रह है। इसकी रचना डॉ० हटेल के मत से शिवदास ने १४८७ ई० से बहुत पहले ही की थी।[1] सभी कहानियाँ बुद्धिवर्द्धक और कौतूहलपूर्ण हैं। इन कहानियों का स्रोत लोक कथाएँ रही होंगी। इसमें कोई बैताल या सिद्ध राजा को कहानियाँ सुनाता है। शर्त है राजा के मौन रहने की, पर कहानियाँ इतनी रोचक होती हैं कि राजा बोल ही पड़ता है। कहानियों में पूछे गए बुद्धिमत्तापूर्ण प्रश्नों के उत्तर भी बुद्धिमत्तापूर्ण ही होते हैं। लेकिन इन कहानियों में रोमांचकता भी है जो अल्पवय बच्चों को मानसिक रूप से आतंकग्रस्त करती है। शव आदि के प्रसंग मन को अस्वस्थ बना सकते हैं।

बालचरित

संस्कृत साहित्य में नाटकों का प्रमुख स्थान है। संस्कृत के नाटकों का आदर्शन बड़ों की तरह बालक भी करते होंगे। जैसे उनके लिए अलग से अन्य साहित्य न था, बड़ों के साहित्य से ही वे अपना मनोरंजन कर लेते थे, इसी प्रकार उनके लिए अलग से नाट्य लेखन की कोई परम्परा न थी। पर भासकृत 'बालचरित' नाटक ऐसा है जिसमें बालबोध के अधिकांश तत्व हैं। भास कालिदासपूर्व के नाटककार हैं। उनके अनेक नाटक उपलब्ध होते है जिनके साक्ष्य पर उनका समय ई० पूर्व चौथी से छठवीं शताब्दी तक माना जाता है।

बालचरित नाटक में श्रीकृष्ण के जन्म से लेकर कंसबद्ध तक की कथा का उल्लेख है। सम्पूर्ण नाटक सात अंकों में विभाजित है। श्रीकृष्ण की वीरता का परिचय इस नाटक से भली-भाँति प्राप्त होता है। इसके सफल आरंभण के

१. संस्कृत साहित्य का इतिहास, ले० बलदेव उपाध्याय, पृ० ४३२।

लिए उच्चकोटि का नृत्य और संगीत अपेक्षित है। इन तत्वों के समावेश से बालकों के लिए यह नाटक और अधिक आकर्षक हो जाता है हेनरी डब्ल्यू० वेल्स ने इस नाटक की प्रशंसा करते हुए कहा है कि इस नाटक में 'भारतीय फंतासी (कल्पना कथा) पूर्ण नवीनता और आकर्षण लिए हुए है।' वेल्स का तो यह भी कहना है कि आज पश्चिम में बालकों के लिए बालकों ही द्वारा अभिनीत कराकर इस नाटक को भलीभाँति प्रदर्शित किया जा सकता है। यह एक ऐसा नाटक है जो सर्वत्र और सदा बालनाट्यगृहों के निदेशकों को लोकप्रिय प्रतीत होगा।[१]

उपर्युक्त वृत्त से स्पष्ट है कि संस्कृत साहित्य में बाल साहित्य का अभाव नहीं है। यद्यपि आज की दृष्टि से एकाकी भाग से बाल साहित्य की रचना नहीं हुई है। पर आधुनिक दृष्टि से लिखे गए बाल साहित्य का इतिहास तो भारत में ही नहीं, विश्व में एक शताब्दी से अधिक नहीं है। योरोप में भी प्रारम्भ में धार्मिक और पौराणिक साहित्य ही बालकों को पढ़ने को दिया गया था जैसे जान बनियान की 'पिल्ग्रिम्स प्रोग्रेस' या यूलिसीज की कहानियाँ। चार्ल्स लैंब ने 'एडवेंचर्स आफ यूलिसीज' नाम से स्वयं बालकों के लिए एक संग्रह तैयार किया था, जिसका प्रकाशन सन् १८८० में हुआ था।

आज संस्कृत साहित्य से बाल साहित्य के संक्षिप्त और सम्पादित संस्करण प्रस्तुत किए जा रहे हैं और यही उचित है। आज की मौलिक साहित्य रचना के साथ-साथ बालकों के लिए प्राचीन संस्कृत साहित्य का यह भी महत्त्वपूर्ण रिक्थ है।

---

१. द इंडियन फैंटेसी रिटेंस कंप्लीट फ्रेसनेस ऐंड कैप्टिवेटिंग चार्म। इट कैन वेस्ट बी गिवेन टुडे इन द वेस्टर्न वर्ल्ड बिफोर ऐन आडियेंस इन ह्विच देयर आर मेनी चिल्ड्रेन, प्रोबेब्ली एज ए प्रोडक्शन प्राइमरिली फार चिल्ड्रेन; पासिबुली इवेन बाई चिल्ड्रेन। दिस इज द टाइप आफ प्ले ह्विच एवरी ह्वेयर सक्सेसफुल डाइरेक्टर्स आफ थियेटर्स फार द यंग—हैव कंसिस्टेंटली फाउंड पापुलर—द क्लासिकल ड्रामा आफ इंडिया, हेनरी डब्ल्यू० वेल्स, पृ० २८।

मध्यकालीन हिंदी में बाल साहित्य की परंपरा : विश्लेषण और विकास

पृष्ठभूमि—संवत् १३७५ से १९०० तक का काल मध्यकाल माना गया है। यह वह समय है जब देश में मुगलों का शासन था। अकबर के शासन के साथ मुगलों का विस्तृत शासन प्रारंभ होता है। अकबर ने हिंदू और मुसलमान, दोनों वर्गों के विद्वानों को अपने दरबार में स्थान दिया था। एक विजातीय और मूलतः विदेशी संस्कृति के बादशाह द्वारा भारतीय लोगों के हृदय जीतने का यही एक मात्र उपाय था। कुशल शासक अकबर ने इस बात को समझ लिया था।

अकबर के बाद उसके वंशजों ने भी शांतिपूर्वक शासन किया। केवल औरंगजेब ही ऐसा शासक था, जब अशांति उत्पन्न हुई। इस्लामी कट्टरता तथा हिन्दू धर्म के प्रति असहिष्णुता ने उसे हिन्दू विरोधी बना दिया।

यहीं से मुगल साम्राज्य के बुरे दिन प्रारंभ हुए। मुगल शक्ति के छिन्न-भिन्न होने पर अधीनस्थ सामंतों और राजाओं ने सिर उठाना प्रारंभ किया। देश में छोटे-छोटे राज्य स्थापित हो गए। जिसे जहाँ अवसर मिला, उसने वहाँ का शासन अपने अधिकार में कर लिया। इस काल में सिक्ख और मराठे विशेष रूप से बढ़े। मराठा वीर शिवाजी इसी युग की देन हैं, जिनका प्रशस्तिगान भूषण कवि ने किया है।

साहित्यिक प्रवृत्तियाँ

इस युग के दो कालखंडों में दो प्रकार की साहित्यिक प्रवृत्तियों का विकास होता है। पहला कालखंड मुगल शासन की सुदृढ़ परंपरा का है और दूसरा कालखंड उसके टूटने तथा नये राज्यों की स्थापना की। इन दो कालखंडों में क्रमशः (१) भक्तिकाल और (२) रीतिकाल की साहित्यिक प्रवृत्तियाँ सामने आती हैं।

(१) **भक्तिकाल**—भक्तिकालीन साहित्य भारतीय इतिहास के संक्रमणकाल का साहित्य है। विजातीय मुस्लिम संस्कृति के मेल ने भारत में एक प्रकार की

उथल-पुथल की स्थिति पैदा कर दी थी। इसको दूर करने तथा अपनी संस्कृति की पुनर्स्थापना करने के लिए गोस्वामी तुलसीदास जैसे महाकवि प्रयत्नशील हुए। भारत की पुरातन संस्कृति की स्थापना के लिए ही राम और कृष्ण की उपासना का प्रचार किया गया। इसने काव्यरूप लिया तुलसी और सूर के कृतित्व में।

किंतु विजातीय प्रभाव तो आ ही गए थे। विचारकों के एक वर्ग ने भारतीय और विदेशी, दोनों संस्कृतियों को एक तुला पर रखकर देखा और तटस्थ भाव से दोनों के विरोधी तत्त्वों को दूर करने का प्रयत्न किया तो एक दूसरे वर्ग ने दोनों संस्कृतियों के मेल से अभिनव काव्य सृष्टि की। पहली प्रवृत्ति कबीर और उनके समान अन्य कवियों में दिखाई देती है और दूसरी प्रवृत्ति मलिक मुहम्मद जायसी, कुतुबन, मंझन आदि में है।

इस प्रकार मध्यकाल ईश्वर आराधनावादी युग हुआ।

कबीर, जायसी, तुलसी और सूर के अतिरिक्त और अन्य भक्त कवि हुए, जिन्होंने भारतीय जन जीवन को भक्ति की धारा में आप्लावित कर दिया। संपूर्ण समाज आराध्य के ध्यान में समाधिस्थ हो गया। सबके हृदय से एक ही विश्वास व्यक्त होने लगा—

एक भरोसो एक बल एक आस बिस्वास।
एक राम घनस्याम हित, चातक तुलसीदास॥

(२) **रीतिकाल**—मध्यकाल के पूर्वार्ध का काव्य भक्तिपरक है। उत्तरार्ध में भक्तिकाल की प्रतिक्रिया हुई। आध्यात्मिकता शृंगारिकता में बदल गई। भक्ति के आलंबन राधा और कृष्ण, शृंगार के आलंबन हो गए। शास्त्रीय विवेचन काव्य की मुख्य भूमि हो गई, जिस पर शृंगारी साहित्य का महल खड़ा किया गया। कुछ ऐसे कवि भी हुए, जिन्होंने रूढ़ शास्त्रीयता को अस्वीकार करके स्वच्छंदता का परिचय दिया।

मध्यकाल के इस उत्तरार्द्ध को रीतिकाल कहा गया है, जिसे वस्तुतत्त्व के आधार पर शृंगारकाल भी कहा जाता है। रीति या काव्यशास्त्र और शृंगार विवेचन ही इस युग की प्रमुख प्रवृत्ति है।

बाल साहित्य

विवेच्य मध्यकाल में सूर, तुलसी और कबीर के नीतिपरक तथा उपदेशात्मक काव्य में कतिपय अंश बालोपयोगी सिद्ध होते हैं। उनकी रचना बालकों के लिए अवश्य नहीं हुई है, पर यह उस युग में सभव भी न था।

अपनी सरलता और विषयगत अनुरंजकता के कारण सूर के कुछ पद बालकों को प्रिय लगेंगे। आधुनिक दृष्टि से ऐसे पदों से आध्यात्मिक अंश को अलग करने की आवश्यकता होगी, पर तत्कालीन परिस्थितियों की दृष्टि से सूर के पद संपूर्ण समाज के लिए हैं।

बालकों के लिए रोचक पद वे हैं जिनमें कृष्ण के बाल जीवन को अभिव्यक्ति मिली है। ऐसा एक पद निम्नांकित है—

मैया कबहिं बढ़ेगी चोटी
किती बार मोहि दूध पियत भई यह अजहूँ है छोटी
तू जो कहति बल की वेनी ज्यों ह्वै है लांबी मोटी
काचो दूध पियावत पचि पचि देत न माखन रोटी
सूर श्याम चिरजीवो दोऊ हरि हलधर की जोटी।

बालक कृष्ण का अपनी चोटी बढ़ने के सम्बन्ध में माँ से पूछना सहज प्रश्न है। मध्यकालीन बालक के लिए चोटी आकर्षण का विषय है। वह उसको देखकर प्रसन्न होता है। अपनी चोटी को बढ़ते हुए न देखकर बालक कृष्ण माँ पर आरोप लगाते हैं कि मक्खन और रोटी न देने तथा बराबर कच्चा दूध पिलाने के कारण चोटी नहीं बढ़ती। कृष्ण की यह कार्य-कारण-कल्पना अत्यन्त स्वाभाविक है। इसी दृष्टि से यह पद बालोपयोगी है।

पर ऐसे पद उंगलियों पर गिनने लायक हैं।

महाकवि तुलसीदास के रामचरितमानस में भी बालरुचि-बालकों को नैतिकता उपदेश की शिक्षा देनेवाले प्रसंग आ गए हैं। जैसे 'सेवा सो जो करै सेवकाई' या 'मिलइ न जगत सहोदर भ्राता' अथवा विश्वामित्र की यज्ञरक्षा, जनकपुर में धनुष के न टूटने पर जनक का निराश होकर राजाओं से 'बीर बिहीन मही मैं जानी' कहना और उत्तर में लक्ष्मण के क्रोध प्रकट करके वीरतापूर्ण वचन कहने का प्रसंग तथा परशुराम लक्ष्मण संवाद, केवट प्रसंग, हनुमान द्वारा लंका दहन आदि मानस के कुछ अंश किशोरों के लिये अवश्य ही रोचक हैं।

परशुराम को धनुष टूटने पर क्रोध प्रकट करते हुए देखकर लक्ष्मण बालकों की विनोद प्रकृति का परिचय देते हैं जो परशुराम के क्रोध को बढ़ाने में सहायक बनती है। लक्ष्मण कहते हैं—

(लखन कहेउ) मुनि सुजसु तुम्हारा। तुम्हहि अछत को बरनै पारा।।
अपने मुँह तुम्ह आपनि करनी। बार अनेक भाँति बहु बरनी।।
नहिं संतोषु त पुनि कछु कहहू। जनि रिस रोकि दुसह दुख सहहूँ।।
वीरब्रती तुम्ह धीर अछोभा। गारी देत न पावहु सोभा।।

सूर समर करनी करहिं, कहि न जनावहिं आपु।
विद्यमान रन पाइ रिपु, कायर कथहिं प्रतापु।।

यह प्रसंग विनोदपूर्ण ही नहीं प्रकारांतर से उपदेशप्रद भी है। यही कारण है कि बालकों के पाठ्यांशों में ऐसे प्रसंगों को आज भी महत्त्व दिया जाता है।

अंग्रेजी की मध्यकालीन मृत्युपरक बाल कविताओं से मानस का उपर्युक्त अंश बहुत श्रेष्ठ है। मध्यकाल में प्रचलित अंग्रेजी बाल पाठ्यपुस्तक में निम्नांकित कविता सम्मिलित थी—

आइ इन द बरीइंग प्लेस मे सी,
ग्रेव्ज सार्टर दैन आई,
फ्राम डेथ्स अरेस्ट नो एज इज फ्री,
यंग चिल्ड्रेन टू मस्ट डाइ।[1]

उपर्युक्त कविता में कवि ने ईसा और बालक की बातचीत कराई है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से ऐसी मृत्युसूचक कविताएँ बालकों के लिए उपर्युक्त नहीं हैं, जब कि रामचरितमानस के विवेचित अंश को निर्विवाद रूप से उपयोगी माना जायेगा।

मृत्युपरक या आत्महीनता बोधक कविताओं के प्रति हिंदी के एक वर्ग में अब भी ललक है। ऐसे लोग बालकों की पाठ्यपुस्तकों में सूर के एक विनय पूर्ण पद को प्रायः संकलित करते हैं—

मो सम कौन कुटिल खल कामी
जिन तनु दियो ताहि बिसरायो ऐसो नोन हरामी

ऐसी कविताएँ न मनोवैज्ञानिक दृष्टि से बालकों के लिए उपयुक्त हैं, न शैक्षिक दृष्टि से।

मध्यकालीन प्रख्यात कवियों के साहित्य में प्राप्त अंशों के अतिरिक्त कुछ ऐसी स्वतन्त्र कृतियाँ भी प्राप्त होती हैं जो बालकों के अनुरंजन और ज्ञान संप्रेषण में सक्षम हैं। ऐसी कृतियाँ दो प्रकार की हैं—(१) मौलिक और (२) अनूदित।

मौलिक कृतियों में वीरता के प्रसंगों से सम्बन्धित रचनाएँ हैं जैसे बबुर वाहन की कथा और हास्य से सम्बन्धित रचनाएँ हैं जैसे रेल वर्णन तथा रुपैया अष्टक और अनूदित में नीति एवं शिक्षाप्रद पंचतंत्र और हितोपदेश के अनुवाद प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त शुकबहत्तरी और बैताल पचीसी के रूपांतर भी हैं।

---

१. ए क्रिटिकल हिस्ट्री आफ चिल्ड्रेंस लिटरेचर : ले० मीग्स, पृ० १२३।

यह संपूर्ण साहित्य पद्यबद्ध है, जो मध्यकालीन काव्य की प्रमुख विशेषता है। वर्णन शैली और विषय वस्तु की दृष्टि से ये कृतियाँ बालोपयोगी सिद्ध होंगी। ऐसी कृतियाँ निम्नांकित हैं :—

पुरातन कथा—प्रस्तुत ग्रन्थ 'ब्रजविलास' के सुप्रसिद्ध रचयिता ब्रजवासी-दास का है। कृष्ण जीवन की कथा पर इस ग्रंथ की रचना हुई है। माता यशोदा कृष्ण को रामकथा सुनाती हैं। बालकों के लिये चौपाई जैसा सरल दीर्घ मात्रांत छन्द उपयोगी है। कवि ने इसी छंद का व्यवहार किया है। भाषा की सरलता और वर्णन विषदता निश्चित ही बालकों की रुचि के स्तर पर है। ग्रंथ का प्रारम्भिक अंश इस प्रकार है—

पौढ़ौ लाल कहत महतारी
कहौं कथा इक श्रवणन प्यारी
हर्ष यह सुमिरन बनवारी
पौढ़ि गए हँसि देत हुँकारी
नगर एक रमणीक सुहावन
नाम अवध अति सुन्दर पावन
बड़े महल तहँ अगम अटारी
सुन्दर विशद चारु गढ़ चारी
बहुत गली पुरबीच सुहाई
रहे सदा सब सुगन्धि सिंचाई
भाँति भाँति बहु हाट बजारू
अति सुन्दर जनु विश्व सिंगारू
तहाँ नृपति दशरथ रजधानी
तिनके नारि तीनि पट रानी
कौशिल्या कैकेयी सुमित्रा
तिन जन्मे सुत चार पवित्रा

रामकथा का यह पर्याप्त सरल रूप है। कवि ब्रजवासीदास संवत् १८२७ के लगभग वर्तमान थे।[1]

रेल वर्णन—माधो या माधव कवि का काव्यमय रेल वर्णन भी बड़ा रोचक और विनोदपूर्ण है। कवि ने रेल वर्णन में रेल विषयक जानकारी देने के साथ-

---

१. हस्तलिखित हिंदी ग्रन्थों का खोज विवरण : संख्या १६ सन् १६३५-३८, पृ० २७४। (ना० प्र० स०)

साथ सरलता भी बनाए रखी है। रेल वर्णन एक छोटी-सी पुस्तिका है, जिसका कुछ अंश इस प्रकार है—

घन सो घहराति औ उड़ति हाहाकार करि
खात पाठ पानी धुवा छायो आसमान है।
वौक (?) बाहार देश देशन सो भेंट हो
ऐसी फहरात मानो अर्जुन को बान है।।
माधो कवि कहै नेक पाइके बखान करौ
लाखान मन लादि लेत जानत जहान है।
धाम है सुजान बात दूसरी न आन मारौ
रेल मेरी जान तो कुबेर को विमान है।।

प्रस्तुत कृति में लेखक ने विभिन्न सवारियों का उल्लेख करते हुए रेल की सवारी को सर्वोच्च माना है और उसका बड़ा रोचकतापूर्ण वर्णन किया है—

और की सवारी असवारी सबै न्यारी न्यारी,
रेल की सवारी से सवारी सबै रद्द है।

मध्यकाल की यह महत्त्वपूर्ण बालोपयोगी कृति है।[1]

बबुरवाहन कथा—कवि कनकसिंह कृत बबुरवाहन कथा अवधी भाषा की रचना है। बबुरवाहन या वभ्रुवाहन वीर अर्जुन का वीर पुत्र था। इसकी माता का नाम उलूपी था।

ग्रन्थ में परम्परानुसार वंदना के बाद सर्वप्रथम कवि ने युधिष्ठिर के यज्ञानुष्ठान और अश्व छोड़ने का वर्णन किया है। अश्व मनीपुर आता है। फिर वभ्रुवाहन उत्पत्ति प्रसंग है। वभ्रुवाहन घोड़ा पकड़ लेता है। माता उलूपी घोड़ा छोड़ने का उपदेश देती है। अंत में अर्जुन और वभ्रुवाहन युद्ध की तैयारी करते हैं।

इस प्रकार, कवि एक वीर पिता के विरुद्ध एक वीर बालक की प्रतिष्ठा करता है। ऐसे प्रसंग में वभ्रुवाहन के व्यक्तित्व से बालक अवश्य तादात्म्य स्थापित कर लेंगे।

दोहा चौपाई छन्द में महजवृत के साथ ग्रन्थ प्रारम्भ होता है—

दोहा—बबुरवाहना कथा एह, पंडव कुल के भूप
कनकसिंह कवि भाषा, कथा कीन्ह अनुरूप

---

1. **हस्तलिखित हिंदी ग्रन्थों का खोज विवरण : सन् १६२६-२८ : पृ० ४१७।**

चौपाई—सारद कंठ प्रकासक कीजै, दिव्य ज्ञान दे दुरमति छीजै।
हींगुलाज हिय करहु सहाई, कथा बबुरवाहन सुखदाई ।।
राय जुठीष्ठिल जग्य सुठाना, सारथी भये सिरी भगवाना।
कटक जोरि अर्जुन संग दीन्हा, सावकर्न घोरा पुनि लीन्हा।
गरुड़ समान वेगि नियराई, महा भयावन रन जेहि ठाई।
बबुरबाहने धनुष चढ़ावा, अर्जुन केरि सेन जनु आवा।
पुत्र-पुत्र के कुंते रोवा, धनुष लड़ाइ नृपति मुख जोवा।
गदा हाथ ले भीम प्रचारा, मोर भाइ अर्जुन केइ मारा।[1]

वीर बालक बभ्रुवाहन की कथा मध्यकाल में इतनी प्रचलित रही है कि अनेक कवियों ने इसको आधार बनाया। कवि कनकसिंह के अतिरिक्त कृष्णदेव और रामप्रसाद भाट कृत बभ्रुवाहन की भी कृतियाँ उपलब्ध हैं।

रुपैया अष्टक—प्रस्तुत पुस्तक में श्रीधर ने रुपये का मनोरंजक शैली में वर्णन किया है। काव्य रचना लोक शैली पर है। रुपया सभी कार्यों का माध्यम है। बिना रुपये के कुछ सम्भव नहीं, यहाँ तक कि रुपया ईश्वर से भी बड़ा है। कवि कहता है—

मुकुट हेत हरि सीस नवायो, वेस्यो को धन छूचो
कह श्रीधर गुण बलदाऊ (?), रीप्यो राम सूं ऊंचो
गुरु गणेश की पूजा को फल, बिना दक्षिणा बूचो
कह श्रीधर गुण बलदाऊ, रीप्यो राम सूं ऊंचो
गुरु की भेंट नजर नरपति की. मात पिता को हूंचो
कह श्रीधर गुण बलदाऊ, रीप्यो राम सूं ऊंचो
रुपयो बड़ो कहावै जग में, गिणे न ऊंचो नीचो
कह श्रीधर गुण बलदाऊ, रीप्यो राम सूं ऊंचो।

बार-बार 'रीप्यो राम सूं ऊँचो' पंक्ति की पुनरुक्ति, अनुप्रासात्मक ललित भाषा और मनोरंजकता के साथ रुपये की प्रशंसा—इन गुणों से यह कृति बालकों को रोचक प्रतीत होगी।

उपर्युक्त मौलिक कृतियों के अतिरिक्त प्रमुख अनूदित कृतियां निम्नांकित हैं—

---

१. हस्तलिखित हिंदी ग्रन्थों का खोज विवरण : सन् १९२६-२८, पृ० ३५४।

हितोपदेश--हितोपदेश जनशिक्षा और नैतिकतापूर्ण उपदेश ग्रन्थ है। मध्यकाल में आबालवृद्ध शिक्षा के लिए अनेक कवियों ने इसके अनुवाद प्रस्तुत किए। पर ये सभी अनुवाद भाषा और छन्द तथा प्रतिपादन की दृष्टि से पूर्णतः सफल नहीं हैं। इसका कारण कविता की अपनी प्रकृति है। गद्य की भाषा तथ्यात्मक अधिक होती है, कविता की भाषा व्यंजनात्मक। इसीलिए कविता में थोड़े में कही गई बात का व्यंजना से अधिक अर्थ लगाया जाता है। पर जिस गद्य में व्यंजनात्मकता न हो, केवल तथ्यपरकता हो उसे कविता में बाँधने पर पूर्ण सफलता नहीं मिलती।

पंचतंत्र या हितोपदेश अथवा अन्य कृतियों के अनुवाद इसलिए अधिक सफल नहीं हो सके।

हितोपदेश के कुछ अनुवाद पूर्ण हैं, कुछ अपूर्ण। इस दिशा में राम लाल अथवा राम कवि की 'हितामृतलतिका', नारायण भट्ट का 'हितोपदेश', बंशीधर प्रधान का 'मित्र मनोहर' और किसी अज्ञात कवि की 'पिंगल बैल की कथा' महत्त्वपूर्ण कृतियाँ है। 'पिंगल बैल की कथा' सचित्र भी है।

यहाँ नारायण भट्ट कृत हितोपदेश के अनुवाद का परिचय दिया जा रहा है। यह अनुवाद संवत् १६१५ के आस-पास का है। कवि देव वन्दना की परम्परा का निर्वाह करते हुए ग्रन्थ प्रारम्भ करता है।

सिद्धि साधु के काज को, सो हर करे कृपाल।
गंगफेन की लीक सी, सिर ससिकला विसाल।।
सुनु हित हित उपदेश यह, देत वचन रचनानि।
देवन की आनी लहै, राजनीति पहिचानि।।

राजपुत्र बोले जिय जानी
विस्न सर्म को आदर मानी
द्विजवर जो राजन को चही
सोई कथा आपु यह कही
जो भा जन्म और अवतारा
सुनिये राज अंग व्योहारा
एक बहुरि फिरि अब भल भयऊ
सुख समूह पाये दुख गयऊ।[1]

1. **हस्तलिखित हिंदी ग्रन्थों का खोज विवरण : १६२६-२८ ई०, पृ० ४७२।**

मध्यकाल के ये पद्यानुवाद नीतियों को कंठस्थ करने की दृष्टि से उपयोगी हैं।

अन्य कृतियाँ वेताल की कहानियाँ और सिंहासन बत्तीसी के पद्यानुवाद हैं।

विक्रम विलास—राजा विक्रमादित्य से सम्बन्धित वेताल की कहानियाँ मूलतः संस्कृत में हैं, जिनका गंगेश मिश्र ने संवत् १६४५ के आस-पास रूपांतर किया है। कवि की भाषा बड़ी सजीव और मूर्तरूप खड़ा करने में सक्षम है। छंद भी गतिशील है। इससे बालकों के लिए ग्रन्थ रोचक हो गया है। उज्जैन नगर का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

उज्जैन नगर एक अति अनूप
जहाँ बसत नारि नर परम रूप
संतोष सील सुख के निधान
निज धर्म कर्म जिनके प्रधान
नित करहिं होम जप जग्य दान
तन तेज चन्द रवि के समान।

भाषागत मूर्तिमत्ता और अनुप्रासात्मकता के कारण भी उपर्युक्त उद्धरांश महत्त्वपूर्ण है।[1]

विक्रम चरित्र—छत्र कवि या छत्रसिंह रचित विक्रमचरित्र का आधार संस्कृत की सिंहासन बत्तीसी है। जनश्रुति के अनुसार महाराज विक्रमादित्य के सिंहासन की बत्तीस पुतलियाँ जो कहानियाँ सुनाती हैं, वे आदर्श मूलक हैं। ग्वालियर के राजा कल्याणसिंह के आश्रित छत्रसिंह ने सं० १७५१ में ग्रन्थ की रचना की। ग्रन्थ की रचना में छंद निरूपण की प्रवृत्ति भी परिलक्षित होती है। राजा भोज की प्रशंसा करते हुए कवि कहता है—

दारिद की आधि व्याधि दाहन धनंतरि सो
सूर सो उदोत जग जाको अरविन्द सो
कुंजर से पुंज अरिगंजन को केहरि सो
छत्र भने सज्जन चकोरनि को चंद सो
नाकपति पुजै त्ररोष गिरिवर कर
रछिबे को दुनी गोप को गोविन्द सो

---

१. हस्तलिखित हिंदी ग्रन्थों का खोज विवरण : सन् १६१७-२०, पृ० १५२।

भोज नरनाह सो है भूमिभार भुजा धरे
जुद्ध भूमि मध्य रुद्र ग्यारहो कपिंद सो।[१]

संवत् १८१२ में रचित अखैराम कृत विक्रम बत्तीसी भी उपलब्ध हुई है।

सुकबहत्तरी—यह बहत्तर रोचक कहानियों का संग्रह है। ग्रन्थ बालोपयोगी प्रतीत होता है। पर इसका पूर्ण विवरण ज्ञान नहीं है।[२]

मध्यकाल का हस्तलिखित साहित्य पांडुलिपियों के रूप में है। पुराने संग्रहालयों में सुरक्षित इस साहित्य का अभी पूर्ण रूप से अन्वेषण नहीं हो पाया है। उपर्युक्त अनुसंधान नागरी प्रचारिणी सभा के अन्वेषण पर आधारित है।

मध्यकाल की यह उपलब्धि बाल साहित्य की क्रमबद्धता सूचित कर देती है। जिस प्रकार विश्व साहित्य क्रमशः प्राचीन साहित्य से अलग होता गया है और उसने नवीनता के परिवेश में अपने को ढाल लिया है, उसी प्रकार बाल साहित्य भी आगे बढ़ा है। हिन्दी बाल साहित्य संस्कृत के प्राचीन लोकप्रिय ग्रन्थों से जीवन ग्रहण करता हुआ अपनी स्वतन्त्र सत्ता के प्रति भी प्रयत्नशील बना रहा है। और आज उसने अपनी पूर्ण स्वतन्त्र सत्ता बना ली है। किंतु आज भी बाल साहित्य को प्राचीन साहित्य से तत्त्व मिल जाते हैं। वस्तुतः कथांश प्राचीन हो या नवीन, महत्त्व दृष्टि के बालोपयोगी होने का है। जिस रामकथा को तुलसी ने रामचरितमानस के लिए आधार बनाया, उसी रामकथा पर उपेंद्र किशोर राय चौधरी ने बंगला में सुन्दर बाल रामायण 'छोटो रामायण' की रचना की। हिन्दी में भी ऐसी रामायण की रचना की पूर्ण सम्भावना है।

बाल साहित्य रचना स्वतन्त्र साहित्य विधा है। इस रूप में विधा निर्वाह होने पर रचना बाल साहित्य के अन्तर्गत आ जाती है, उसकी विषयवस्तु चाहे जो भी हो।

बाल साहित्य की पहली शर्त है बालकों के मनोरंजन की, बालकों को प्रभावित करने की क्षमता की। मध्यकाल में उपलब्ध साहित्य इस शर्त को पूरा करता है। इस प्रकार अपने क्रम की सूचना देता है।

●

१. हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों का खोज विवरण : सन् १९२६-२८, पृ० ७८३।

२. वही, सन् १९३२-३४, पृ० ११४।

लोक साहित्य में बाल साहित्य की परम्परा : विश्लेषण और विवेचन

पीठिका—साहित्य की विशाल परम्परा को देखते हुए दो बातें स्पष्ट रूप से सामने आती हैं—(१) समग्र साहित्य का कुछ भाग ऐसा है, जिसकी रचना लोक या ग्राम जीवन की छाया में हुई है, परिणामतः उसमें परम्परित शास्त्रीयता का अभाव है और लोक जीवन की सादगी है, (२) कुछ साहित्य ऐसा है, जिसकी रचना परिनिष्ठित शैली में शास्त्र के अनुसार हुई है। अतः उसमें शैलीगत कौशल और शास्त्रीय जटिलता है।

इस विवेचन के आधार पर साहित्य दो रूपों में हो जाता है—लोक साहित्य और शास्त्रीय साहित्य। दोनों प्रकार के साहित्य के आधार तथा विवेच्य तत्त्व अलग-अलग हैं। पर मानव जीवन की अनुभूतियाँ, सुख-दुख के भावों की अभिव्यक्ति दोनों प्रकार के साहित्य का उद्देश्य है। साथ ही, लोक साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि यह आदि साहित्य है और सहज रूप में उद्‌भावित हुआ है, जबकि शास्त्रीय साहित्य शास्त्र के विकास के साथ-साथ विकसित होता गया है। यही कारण है कि लोक साहित्य में जहाँ ताजगी और स्वाभाविकता की मात्रा अधिक होती है, वहीं शास्त्रीय साहित्य में रूढ़िबद्धता और कृत्रिमता की सम्भावना रहती है। ऐसी स्थिति में शास्त्रीय साहित्य लोक साहित्य से तत्त्व ग्रहण करके अपने को सजीव बनाने का प्रयत्न करता है। तुलसी की गीतावली के अनेक गीतों का बंधान लोक गीतों के आधार पर है। हिंदी खड़ी बोली साहित्य में भी ग्रामांचलीय कथा और काव्य दोनों प्रकार के साहित्य की रचना हुई है।

वास्तव में शास्त्रीय साहित्य का विकास लोक साहित्य की भूमि पर ही हुआ है। क्रमशः शास्त्रीय साहित्य में शास्त्र तत्त्व बढ़ता गया और लोक साहित्य से उसकी पृथकता भी बढ़ती गई। शास्त्र तत्त्व के बढ़ने का कारण मानव की प्रतिभा और उद्‌भावना शक्ति है। इसी प्रतिभा से विभिन्न शास्त्रीय स्थापनाओं

और वादों की वृद्धि हुई, जिनसे साहित्य जटिल हुआ। यह प्रतिभा शास्त्र अध्येताओं और सुशिक्षिताओं की थी।

उधर सहज लोक साहित्य अपनी मूल विशेषताओं के साथ अपने ही स्थान पर रह गया, वहीं फलता-फूलता रहा। लोक साहित्य स्रष्टा सदा सभ्य संसार से अलग रहे और अपने आदिम जीवन को अपना वास्तविक जीवन मानकर चलते रहे।[1]

इस प्रकार लोक साहित्य, साहित्य का मूल अथवा आदि साहित्य है और शास्त्रीय साहित्य परवर्ती रचना है। आदि साहित्य होने के कारण ही इसमें सदा स्वाभाविकता रही है, जिसकी ओर शास्त्रीय साहित्य आकृष्ट होता रहा है।

लोक साहित्य की विशेषताएँ

(१) लोक साहित्य आदि मानव का आदि साहित्य है। यह उस युग का साहित्य है, जब मानव प्रकृति की गोद में रहता था। उसके जीवन में प्रकृति की ही प्रधानता थी। एक ओर उसका जीवन था, दूसरी ओर पशु-पक्षियों का। पशु-पक्षियों तथा वृक्षों और लताओं से उसका इतना अधिक सान्निध्य था कि वह उनको अपने जीवन का अंग समझता था। अपनी तीव्र कल्पनाशक्ति से उसने यह मान लिया था कि पशु-पक्षी ही नहीं, वृक्ष-लताएँ तक मानव-से बात कर सकते हैं। इसी आधार पर लोक साहित्य में पशु, पक्षी, वृक्ष और लताएँ आपस में भी बातें करते हैं और मानव से भी।

(२) इसकी रचना लोक हृदय ने सहज रूप में की है। यह साहित्य प्रयत्नज नहीं। 'ग्राम में प्रतिदिन विभिन्न कार्य भी चल रहे हैं एवं उन्हीं के बीच एक चिरंतन रागिनी बज उठने की चेष्टा भी पा रही है।'[2]

यों लोक साहित्य लोक जीवन की सच्ची अभिव्यक्ति है। जैसे जिस देश के लोक जीवन के उपादान रहे हैं, वैसा ही उस देश का लोक साहित्य रहा है। लोक जीवन की आशा, आकांक्षा, अभाव और अनुभूतियाँ इस साहित्य में क्रमबद्ध अंकित होती गई हैं।

(३) सहज उद्भावना के कारण इसके पाठों में एकरूपता नहीं है। वस्तुतः लोक साहित्य एक व्यक्ति की रचना नहीं है, जनसमुदाय की सर्जना है।[3] प्रकृति

---

१. द पीप्यूल दैट लिव इन मोर आर लेस प्रीमिटिव कंडीशन आउटसाइड द स्फीयर आफ साफिस्टिकेटेड इनफ्लूएंसेज—डा० दास : ए स्टडी आफ ओरिशन फोक्लोर (हिंदी साहित्य का वृहद इतिहास : षोडश भाग, पृष्ठ ४)

२. रवीन्द्रनाथ : ले० डा० शिवनाथ, पृ० २६१।

३. वही : पृ० २५७।

और परिस्थिति के अनुसार समुदाय ने उसमें अंतर भी कर लिया। इस प्रकार पाठांतर भी होते चले गये। ये सभी पाठ महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि सभी में लोक जीवन सहज रूप में व्यक्त है। पं० रामनरेश त्रिपाठी ने 'भगवती देवी' शीर्षक लोक गाथा के तीन-चार पाठ संकलित किए हैं। पर इन सभी पाठों में किसी भी पाठ को अन्य पाठ से निम्न नहीं कहा जा सकता।[1]

बैलेड अंग्रेजी का एक लोक छंद है जिसमें किसी जनप्रचलित कथा को वर्णनात्मक काव्य के रूप में सादगी तथा अशास्त्रीयता के साथ प्रस्तुत किया जाता है। गायक किसी लोक बाजे पर इस कथात्मक काव्य को गा गाकर सुनाते हैं। पर इसका कोई निश्चित पाठ नहीं प्राप्त होता। गायक अपनी इच्छानुसार इसमे परिवर्तन करते रहते हैं ——किसी भी पाठ के संबंध में नहीं कहा जा सकता कि वही बैलेड का निश्चित पाठ है।[2]

(४) लोक साहित्य मौखिक परम्परा से प्राप्त साहित्य है। किसी अनादि-काल में उसकी रचना हुई। यह रचना आगे की पीढ़ी की वाणी पर बढ़ी। उसने उसमें परिवर्तन, परिवर्द्धन किया और आगे की पीढ़ी को भावनामय लोक साहित्य का रिक्थ सौंप दिया। मौखिक परम्परा में लोक साहित्य एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को उत्तराधिकार रूप में प्राप्त होता रहा है। पीढ़ियों और व्यक्तियों के परिवर्तन ने ही लोक साहित्य की भावधारा में परिवर्तन किया और उसे नवीनता प्रदान की।[3]

लोक साहित्य के मौखिक संचरण ने कहीं-कहीं मूलरूप को ही समाप्त कर दिया अथवा इतना परिवर्तित कर दिया कि अन्य रूप मूल रूप जितने ही महत्त्व-पूर्ण हो गए। आज आल्हाखंड बुंदेली, अवधी और भोजपुरी तीनों रूपों में प्राप्त होता है और तीनों रूपों में महत्त्वपूर्ण है। पर जगनिक का मूलरूप कोई एक ही रहा होगा, जो बुंदेलखंडी होगा।

---

१. कविता कौमुदी : पं० रामनरेश त्रिपाठी, भाग ५।

२. दैट इज व्हाइ देयर इज नेवर एनी एक्चुअल करेक्ट टेक्स्ट आफ ए बैलेड प्रापर। सिंगर्स आर एलाउड टु आल्टर इट टू देयर लाईकिंग......नो सिंगल वर्सन मे वी रिगार्डेड एज 'द राइट वन' इन एन एब्सोल्यूट सेंस : राबर्ट ग्रेव्ज : द इंगलिश बैलेड (हिंदी साहित्य का वृहद् इतिहास : षोडश भाग, पृ० ६१ : प्रस्तावना से उद्धृत)

३. फोक्सांग्स पास्ड आन फ्राम माउथ टु माउथ आर अनस्टेबुल। दे आर कंटीन्युअली सिफिटिंग : डिक्शनरी आफ वर्ल्ड लिटरेरी टर्म्स : टी सिप्ले, पृ० १६३।

मौखिक परम्परा ने लोक साहित्य में स्वरूप वैभिन्न्य अवश्य पैदा किया, पर इससे एक लाभ भी हुआ कि आदिमयुगीन मानव संस्कृत से आधुनिक सभ्यता तक के[१] सांस्कृतिक इतिहास का समावेश भी हो गया।

(५) सम्पूर्ण लोक साहित्य असद् पर सद् की विजय के दृष्टिकोण से अनुप्राणित है। वस्तुतः लोक साहित्य मानव मन में निहित आदर्शों का साहित्य है। इस साहित्य में महान् नैतिक गुण हैं, उच्चकोटि की मार्मिकता है और भौतिक जगत में बुद्धि, विवेक, चतुराई, वाक्‌पाटव, व्यावहारिकता आदि गुण हैं तो आध्यात्मिक जगत में करुणा, ममता, सत्य, प्रेम, सदाचार आदि का प्रसार है।[२]

लोक साहित्य का नायक, प्रायः विपत्तियों में फँसता है। पर वह बड़े साहस के साथ विपत्तियों का सामना करता है और अन्त में विजय प्राप्त करता है। इस प्रकार लोक साहित्य के अन्तर्गत मुख्यतः कहानियों में लक्ष्य पूर्वकल्पित होता है, जिसकी प्राप्ति के लिए घटनाक्रम की सृष्टि की जाती है।

(६) एक देश की विभिन्न भाषाओं के लोक साहित्य या विश्व के लोक साहित्य में समानता प्राप्त होती है। यह समानता है शैलीशिल्प, वर्णन, सौन्दर्य-विधान, कथा-अभिप्राय (मोटिफ) और कथानकों[३] में।

बाल साहित्य का अस्तित्व

ऊपर जिस लोक साहित्य का विश्लेषण किया गया है, वह केवल बड़ों के लिए ही नहीं; बालकों के अनुरंजन के लिए भी है। प्राचीन काल में चूल्हे के पास या आग के पास अथवा सरस श्रोताओं की मजलिस में सुनाई जाने वाली कहानियाँ तथा गीत बड़ों और बालकों, दोनों के लिए ही होते थे। उनमें उन तत्त्वों का प्रायः समावेश होता ही नहीं था जिससे बड़ों और बालकों के रसास्वादन में अन्तर पैदा हो।[४]

---

१. ग्रिम की कहानियाँ : अनु० डा० विष्णुस्वरूप : उपस्थापन, पृ० ३।

२. वही, पृ० ३।

३. वही, पृ० ३।

४. इन दैट ऐंसियेंट वर्ल्ड आफ प्रिमिटिव आइडियाज एंड प्रिमिटिव इंपल्सेज देयर वाज लिटिल डिस्टिंक्शन बिटविन ह्वाट इंटरटेंड द एल्डर्स एन्ड ह्वाट इंटरटेंड द यंग : ए क्रिटिकल हिस्ट्री आफ चिल्ड्रेन्स लिटरेचर : मीग्स, पृ० ४।

यह साहित्य तो वह है जिसे बड़ों के जन समूह ने बड़ों के साथ-साथ बालकों के अनुरंजन के लिए भी प्रस्तुत किया था। पर लोक साहित्य के अन्तर्गत साहित्य की एक धारा वह भी है जिसकी रचना बालकों ने सहज रूप में खेलते समय या गाते समय की है। यह बालकों के लिए, बालकों का और बालकों द्वारा निर्मित लोक साहित्य है। बालकों के अनुक खेलगीत, सहगान और खेल कथाएँ बालकों की अपनी रची हुई हैं। उनमें एक पंक्ति एक बालक की होगी, दूसरी पंक्ति दूसरे बालक की और तीसरी पंक्ति तीसरे की। इस प्रकार सम्पूर्ण बाल समाज की सहज वृत्तियों का उसमें समावेश है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह बाल लोक साहित्य अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इसमें बालकों की अपनी संस्कृति की ही अभिव्यक्ति नहीं, उनके मनोवैज्ञानिक अध्ययन के सूत्र भी हैं।

उदाहरण के लिए एक बालक खेल-खेल में गाता है—"अक्कड़ बक्कड़ बम्बे भो।" दूसरा बालक दूसरी पंक्ति बढ़ाता है—"अस्सी नब्बे पूरे सौ।" तीसरा बालक आगे जोड़ता है—"सौ में लागा धागा।" चौथा बालक इस ध्वनि सृष्टि को समाप्ति की ओर ले जाता है—'चोर निकलकर भागा।' पूरा खेल गीत इस प्रकार बनता है—

अक्कड़ बक्कड़ बम्बे भो
अस्सी नब्बे पूरे सौ
सौ में लागा धागा
चोर निकल कर भागा

बालकों के समस्त खेलगीत बालकों की ही सृष्टि प्रतीत होते हैं। इस प्रकार निर्मित काव्य 'सहजात काव्य' है।[1]

लोक साहित्य में बाल साहित्य की सुनिश्चित परंपरा प्राप्त होती है। बालकों के मनोरंजन के लिए लोक साहित्य में पर्याप्त बाल साहित्य है। बाल लोक साहित्य द्वारा संप्रेषित संदेश साहित्य की भूमि पर प्रस्तुत किया गया है। उसमें नीरस उपदेशों का आग्रह नहीं है, जितना घटना चक्र का निदर्शन है। यही कारण है कि बालक लोक साहित्य में आनन्द की अनुभूति करते हैं और खेल में तो लोक खेलगीतों का व्यवहार करके उसके छंद, लय, तथा ध्वनि में डूब जाते हैं। इसका कारण यही है कि यह काव्य या साहित्य मनोवैज्ञानिक दृष्टि से पूर्णतः बालकों के स्तर पर है। जैसे—

---

१. पोएट्री आफ ग्रोथ : इंट्रोडक्शन टू द स्टडी आफ लिटरेचर : हडसन।

सुख सुख पट्टी
चंदन गट्टी
राजा आया
महल चुनाया
झंडा गाड़ा
बजा नगाड़ा
रानी गई रूठ
पट्टी गई सूख ।

उपर्युक्त कविता में तुक मिलाने का सचेतन प्रयास नहीं है, न शास्त्रीयता। पर भाव जगत बाल जीवन का है, शब्दावली केवल बालकों की है और कविता सहज निर्मित है । कविता बच्चों की पट्टी सुखाने के लिए है । पट्टी सामान्य लकड़ी की होती है, पर बच्चे की सहज कल्पना उसे चंदन निर्मित मानती है । यह कल्पना ठीक वैसी ही है जैसे महिलाएँ मिट्टी के पात्र में कुएँ का पानी भरकर कहती हैं—"सोने का गड़ुआ गंगाजल पानी ।"

इसके अनंतर उपर्युक्त बाल गीत में राजा के आने, महल बनवाने, महल पर झंडा गाड़ने, नगाड़ा बजने और फिर रानी के रूठने का प्रसंग है । क्षण भर की ललित कल्पना में राजा के जीवन की यह अत्यधिक मनोरंजक कहानी कह दी जाती है । तब तक पट्टी भी सूख जाती है ।

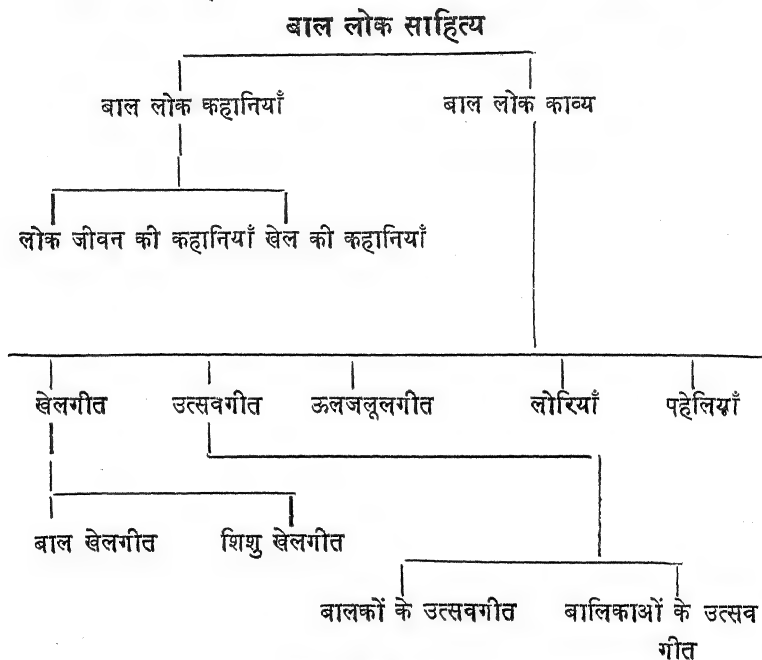
आज तीन से छः वर्ष की वय के बच्चों के लिए शिशुगीत (नर्सरी राइम्स) लिखे जाने लगे हैं । लोक बोलियों में शिशुगीत पहले से थे । पर पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित शिशुगीतों को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि अनेक शिशुगीत रचयिता शिशुगीतों की प्रकृति को नहीं समझ सके हैं । इसलिए उन्होंने शिशुगीतों में हास्य तत्त्व के स्थान पर गंभीर दार्शनिकता का समावेश कर दिया है और कथा शून्यता के स्थान पर कथा तत्त्व का समावेश किया है ।

शिशुगीत रचना का सही स्वरूप लोक बाल गीतों में उपस्थित है । शिशुगीत रचना का विकास भी लोक बाल गीतों से ही हुआ मानना होगा ।

जो हृदयग्राहिता लोक बाल गीतों में है, वही लोक बाल कहानियों में भी । बाल पाठक कहानियों में पशु-पक्षियों और पेड़-पौधों को बोलते हुए पढ़कर लेश मात्र भी संदेह नहीं करता । उसका 'चित्रग्रीव' वास्तव में मनुष्य की बोली में अन्य कबूतरों को समझाता है और उसका 'हिरण्यक' नामक मित्र चूहा होते हुए भी अपने साथी की बात को सामान्य व्यक्ति की भाँति सुनता है तथा जाल

काटकर सब कबूतरों को मुक्त करता है।[1] मानव, पशु, पक्षी, वृक्ष लतादि के उपादानों से निर्मित यह बाल लोक साहित्य बालक को वसुधैव कुटुम्बकम् की प्रतीति कराता है। यहाँ जड़ कुछ नहीं, सब कुछ चेतन है और समस्त चेतन जगत एक सम्बन्ध सूत्र बँधा हुआ है।

बाल लोक साहित्य निम्नांकित रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है :



बाल लोक कहानियाँ

लोक साहित्य बाल लोक कहानियों के भण्डार से भरा हुआ है। बाल कथा साहित्य में लोक कहानियों का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। मानव सभ्यता के विकास क्रम में विभिन्न समयों पर इन कहानियों की रचना हुई। आदि मानव ने अपनी आशा आकांक्षा की भावनाओं को इन कहानियों में ढाल दिया, उनका आदि जीवन इन कहानियों में प्रतिबिंबित हो उठा।

कालांतर में अपनी शैली की सरलता, प्राकृतिक परिवेश और सार्वजनीन भावनाओं की अभिव्यक्ति ने इन कहानियों को बाल साहित्य के अन्तर्गत ला रखा और लोक साहित्य बाल साहित्य की अमर निधि हो गया।

---

१. पंचतंत्र : हिंद पाकेट बुक्स : पृ० ४४-४५।

इस दृष्टि से लोक साहित्य में सांस्कृतिक विकास के तत्त्व निहित हैं। उसमें मानव विकास के इतिहास का प्रतिबिंब उपलब्ध है। इसीलिए इतिहास में गहरी रुचि से परिचालित होकर जर्मन के ग्रिम बंधुओं (जेकब ग्रिम और बिलहेल्म ग्रिम) ने जर्मन की लोक कथाओं का विशाल स्तर पर संग्रह किया। इन कहानियों के अध्ययन से उन्होंने इतिहास के तत्त्वों का अन्वेषण किया। लीगल ऐंटिकिटीज़ (वास्तविक पुराकाल) तथा जर्मन हीरोइक संगाज (जर्मन वीरों की कहानियाँ) जैसे ग्रंथों की रचना इसी अनुसंधान का परिणाम थी।

पर इन कहानियों में बालकों के मनोरंजन की सामग्री छिपी हुई है, इस ओर ग्रिम बंधुओं की दृष्टि लेशमात्र भी नहीं गई थी। यह तो उनका मित्र एकिम वान आनिर्म था जो संग्रहीत लोक कथाओं की पांडुलिपि को पढ़कर प्रसन्नता से कह उठा—'कितना अद्भुत संग्रह है।'[१] उसी ने बर्लिन में इन कहानियों के प्रकाशन की व्यवस्था की और फिर कहानियों की लोकप्रियता दिन प्रतिदिन बढ़ती गई।

लोक साहित्य बाल साहित्य के रूप में सभी भाषाओं में आकस्मिक रूप से ही मान्य हुआ और फिर बाल साहित्य में उसने अपना स्थायी स्थान बना लिया।

लोक कहानियों की रचना समूह मानव या संपूर्ण समाज की रचना है। किसी भी लोक कथा का कोई व्यक्तिगत रचयिता नहीं है। उनकी रचना में वयोवृद्ध लोगों का योग है। पर ये कहानियाँ बालकों को भी रुचिकर लगेंगी, यह बात बहुत पहले ही मालूम कर ली गई थी। विश्व के सभी देशों में बूढ़ी स्त्रियों, दादियों, नानियों और माँओं ने बालकों को सुनाने के लिए इन कहानियों को ग्रहण कर लिया। भारत में बूढ़ी दादी, नानी, और माँओं ने मुख्य रूप से बच्चों को ये कहानियाँ सुनाई हैं। बँगला में 'दादी मार झुली' (दादी माँ की झोली) नाम से लोक कथाएँ प्रकाशित हुई हैं। रूस में तो व्यावसायिक स्तर पर इन कहानियों को सुनाने वाले हुए हैं। आज भी वहाँ सफेद सागर के माहीगीर कोरगूयेव, साइबेरिया के शिकारी सोरोंकोविकोव, गोर्की क्षेत्र के सामूहिक किसान कोवाल्योव और वोरोनेज की अद्भुत कहानी कहने वाली नानी कुप्रियानिखा जैसे सुप्रसिद्ध किस्सागो हैं, जिनकी कहानियाँ लोग बहुत बड़ी संख्या में सुनते हैं।[२]

---

१. ह्वाट ए मार्ववेलस कलेक्शन : रीडर्स डाइजेस्ट : फरवरी १९६६, पृ० ८४।

२. रूसी लोक कथाएँ : ए० पोमेरान्त्सेवा, भूमिका, पृ ०८।

भारत में भी लोक कहानियाँ सुनाने वाले अनेक स्त्री पुरुष हैं। शहरी बच्चे तो पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से एक सीमा में अपनी कहानी की रुचि को संतुष्ट कर लेते हैं, यद्यपि इन बच्चों की संख्या भी थोड़ी ही है, पर गाँव के बच्चों की कहानी की सन्तुष्टि कहानी सुनाने की कला में कुशल वयोवृद्ध महिलाओं और पुरुषों के द्वारा होती है। वैसे तो प्रत्येक घर में थोड़ी बहुत कहानियाँ सभी सुना लेते हैं, पर कहानी सुनाने की कला कुछ ही व्यक्तियों को प्राप्त होती है। ऐसी महिलाएँ अपने सामाजिक जीवन में अत्यन्त सामान्य होती हैं। पर कहानी सुनाते समय उनकी प्रतिभा ही कार्य करती है । इसी प्रकार पुरुष भी अत्यन्त सामान्य होते हैं—किसान, कुम्हार, नाई आदि, पर जब कहानी सुनाते हैं तो जादूगर की भाँति पूरे वातावरण को बाँध लेते हैं। एक महान कवि के कविता पाठ से उनकी किस्सागोई कम नहीं होती। बिना किसी प्रकार का पारिश्रमिक लिये विशुद्ध पर मनोरंजनवृत्ति से रात-रात भर कहानियाँ सुनाकर वे आबालवृद्ध सबके हृदय में साहित्यिक संस्कार उत्पन्न भी करते हैं और ऐसे संस्कारों की रक्षा भी करते हैं।

कहानी सुनाकर दूसरों को मंत्रमुग्ध करने के मूल में कहानी सुनाने की विशिष्ट कला है। श्री वी० बी० देशपांडे ने कहानी सुनाते समय निम्नांकित बातों की ओर संकेत किया है :—

१—कहानी का तार्किक विकास
२—क्रमशः विचारों का संप्रेषण
३—असंबद्ध और अनावश्यक विस्तार से बचाव
४—बीच-बीच में प्रश्न पूछकर श्रोताओं की रुचि को सजीव बनाए रखना
५—घटनाओं का साभिनय उल्लेख
६—स्वरों का प्रभावशाली उतार-चढ़ाव
७—कहानी से नीति का उद्घाटन
८—नीति जीवन पर कैसे घटित होती है,
यह समझाकर कहानी की समाप्त[1]

बच्चों को कहानी सुनानेवालों में कहानी सुनाने की उपर्युक्त विशेषताएँ अवश्य रहती हैं, जिससे उनका कहानी सुनाना आकर्षक हो जाता है।

१. द टाइम्स आफ इंडिया : २४ अगस्त १९६९ के फीचर फार चिल्ड्रेन परिशिष्ट में वी० बी० देशपाण्डे का निबंध : स्टोरी टेलिंग इज एन आर्ट ।'

लोक कहानियाँ भले ही मूलतः बड़ों के लिए और गौणरूप से बच्चों के लिए रही हों, पर बच्चों ने इनसे जीवनीशक्ति प्राप्त की है। जिस समय आज की भाँति उनके लिए साहित्य नाम की कोई चीज न थी, उस समय लोक कहानियों से अपने उपयोग की सामग्री लेकर उन्होंने अपने स्वत्व की रक्षा की।[१]

लोक कहानियाँ अपने निजी रूप में तो महत्वपूर्ण रही ही हैं, इन्होंने बाल साहित्य को प्राणतत्त्व भी प्रदान किये हैं। लोक कहानियों के आधार पर हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में सुंदर बाल कविताओं और बाल नाटकों की रचना हुई है, तथा विश्व की अन्य भाषाओं में भी बाल कविताएँ तथा बाल नाटक निर्मित हुए हैं। हिंदी की कविता 'चींटी और झींगुर' (श्री प्रसाद), नाटक 'गधे' (हबीब तनवीर) आदि तथा बंगला में 'सोनार दोला' कविता (सुकमलदास गुप्त)[२] तथा 'ब्राह्मन ओ ब्राह्मनी' नाटिका (प्रतीपकुमार राय)[३] इत्यादि लोक कहानियों के आधार पर ही हैं।

लोक कहानियों का उपयोग रूस के प्रसिद्ध बाल साहित्य लेखक सैमुएल मारशाक ने बाल साहित्य की अन्य विधाओं में अच्छा किया है। उनका काव्य नाटक 'छोटा सा घर', पूर्ण नाटक 'बारह महीने' तथा 'बिल्ली का नाम बिल्ली कैसे पड़ा', 'धनी आदमी और गरीब आदमी' आदि कविताएँ लोक कहानियों के साहित्यिक रूपांतर हैं। रूस के ही अन्य कवि सेर्गेई मिखाल्कोव का 'नकचिढ़ा खरगोश' तथा पी० येरशोव की लम्बी कविता 'नन्हा कुहानदार घोड़ा' भी सुन्दर उदाहरण हैं। विश्व में प्रायः सर्वत्र लोक कहानियों का बाल साहित्य की अन्य विधाओं में उपयोग हुआ है।

लोक साहित्य में बाल लोक कहानियाँ दो रूपों में प्राप्त होती हैं—

१—लोक जीवन की कहानियाँ

२—खेल की कहानियाँ

लोक जीवन की कहानियाँ

लोक जीवन की कहानियाँ वे हैं, जिनका सम्बन्ध लोक जीवन के प्रधान तत्त्व पशु-पक्षी और प्रकृति से है। अधिकांश बाल लोक कहानियाँ ऐसी ही हैं।

---

१. ए क्रिटिकल हिस्ट्री आफ चिल्ड्रेंस लिटरेचर, : मीग्स, पृ० २३।

२. बंगला बाल पत्रिका : 'संदेश' : जनवरी, १६६६।

३. वही : दिसम्बर, १६६७।

इन कहानियों में पशु-पक्षियों की सभाएँ होती हैं, पक्षी अपने पराक्रम से राजा तक को पराजित कर देते हैं।[१] चूहा टोपी लगाकर अभिमान दिखाता है और अन्त में अभिमान दिखाने का परिणाम भुगतता है,[२] चिड़िया लालच करके कौए को धोखा देती है और अन्त में दंडित होती है।[३] पेड़-पौधे इन कहानियों में साक्षी बनते हैं। पशु-पक्षियों की तरह वे भी इन कहानियों के सजीव अंग होते हैं।

इन कहानियों में पशु-पक्षी जगत प्रेम के एक सूत्र में गुथा रहता है। परस्पर सहयोग करते हैं तो निष्कलुष और निस्वार्थभाव से और जो प्राणी जिस प्रकार का बीड़ा उठाता है, उसे वह पूरा कर दिखाता है।

कहानियों का सत्य मानव जीवन का ही होता है, पर उसे पशु-पक्षियों के माध्यम से व्यक्त किया जाता है।

पशु-पक्षियों के प्रति बालकों के मन में अत्यधिक आकर्षण होता है। इसका कारण सम्भवतः भिन्न जगत से प्राप्त आश्चर्य भावना की परितृप्त है। बालक का संसार में आगमन एक आश्चर्यलोक में आगमन है। इस आश्चर्यलोक में सबसे अधिक विभिन्नतापूर्ण और गतिशील होते हैं पशु-पक्षी। भिन्न-भिन्न रंग-रूप, भिन्न-भिन्न बोलियाँ, भिन्न-भिन्न क्रियाएँ और भिन्न गतियाँ बालक की मनोवृत्ति के विशेष साधन हैं। फिर इनकी बातें सुनकर और इनके कार्य देखकर बालक आनन्द विभोर हो जाता है। उसका मन करता है कि वह इन्हीं पशु-पक्षियों में बैठा रहे, इन्हीं की कहानियाँ सुनता रहे। यह सम्वेदनशीलता और भावातिरेक का परिणाम है। अपनी बाल्यावस्था में बालक कवि की भाँति ही सम्वेदनशील और निष्कलुष होता है। अंग्रेज कवि वर्ड्सवर्थ ने ऐसे बालक को देवदूत और दार्शनिक की संज्ञा दी थी।[४]

बाल लोक कहानियों में बालक को काव्य जैसा आनन्द प्राप्त होता है। नीति इन कहानियों में अंतर्निहित रहती है, प्रत्यक्ष नहीं और शैली इतनी सरल होती है जैसे बालक की अपनी बातचीत हो।

अधिकांश कहानियाँ कविता की अनुभूति कराती हैं, जबकि कुछ कहानियाँ स्वयं में कविता ही होती हैं। ऐसी क्रमसम्बद्ध कहानियाँ गद्य और कविता की

१. पापी की हार : लोक कथाएँ : द्रोणवीर कोहली।
२. चूहे की टोपी : वही।
३. लालची चिड़िया : वही।
४. ओड आन इंटीमेंशन्स आफ इंमारेटिलिटी : कविता : वड्र्सवर्थ।

लय से युक्त होती हैं। कुछ पंक्तियों की लयात्मक आवृत्ति कहानियों में अत्यधिक आकर्षण पैदा कर देती है। ऐसी कुछ कहानियों का संग्रह श्री द्रोणवीर कोहली कृत लोक कथाएँ[1] में है।

निम्नांकित कहानी में उपर्युक्त विशेषताएँ देखी जा सकती हैं—

एक दिन बड़े जोरों से आँधी आई और खूब पानी बरसा। ऐसे में एक कौआ घबराकर एक चिड़िया के घर पहुँचा और बोला, 'बहने, मैं भींग गया हूँ। मारे सरदी के काँप रहा हूँ। कृपा करो, अपने घोंसले में जरा सी जगह दे दो। मैं थोड़ी देर बाद चला जाऊँगा।'

चिड़िया जानती थी कि कौआ बदमाश होता है। इसे अपने घोंसले में ठहराना मुसीबत को नेवता देना है। इसलिए पहले तो उसने टालमटोल की, परन्तु जब कौए ने बार-बार गिड़गिड़ाकर बिनती की तो वह पसीज उठी और बोली, 'अच्छा, ठहर जाओ, पर ऊधम न करना।'

कौआ घोंसले में जा बैठा। घोंसले में चिड़िया के छोटे-छोटे बच्चे भी थे। उनको देखते-देखते कौए की नीयत बदल गई। जब उससे न रहा गया, तो वह चिड़िया से कह उठा, 'अब तो मुझे जोरों से भूख लग रही है। मैं तुम्हारे बच्चे खाना चाहता हूँ। क्या कहती हो, बहन ?'

चिड़िया को काटो तो शरीर में खून नहीं। फिर भी उसने सोचा कि जहाँ तक बने, इस मुसीबत को चतुराई से टरकाना चाहिए। इसलिए वह धीरज धरकर बोली, 'अच्छी बात है। खाओ न, मैं कब मना करती हूँ। पर चोंच धो आओ कुल्ला कर आओ, तो अच्छा रहेगा।'

कौआ फूलकर कुप्पा हो गया। वह उड़ता-उड़ता एक कुएँ पर पहुँचा, जहाँ एक पनिहारा रस्सी खींच खींचकर पानी भर रहा था। कौए ने उससे कहा :

'पन्हर, पन्हर, तुम पन्हरराज, हम कागराज
तुम देओ पनुलिया, धोएँ चेचुलिया, करे कुलुलिया,
खाएँ चिड़ी के चेंचले, मटकावें कूल्हे, काँव, काँव,
रे काँव काँव।'

पनिहारे ने जवाब दिया, 'जरा कुम्हार के पास चले जाओ। एक घड़ा माँग लाओ, तो हम अभी पानी भर दें।'

---

१. लोक कथाएँ : द्रोणवीर कोहली : राजकमल प्रकाशन : दिल्ली।

कौआ फौरन वहाँ से उड़ा और कुम्हार के पास जाकर बोला :

'कुम्हर, कुम्हर तुम कुम्हरराज, हम कागराज,
तुम देओ घड़ुलिया, भरें पनुलिया, धोएँ चेचुलिया,
करें कुलुलिया, खाएँ चिड़ी के चेंचले काँव काँव ।'

कुम्हार ने जवाब दिया, 'हमारे पास हिरन का सींग तो है ही नहीं। हम कैसे मिट्टी खोदें ? कैसे घड़ा बनावें ? जरा हिरन के पास चले जाओ। उससे सींग मांग लाओ, तो हम अभी मिट्टी खोदकर घड़ा बना देंगे ।'

कौआ वहाँ से भी उड़ा और हिरन के पास जा कर बोला :

'हिरन हिरन, तुम हिरनराज हम कागराज,
तुम देओ सिंगुलिया, खुदे मिट्टुलिया, बने घड़ुलिया,
भरें पनुलिया धोएँ चेचुलिया, करें कुलुलिया,
खाएँ चिड़ी के चेंचले, काँव काँव ।'

हिरन ने जबाब दिया, 'भला हम अपना सींग आप ही कैसे उखाड़ें ? जरा झपटकर चले जाओ और कुत्ते को बुला लाओ। वह हमसे लड़ेगा और लड़ाई में सींग टूटकर गिर पड़ेगा। बस तुम लेकर झटपट लंबे होना ।'

कौए ने वहाँ से भी उड़ान भरी और कुत्ते के पास जाकर कहा :

'कुत्त कुत्त, तुम कुत्तराज, हम कागराज,
तुम लड़ो हिरनिया, गिरे सिंगुलिया,
खुदे मिट्टुलिया, बने घड़ुलिया, भरे पनुलिया,
धोएँ चेचुलिया, करें कुलुलिया, खाएँ चिड़ी के चेंचले,
मटकावें कूल्हे काँव काँव, रे काँव काँव ।'

कुत्ते ने जवाब दिया, 'हम तो अभी चलते, पर यहाँ भूख के मारे जान निकली जाती है, खड़े होने की भी हिम्मत नहीं है। जरा दौड़कर ग्वाले के पास चले जाओ। उससे थोड़ा-सा दूध माँग लाओ, तो हम पी कर चलें और हिरन से भी लड़ें ।'

कौआ झटपट वहाँ से चलता हुआ ग्वाले के पास पहुँचा और बोला :

'ग्वाल ग्वाल, तुम ग्वालराज, हम कागराज,
तुम देओ दुधुलिया, पिए कुतुलिया, खुदे मिट्टुलिया,
बने घड़ुलिया, भरे पनुलिया, धोएँ चेचुलिया,
करें कुलुलिया, खाएँ चिड़ी के चेंचले,
मटकावें कूल्हे, काँव काँव, रे काँव काँव ।'

ग्वाले ने जवाब दिया, 'दूध कहाँ से दें, भाई ? कई दिन से घास ही नहीं मिली। बेचारी गाय भूखी है। घास खाए, तो दूध भी दे। न हो, तुम्हीं घसियारे के पास चले जाओ। उससे थोड़ी-सी घास ले आओ। गाय घास खाएगी, तो तुम्हें दूध की कमी न रहेगी। जाते हो, तो जाओ। देर न करो। समझे ?'

कौआ यह सुनते ही उड़ चला और घसियारे के पास जाकर बोला :

घसर घसर, तुम घसरराज, हम कागराज,
तुम देओ घसुलिया, खाए गउलिया,
देए दुधुलिया, पिए कुतुलिया, लड़े हिरनिया,
गिरे सिंगुलिया, खुदे मिट्टुलिया, बने घड़ुलिया,
भरे पनुलिया, धोएँ चेचुलिया, करें कुलुलिया, खाएँ
चिड़ी के चेंले, मटकावें कूल्हें काँव काँव, रे काँव काँव।'[१]

कहानी इसी प्रकार और आगे बढ़ती है। घसियार हँसिया के लिए कौए को लुहार के पास भेजता है ! लुहार आग के बिना हँसिया बनाने में असमर्थ है। अतः कौआ आग लेने के लिए चल पड़ता है। रास्ते में एक बुढ़िया के यहाँ वह आग देखता है। बुढ़िया से आग के लिए निवेदन करता है और वह जलती हुई आग की लकड़ी कौए को दे देती है। कौआ जलती हुई लकड़ो चोंच में दबाकर उड़ता है। हवा के झोंके से आग उसके पंखों में लग जाती है और वह जलकर धरती पर गिर पड़ता है।

कौआ लुहार और बुढ़िया से निवेदन करते समय उपर्युक्त विधि से ही पंक्तियों की काव्यात्मक पुनरुक्ति करता है और अन्त में एक पंक्ति और बढ़ा देता है।

प्रस्तुत बाल लोक कहानी की अन्विति काव्यात्मक है। मानव, पशु और पक्षी तीनों का कहानी में समन्वय है। लोक कहानियों का प्रसिद्ध मोटिफ 'जैसे को तैसा' कहानी में अंतर्निहित है। अन्याय पर न्याय की विजय काव्य सत्य कहानी में प्रतिफलित दिखाया गया है। जो कौआ दूसरे का अहित करने चला था, अंत में उसी का पराभव हुआ।

पर ये सत्य बालकों के लिए प्रच्छन्न है। कहानी में नीति है किन्तु अव्यक्त भाव से। इस नीति को इतने खंडों में देखा जा सकता है—

---

१. काँव काँव,' (कहानी) : जहुरबख्श : पराग : जनवरी, १९६५।

१—दूसरों का हित करने वाले का कभी अहित नहीं होता है।

२—दूसरों का अहित सोचने वाला अपना ही अहित करता है।

३—दूसरों का अहित करने वालों का कोई सहयोगी नहीं बन पाता।

४—यदि कोई अहितमूलक उद्देश्य न समझ सकने के कारण सहयोग कर बैठता है, तो वह सहयोग असहयोगपूर्ण सिद्ध होता है। जैसे बुढ़िया ने सहयोग भाव से जो आग दी, वही कौए के विनाश का कारण बन गई।

५—एकाएक किसी पर सहजभाव से विश्वास कर लेने से कभी-कभी धोखा भी हो जाता है चिड़िया ने कौए की सज्जनता पर विश्वास किया, पर कौआ-प्रवंचक निकला।

हितोपदेश की शैली में यह नीतिकथन व्यक्त कर दिया जाता है जैसे 'मार्जारगृद्ध' कहानी में—

अज्ञात कुलशीलस्य वासो देयो न कस्यचित्।
मार्जारस्य हि दोषेण हतो वृद्धः जरद्गवः॥

(जिसके कुल और चरित्र का ज्ञान न हो, उसे अपने समीप नहीं रहने देना चाहिए। ऐसा न होने से ही तो बिलाव के कारण जरद्गव के प्राण गए।)

हितोपदेश की कहानी अपने कहानीपन को छोड़कर अंत में नीति-कथन मात्र बनकर रह जाती है। नीतिकथन का संबंध बुद्धि से है, हृदय की रसास्वादनवृत्ति से नहीं। बुद्धिगत क्रियाएँ शुद्ध साहित्य के अंतर्गत नहीं आतीं। इसीलिए उसे उपदेश कहा गया है—'हितोपदेश' जब कि प्रस्तुत कहानी विशुद्ध साहित्य कृति है। वह बालकों की मार्मिक कहानी है, जिसमें बालक तन्मय हो जाते हैं। हितोपदेश के रचयिता ने कहानी का नीतिकथन के लिए उपयोग किया है, जबकि प्रस्तुत कहानी के रचयिता ने नीति का कहानी के लिए उपयोग किया है। हितोपदेश के लिए कहानी गौण है, नीति प्रमुख और लोक कहानीकार के लिए नीति गौण है, कहानी प्रमुख।

इसी अंतर के कारण हितोपदेश की अपेक्षा प्रस्तुत कहानी बालकों को अधिक पसंद आएगी। इसके साथ ही अपनी बात कहने के प्रसंग में पंक्तियों की काव्यमय आवृत्तियाँ कहानी में विशेष प्रकार की लय उत्पन्न कर देती हैं।

इन आवृत्तियों का एक प्रभाव कहानी को बौद्धिक भार से मुक्त रखने में भी सहायक बनता है। बालक अपनी आयुजन्य बौद्धिक सीमा के कारण अर्थ गंभीर और बुद्धि प्रधान साहित्य नहीं चाहते। उन्हें प्रत्यक्ष नीतिकथन भी अधिक नहीं रुचते। वे तो हलका-फुलका सरस साहित्य चाहते हैं। इस कहानी में यही गुण है।

कहानी में गद्य होते हुए भी कविता ही प्रमुख है। गद्य तो कहानी को आगे बढ़ाने में सहायक मात्र बनता है। प्रमुखता कविता की ही है। कविता के माध्यम से ही मूल कहानी आगे बढ़ती है।

ऐसी ही कहानियाँ सुन या पढ़कर बालक आनंदानुभूति करते हैं और ऐसी ही सरस कहानियाँ कवि पुश्किन अपने बचपन में अपनी दादी से सुना करते थे। बड़े होने पर उन्होंने लोक कहानियों के विषय में लिखा था—'क्या गजब की हैं ये कहानियाँ। हर एक अपने में एक कविता है।'[1]

बालकों में साहित्यिक संस्कार उत्पन्न करने की दृष्टि से ऐसी कहानियाँ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। ऐसी कहानियों का साहित्यिक मूल्य आँकते हुए चार्ल्स लैंब ने अपने एक पत्र में कालरिज को लिखा था—'यदि तुम्हें बाल्यावस्था में लोक कहानियाँ और दादी-नानी के किस्से सुनने को न मिले होते और इसके स्थान पर तुमने भूगोल और इतिहास रटा होता तो आज तुम्हारी क्या दशा होती।'[2]

कहने की आवश्यकता नहीं कि सैमुएल टेलर कालरिज अंग्रेजी साहित्य में रोमांटिक युग के महान कवि हुए थे।

बाल लोक कहानियों की महत्ता इससे सिद्ध है।

खेल की कहानियाँ

खेल की कहानियाँ वे छोटी-छोटी कहानी नुमा रचनाएँ हैं, जिनका व्यवहार बच्चे खेल के समय करते हैं। खेल बच्चों के जीवन का मुख्य अंग है। यह उनका स्वभाव ही है। बिना खेल के बच्चों का जीवन जीवन ही नहीं है। उस बाल जीवन की कल्पना करना असंभव है जो खेल शून्य है। शिशु अवस्था से किशोरावस्था तक बालक का जीवन खेलमय रहता है। अवस्था के परिवर्तन के साथ-साथ खेलों में परिवर्तन होता जाता है। शिशु अवस्था के बालक का खेल आत्मगत होता है। बाल्यावस्था के खेल में बालक-बालिकाएँ मिलकर खेलते हैं। शिशु अवस्था में जहाँ गहरे रंगों के तथा रंग-बिरंगे खिलौने काम में आते हैं, बाल्यावस्था के खेल उपकरणों के बिना केवल वाचिक रूप में भी खेले जाते हैं।

---

१. रूसी लोक कथाएँ : ए० पोमेरान्त्सेवा : विदेशी प्रकाशन गृह : मास्को, पृ० ७।

२. द अनरिलक्टेन्ट इयर्स, : एल० एच० स्मिथ, पृ० २५।

किशोरावस्था में फिर उपकरणों का व्यवहार बढ़ जाता है। वे गेंद, बल्ला, हाकी, या डण्डा आदि उपकरणों के सहारे अधिक खेल खेलते हैं। इस अवस्था के खेलों की एक विशेषता और है। किशोरावस्था के खेल समजातीय होते हैं अर्थात् किशोर वय के बालक किशोरों के साथ ही खेलते हैं और किशोर वय की बालिकाएँ अपनी समान उम्र की बालिकाओं के साथ।

खेल की कहानियाँ बाल्यावस्था के खेलों के उपयोग में आती हैं। ऊपर कहा गया है कि ऐसे खेलों को बालक-बालिकाएँ मिलकर खेलते हैं। इन बालक-बालिकाओं की अवस्था प्रायः तीन-चार वर्ष से नौ दस वर्ष तक रहती है।

ऐसे खेल एक बालक अथवा बालिका को केन्द्र बनाकर खेले जाते हैं। केन्द्र बने बालक या बालिका को सब बच्चे या तो चिढ़ाते हैं या वह सबको छूने का प्रयत्न करता है। जो बालक छू जाता है, फिर वह अन्य बालकों को छूता है।

इसी प्रकार काफी समय तक खेल चलता रहता है।

चिढ़ाना बालकों की विशेष प्रवृत्ति है। प्रायः अनेक वयोवृद्ध बालकों की बातें सुनकर चिढ़ जाया करते हैं। बालक तब उन्हें साभिप्राय चिढ़ाते हैं। तुलसीदास ने बालकों के स्वभाव की तुलना बर्र से की है—'बर्रे बालक एक सुभाऊ।' बर्र काटकर भागती है, बालक चिढ़ाकर।

चिढ़ाने के खेल में उनके इस स्वभाव की परितृप्ति हो जाती है। मनोविज्ञान की दृष्टि से यह एक दूषित प्रवृत्ति का रचेन (कैथार्सिस) है।

खेल के व्यवहार में आनेवाली कहानियाँ संक्षिप्त होती हैं। बोलने की सुविधा की दृष्टि से वे छोटे-छोटे वाक्य खण्डों में होती हैं और उनकी शैली मुख्यतः प्रश्नोत्तर की होती है। उदाहरणार्थ निम्नांकित कहानी में एक बालिका बुढ़िया बनने का अभिनय करती है। वह हाथ में लकड़ी लेकर अथवा बिना लकड़ी लिए ही कमर झुकाकर बुढ़िया की भाँति चलती है। बालक उससे प्रश्न करते हैं। वह प्रश्नों का उत्तर देती जाती है। अन्त में बालक चिढ़ाने वाली बात कहते हैं। बुढ़िया चिढ़कर सबको मारने दौड़ती है और बालक-बालिकाएँ हँसते हुए इधर-उधर भागते हैं।

बालक-बालिकाओं और बुढ़िया के प्रश्नोत्तर एक कहानी का रूप ले लेते हैं।

'ए बुढ़िया, ए बुढ़िया,
कहाँ जात हऊ ?'

'सुई खोजे ।'
'सुई खोज के का करबू ?'
'थइला सीयब ।'
'थइला सी के का करबू ?'
'पइसा रक्खब ।'
'पइसा रखके का करबू ?'
'भइस खरीदब ।'
'भइस खरीद के का करबू ?'
'दूध दुहब ।'
'दूध दुह के का करबू ?'
'पीयब'
'पी के का करबू ?'
'मोटाइब ।'
'ए बुढ़िया, ए बुढ़िया ।'
'तोरे पीठी पर खून बहत है ।'
'पोछ दा ।'

खून पोंछने के बहाने बालक बुढ़िया की पीठ पर चपत मारकर भागते हैं। बुढ़िया को मारने का बहाना चिढ़ने का विषय है। जब बुढ़िया की पीठ पर घूँसा या चपत पड़ती है तो वह बालकों के झूठ को समझ जाती है और उन्हें मारने के लिए दौड़ाती है।

उपर्युक्त खेल कहानी का प्रत्येक वाक्य खण्ड बालकों के हृदय से निकला है। प्रत्येक वाक्य एक-एक कविता पंक्ति है और सम्पूर्ण अंश का प्रभाव कहानी जैसा पड़ता है। इसमें प्रारम्भ, विकास और अवसान कहानी की तीनों अवस्थाएँ हैं। कहानी की चरम अवस्था वह है जब सभी बच्चे मिलकर कहते हैं—'ए बुढ़िया; ऐ बुढ़िया, तोरे पीठी पर खून बहत है।' और बुढ़िया कहती है पोंछ दा।'

खेल सम्बन्धी ऐसी छोटी-छोटी अन्य कहानियाँ भी हैं।

पर आधुनिक कहानियों से इनकी कोई तुलना नहीं है। आधुनिक कहानी बालक के दैनिक जीवन की समस्याओं को उठाती है, उनके हास्य, विनोदपूर्ण जीवन को आधार बनाती है, जबकि खेल कहानियों का उद्देश्य खेल तक ही सीमित है। खेलों के रूप में इन कहानियों में बालकों के जीवन की हँसी-खुशी व्यक्त होती है।

इन कहानियों के कहने की शैली भी मार्मिक होती है। बच्चे लयात्मक पद्धति से समवेत प्रश्न करते हैं और खेल का केन्द्र पात्र (बुढ़िया, चार आदि) लयात्मक ढंग से ही उत्तर देता है।

लोक जीवन की कहानियों की भाँति इन खेल कहानियों की रचना कब हुई और किसने की, यह बता सकना असम्भव है। वास्तव में खेल कहानियाँ समूह रचना हैं। बालकों ने किसी समय कुछ वाक्य खण्ड खेल की स्थिति में उच्चरित किये होंगे। फिर अन्य बालकों ने कुछ अन्य वाक्य खण्ड जोड़े होंगे। खेल के लिए एक केन्द्र पात्र तथा अन्य पात्रों की कल्पना की गई होगी और इस प्रकार एक खेल कहानी की रचना हुई होगी।

यह भी सम्भव है कि ऐसी कहानी के मूल में किसी प्राचीन लोक प्रचलित कथा का अवशेष रहा हो। काल प्रवाह में मूल कथा समाप्त हो गई और सम्बद्ध खेल कहानी इतनी अधिक रूपांतरित और सांकेतिक हो गई कि अब उसके मूल का अनुसंधान असंभव हो गया है।

जो भी हो, पर इन कहानियों में मनोवैज्ञातिकता है और यह भी स्पष्ट है कि इन कहानियों के रचयिता बालक ही रहे होंगे। तभी इन कहानियों की बुनावट बाल तत्त्वों अर्थात् बालकों के अभीप्सित विषयों से परिपूर्ण है।

यद्यपि उपयुक्त कहानी में विषय की सुसंबद्धता है, पर बालकों के खेल की असंबद्ध कहानियाँ भी होती हैं। ऐसी कहानियों में बालकों की कल्पना की उड़ान अत्यन्त तीव्र होती है। बाह्य दृष्टि से असम्बद्ध लगनेवाली बातों के मूल में बच्चों की वह कल्पना ही होती है जो विभिन्न विषयों को एक में मिलाया करती है। यह गुण बालकों की कल्पना में ही विशेष रूप से होता है।

असंबद्ध खेल कहानियों की असंबद्धता का एक कारण ध्वनिमूलक शब्दों की योजना है। ध्वनि मूलक शब्द गतिशील और क्रीड़ामय होते हैं।

ऐसे ध्वनि प्रधान शब्दों की योजना की निम्नांकित खेल कहानी है, जिसे कई बच्चे मिलकर खेलते हैं। एक बालक आँखें मूँदकर खड़ा हो जाता है। बच्चे विभिन्न स्थानों पर छिप जाते हैं। आँखें मूँदनेवाला बालक विभिन्न प्रश्न करता है और अन्य बालक छिपे हुए स्थान से ही उत्तर देते हैं। अन्त में बालक आँखें खोलकर ढूँढ़ता है। कहानी इस प्रकार बढ़ती है—

'आएँ ?'

'आओ।'

'कै बजे ?'

'अढ़ाई बजे ।'
'खट्टा मिट्ठा ।'
'लाल लाल ।'
'पानी लेके ।'
'दौड़ आओ ।'
'चील चिलौड़िया ।'
'मछली कौड़िया'
'मोटर से कि गाड़ी से ?'

अन्त में बालक 'मोटर से' या 'गाड़ी से' कहते हैं और बालक छिपे हुए साथियों को ढूँढ़ता है ।

इसमें भी कहानी का विकास, मध्य और अंत है तथा इसके भी रचयिता किसी युग के बालक ही रहे होंगे ।

बाल जीवन की सरल सहज भावाभिव्यक्ति पहली खेल कहानी की ही भाँति इसमें भी है ।

बाल लोककाव्य

लोककाव्य

वाणी की अभिव्यक्ति का आदिरूप काव्य है । काव्य हृदय की सरस भावनाओं की व्यंजना हैं । सृष्टि के प्रारंभ में जब व्यक्ति की चेतना की आँखें खुली होंगी, और उसने चतुर्दिक अनन्त प्राकृतिक सौन्दर्य देखा होगा तो उसके हृदय से जो सहसा वाणी फूटी होगी वह काव्य होगा ।

वह वाणी सौंदर्य और आश्चर्य का मिश्रण होगा । प्रकृति के सौंदर्य को देख कर जब आदि मानव गद्‌गद हो गया होगा, तो वह प्रकृति के सौंदर्य के गीत गाने लगा होगा । वर्ड्सवथ ने कहा है 'उद्दाम भावनाओं की सहज अभिव्यक्ति काव्य है ।[1]'

सौंदर्य को देखकर आदि मानव भावनाओं से ओतप्रोत हो गया होगा और तब उसने काव्य सर्जना की होगी ।

काव्य सर्जना का यह युग बहुत समय तक चलता रहा । यही कारण है कि विश्व का आदि साहित्य काव्य है । प्रकृति के सान्निध्य में रहने से आदि काव्य

१. पोएट्री इज द स्पार्टेनियस ओवरफ्लो आफ पावरफुल फीलिंग्स ।

प्राकृतिक सौंदर्य से सम्बन्धित अधिक है। भारत की प्रकृति अधिक समृद्ध रही है। फलस्वरूप भारतीय आदिकाव्य प्राकृतिक सौन्दर्य से परिपूर्ण है।

मानव के बौद्धिक विकास के साथ-साथ काव्य में सहजता के स्थान पर संयमन आने लगा। यह संयमन शास्त्र प्रसूत था और साहित्यशास्त्र के विकास का परिणाम था।

पर साहित्यशास्त्र अर्थात् रस, छन्द, अलंकार आदि बौद्धिक चिंतन के परिणाम हैं। काव्य में इनके उपयोग के लिए भी बौद्धिक अभिरुचि अपेक्षित है। साथ ही बौद्धिक आधार पर जटिल साहित्यशास्त्र को समझने और उसको काव्योपयोग के लिए आत्मसात करने की भी आवश्यकता थी।

काव्यानुभूति सहज होती है। वह प्रत्येक संवेदनशील व्यक्ति के हृदय में उद्भूत हो सकती है। इसीलिए कवि जन्मजात होते हैं, कृत्रिम प्रयत्न से निर्मित नहीं।'[1]

पर इन सहज कवियों में कुछ ऐसे होते हैं जो शास्त्र का आश्रय लेकर काव्य-रचना करते हैं। उनके काव्य में साहित्यशास्त्र की विभिन्न स्थापनाओं का ग्रहण रहता है, जबकि अन्य कवि बौद्धिक प्रयत्नों की सीमा, ज्ञानाभाव अथवा साहित्य-शास्त्र के प्रति अभिरुचि न होने के कारण हृदय की अनुभूतियों और भावनाओं को साहित्यशास्त्री भंगिमा का आश्रय लिए बिना व्यक्त कर देते हैं। इनका काव्य शास्त्रपक्ष के अभाव में अपेक्षया सरल होता है।

किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि इनके काव्य में शास्त्रीय आधार होता ही नहीं। निश्चित है कि रस, ध्वनि, छंद, और अलंकार आदि का तो ये कवि आश्रय नहीं लेते, पर परम्परा से प्राप्त परिपाटी का पालन अवश्य करते हैं। युगों से काव्य रचना के होते रहने के कारण इन सहजानुभूति आश्रित कवियों की भी एक परम्परा बन गई है। जैसे प्रायः ये कवि ग्राम्य जीवन की ही अभिव्यक्ति करते हैं। इसी आधार पर इन्हें लोक कवि कहा गया है और इनके काव्य को लोक काव्य।

इस साहित्य को, जो मुख्यतः काव्य है, ग्राम साहित्य[2] भी कहा गया। पर ग्राम साहित्य लोक साहित्य का समीचीन पर्याय नहीं है। क्योंकि लोक ग्राम का उपयुक्त पर्याय नहीं है। ग्राम भूमि या देशगत स्थिति है जबकि लोक का सम्बन्ध एक विशिष्ट प्रकार की संस्कृति से है जिसमें आदिकालीन मानव के तथा उसी

---

१. पोएट्स आर बॉर्न नॉट मेड।

२. हमारा ग्राम साहित्य : ले० पं० रामनरेश त्रिपाठी।

परम्परा में विकसित मानव जाति के आचार-विचार, विश्वास, रीतिरिवाज, रूढ़ियाँ आदि सुरक्षित हैं। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लोक शब्द की व्याख्या करते हुए लिखा है कि 'लोक शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम्य नहीं है बल्कि नगरों और गाँवों में फैली हुई वह समूची जनता है जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं है। ये लोग नगर में परिष्कृत रुचिसम्पन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं।[१]

डा० कुंजबिहारी ने भी लोक के सम्बन्ध में ऐसा ही मत व्यक्त किया है कि लोक के अन्तर्गत वे व्यक्ति हैं जो न्यूनाधिक अपनी आदिम अवस्था में रहते हैं तथा सुसंस्कृत समाज के प्रभावक्षेत्र से मुक्त हैं।[२]

इस विवेचन से स्पष्ट है कि लोक काव्य साहित्य की पृथक विधा है तथा उसकी सविस्तृत परम्परा है।

यहाँ यह भी स्पष्ट हो जाता है कि यह काव्य जनजीवन में निवास करने वाले व्यक्तियों का उन्हीं के द्वारा रचित और उन्हीं के मनोरंजनार्थ है। यह काव्य लोक समूह का है, लोक समूह के लिए है तथा लोक समूह द्वारा सर्जित हुआ है।

लोक काव्य और परवर्ती शास्त्र संमत काव्य के विकसित होने के कारण काव्य के दो रूप हो गये—(१) लोक काव्य और (२) शास्त्रीय काव्य।

लोक काव्य और शास्त्रीय काव्य, इन दोनों विधाओं का स्वरूप भिन्न-भिन्न है। एक में सरलता और ताजगी रहती है तो दूसरे में वक्रता और जटिलता तथा कभी-कभी शास्त्रीय रूढ़ि के बढ़ जाने के कारण सरसता का अभाव भी हो जाता है।

कभी-कभी तो शास्त्रीय काव्य अत्यधिक रूढ़िबद्ध और खोखला हो जाता है। तब उसमें परिवर्तन होता है और इस परिवर्तन में लोक काव्य से भी तत्त्व लिये जाते हैं।

पर लोक काव्य और शास्त्रीय काव्य का विषय समान भी हो सकता है जैसे राम के जीवन पर शास्त्र सम्मत काव्य भी है और लोक काव्य लोक गीत भी।

---

१. हिंदी साहित्य का वृहद इतिहास : षोडश भाग : प्रस्तावना, पृ० ३।

२. द पीपुल दैट लिव बन मोर आर लेस प्रिमिटिव कंडीशन आउटसाइड द स्फियर आफ सोफिस्टिकेटेड इनफ्लूएंसेज : वही, पृ० ४।

बाल लोक काव्य

बालक समाज के महत्त्वपूर्ण अंग हैं। वर्तमान के बालक भविष्य के समाज हैं। बड़ों की समस्त आशाएँ बालकों पर ही निर्भर करती है। इसीलिए समाज बालकों में सद्गुणों का सन्निवेश करने की चेष्टा करता है, क्योंकि वर्तमान में बालक जिस रूप में बनेंगे, भविष्य में वे उसी प्रकार की समाज रचना करेंगे।

इसी अर्थ में वड्र्सवर्थ ने बालक को 'मानव का जनक'[१] कहा था।

मानव आशाओं का समस्त आधार बालक नामक यह प्राणी विश्व में एक है। समस्त विश्व उसके अस्तित्व से अवगत है, समस्त विश्व उसके साथ एकाकार हो जाता है।

ऐसे बालक को हँसते खेलते हुए देखकर मानव ने सदा प्रसन्नता का अनुभव किया है वह उसकी प्रसन्नता के उपकरण जुटाता रहा है।

बालकों की प्रसन्नता के उपकरण दो हैं—खेल और साहित्य। मानव उन्हें खेलने का अवसर देता है। इससे वे मानसिक और शारीरिक, दोनों प्रकार का शक्तिवर्द्धन करते हैं तथा जीवन को अनुरंजित करते रहते हैं।

साहित्य में लोक काव्य प्रमुख है—बाल लोक काव्य जो बालकों के अनुरंजनार्थ उन्हें प्राप्त हुआ। खेलते समय, हँसते बोलते समय, दौड़ते-धूपते समय चाँद सितारे देखते समय सहज रूप से इस बाल लोक काव्य की सर्जना हुई। 'जिस भाषा में लोक गीत हैं, उस भाषा में बालकों के खेल तथा नृत्यगीत भी होंगे। इन गीतों में प्रायः बड़ों के गीतों के खंड होते हैं और अनुकरणात्मक क्रीड़ा से संम्बद्ध बड़ों की क्रियाओं का प्रतिबिंब रहता है।'[२]

बाल लोक काव्य की सर्जना बालकों के खेल जीवन के साथ होती रही है। जैसे बड़ों के लोक साहित्य की सर्जना बड़ों के समूह ने की है, किसी व्यक्ति विशेष ने नहीं, उसी प्रकार बाल लोक काव्य का सर्जक मुख्यतः बाल समाज है। खेलों से संबद्ध अधिकांश बाल लोकगीत तो बालकों के हृदय से ही जन्में हैं। लोरियाँ, पहेलियाँ और बुझौवल जैसी रचनाएँ बड़ों के द्वारा रचित प्रतीत होती हैं।

बाल लोक काव्य अत्यन्त संगीतमय, लयात्मक और बालकों के वास्तविक जीवन का परिचायक है। इसके रचयिता और भोक्ता दोनों बालक ही रहे हैं। फलस्वरूप इसमें ऐसा कुछ नहीं है जो संशोधनीय और परिवर्तनीय हो।

---

१. **चाइल्ड इज द फादर आफ द मैन : द रेनबो (कविता) : वड्र्सवर्थ।**

२. **स्टैंडर्ड डिक्शनरी आफ फोकलोर, माइथोलाजी एंड लीजेंड : जार्ज फरजोग : भाग २, पृ० १०३४।**

आज बालकों के लिए काव्य रचना हो रही है। बाल पत्रिकाओं में उसका प्रकाशन होता है। पर बालक बड़ों के द्वारा उनके लिए लिखा गया और यांत्रिक विधियों से सजाकर मुद्रित किया गया बाल काव्य छोड़ कर कहानी आदि पढ़ते हैं और रस लेते हैं। बाल काव्य रचयिता अपनी रचना की यह उपेक्षा देखकर चकित होता है और बाल पत्रिका का संपादक यह धारणा बनाने के लिए विवश होता है कि काव्य का समय लद गया, अब बच्चों को काव्य नहीं चाहिए कहानियाँ ही चाहिए।

पर यह अधूरा सत्य है। संपादक की पहुँच कविता में सामान्य संशोधन और यथाशक्य सचित्रीकरण तक ही है। वास्तविकता यह है कि जो उपदेशवादी, नैतिकता की शिक्षा देनेवाली और त्यौहार, उत्सवमूलक अथवा विशेष अवसरों से संबद्ध या स्वतंत्र कल्पनाश्रित कविताएँ प्रकाशित होती हैं उनमें एक तो पहले ही रूढ़िबद्धता रहती है, फिर लयात्मकता, नादात्मकता छंद सौन्दर्य और हास्य भावानुभूति जैसा कुछ नहीं रहता। परिणामस्वरूप बालक ऐसी कविताओं को पढ़ने से कतराते हैं। आखिर चर्चित विषयों पर कहाँ तक लिखा जायगा और लिखा भी जाय तो उसमें बालकों के ग्रहण की सारी स्थितियाँ उत्पन्न की जायँ, उपर्युक्त गुणों का समावेश किया जाय, तभी बालक ग्रहण कर सकता है।

हमारा बाललोक काव्य इस बात की घोषणा कर रहा है कि बालकों को काव्य भी उतना ही प्रिय है, जितनी बाल साहित्य की कोई अन्य विधा। बिना विशेष सचित्रीकरण के प्रकाशित 'सन्देश', 'रामधनु', 'शुकतारा', 'किशोर भारती' और 'शिशुसाथी' जैसी बंगला पत्रिकाएँ भी इसी तथ्य को प्रकट कर रही हैं कि बालकों में काव्य संवेदना समाप्त नहीं हो गई है। प्रायः बिना चित्रों के प्रकाशित कविताएँ अपने काव्यगुणों के कारण बंगलाभाषी बाल पाठकों के जीवन का अंग बनी हुई हैं। बंगला बाल कविताओं के संदर्भ में 'दिनमान' के सर्वेक्षक को आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने बताया कि—'आबोल ताबोल', 'हाशि-खुशि' आदि की तरह कोई भी ऐसी पुस्तक नहीं है जिसे हिंदीभाषी घरों में प्रत्येक बच्चा प्रसन्नतापूर्वक पढ़ता हो।'[1]

इसका मूल कारण बंगला बाल काव्य में निहित लयात्मकता, नाद सौन्दर्य, भाषा सारल्य और हास्य तत्त्व है जो बाल लोक काव्य में भी उपलब्ध होता है। 'आबोल ताबोल' की ऐसी कविताएँ हिंदी में कितनी हैं :

---

१. **बाल साहित्य : चमकदार अस्तबल, कमजोर घोड़े : दिनमान : १६ नवंबर, सन् १९६९।**

द्याख बाबाजी द्याखबी ना की
द्याख्‌रे खेला द्याख चालाकी
भोजेर बाजी मेल्को फाँकी
पड़ पड़ पड़ पड़बी पाखी—धप्प !
लाफ दि' रे ताइ तालटि ठूके
ताक क' रे जाइ तीर धनूके
छाड़बो शटान ऊर्ध्वमुखे
हूश करे तोर लाग्बे बूके—खप्प ![1]

हिंदी में इस प्रकार का बाल काव्य अत्यल्प है और जो है वह बालकों द्वारा समादृत है तथा समादृत है बाल लोक काव्य जो उनके हृदय की अभिव्यक्ति है, उनके हृदय का गीत है, उनका अपना छंद है और उनका नृत्य और खेल है :

लाइ लाइ हर जोतंन जइयों
चिल्लक चोंटि गिलोंदे खइयों
कछु खाई कछु बाँधी पोट
जाइ परी चिल्लों की चोट
चिल्लों डोलें पइयो पइयो
घेरत घारत चली पुकार
चलियों रे मेरे आसा ग्वार
आसा ग्वार की लीली घोड़ी
दांनों खात किरौड़ी कोठी
घोरी ऐ जी घोरी ऐ
दिल्ली जाई पुकारी ऐ
दिल्ली को ऐ कारो कोट
जाइ दुक्की चूल्हे की ओट

काव्य का उद्देश्य है बालकों के हृदय में संवेदना उत्पन्न कर देना, ऐसी मनःस्थिति पैदा कर देना कि वे लौकिक से लोकोत्तर भावजगत में पहुँच जायँ। काव्य लोक में पहुँचने पर 'बालक अपनी बौद्धिक सीमा तोड़ देता है और एक अनुपम कल्पनालोक में पहुँच जाता है, उसकी भावानुभूतियाँ उसे बौद्धिक संकीर्णता से ऊपर उठा देती है तब वह केवल एक ही पाठ पढ़ता है—जीवन के

---

१. आबोल ताबोल : सुकुमारराय : फस्की गेल, पृ० ५१।

आनन्द का पाठ।[1]

ऐसा तब होता है जब कविता के शब्द नाद सौंदर्य से परिपूर्ण होते हैं, वे घंटियों की ध्वनि और चिड़ियों की चहचहाहट की भाँति गूंजते हैं, और कविता का संगीत उसके अर्थतत्त्व से भी बढ़ जाता है।[2]

भावावेग में आए हुए बालकों ने ऐसी पंक्तियाँ सहज रूप में कही होंगी, जिनमें इतना संगीत है। इतना नाद है। 'भावावेग की स्थिति में मानव की वाणी लयात्मक हो ही जाती है।'[3] वही सहज कविता है जैसे क्रौंचवध पर सहसा लयपूर्ण निकला हुआ वाल्मीकि का अनुष्टुप छंद।

काव्य के इस गुण ने ही बाल लोक काव्य को बाल जगत के लिये इतना प्रिय बना दिया है।

बंगला बाल काव्य में भी इसी विशेषता की प्रधानता है। इसीलिए हिंदी की अपेक्षा बंगला बालकाव्य अधिक लोकप्रिय है।

आधुनिक बाल काव्य रचयिता इसके बहुत कुछ सीख सकते हैं।

विशेषताएँ

बाल लोक काव्य की सुनिश्चित परम्परा है। उसका बड़ों और मुख्यतः बालकों द्वारा युगों से निर्माण हो रहा है। विश्व की सभी भाषाओं में बाल साहित्य अथवा बाल काव्य उपलब्ध होता है और जैसे समग्र लोक साहित्य की विशेषताएँ विश्व में समान हैं, उसी प्रकार बाल लोक काव्य की विशेषताएँ भी सभी भाषाओं में समान हैं। ये विशेषताएँ निम्नांकित हैं—

---

१. इन द मैंटर आफ पोएट्री, ए चाइल्ड्स इमेजिनेशन आउटस्ट्रप्स हिज अंडरस्टैंडिंग; हिज इमोशंस कैरी हिम फार बीआंड द नैरो रीच आफ हिज इंटेलिजेंस। ही हैज बट वन लेशन टु लर्न—द लेशन आफ इंज्वायमेंट।

—ए क्रिटिकल हिस्ट्री आफ चिल्ड्रेंस लिटरेचर : मीग्स, पृ० ५६७।

२. वर्ड्स ववर टु हिम नाट मीयरली वर्ड्स,
देयर साउंड्स रैंग स्वीट ऐज बेल्स ऐंड वर्ड्स;
नार कुड ही टेल, बाइ एनी टेस्ट,
ह्वेदर ही लव्ड ही वंस कनफेस्ड—
देयर म्युजिक आर देयर मीनिंग बेस्ट।

—वाल्टर डी ला मेयर : दिस इयर : नेस्ट इयर, वही, पृ० ५६७।

३. मैन इन ए स्टेट आफ इमोशन टेंड नेचुरली टु स्पीक रीदमिकली।

—द रुडिमेंट्स आफ क्रिटिसिज्म : ले० ई० ए० ग्रीनिंग लेमबोर्न, पृ० २१।

पाठ की विभिन्नता

बालकों द्वारा गाये जानेवाले लोकगीतों का पाठ निश्चित नहीं है । उत्तर प्रदेश में प्रचलित एक लोकगीत मध्यप्रदेश में दूसरे पाठ के साथ है । इसका कारण है बालकों द्वारा निर्मिति और बालकों की कल्पनाशीलता । प्रचलित गीत में बालक अपनी कल्पना से नई-नई बातें जोड़ते जाते हैं । परिणामस्वरूप इन गीतों में निरंतर परिवर्तन और परिवर्द्धन होता रहता है ।

काव्य के दो प्रकार माने गए हैं—(१) अलंकृत काव्य (पोएट्री आफ आर्ट) तथा (२) संवर्द्धनशील काव्य (पोएट्री आफ ग्रोथ) । रस, गुण, रीति से परिपुष्ट काव्य अलंकृत काव्य है । यह किसी व्यक्तिविशेष या कविविशिष्ट की रचना होती है । संवर्द्धनशील काव्य समूह सृष्टि होती है जिसका कोई विशिष्ट रचनाकार नहीं होता । समूह के हाथों उसमें परिवर्तन, परिवर्द्धन होता है ।

बाल लोक काव्य संवर्द्धनशील काव्य है ।[1]

पर इस परिवर्तन और संबर्द्धन के कारण पाठ वैभिन्न्य बढ़ता जाता है । शब्दांतर ही नहीं हो जाता, पूरा गीत का गीत बदल जाता है । व्रज के निम्नांकित गीत का एक पाठ इस प्रकार है—

अटकन चटकन
दही चटक्कन
बाबा लाए सात कटोरी
एक कटोरी फूटी
मामा की बहू रूठी
काए बात पै रूठी
दूध दही पै रूठी
दूध दही तो बहुतेरो
चींटी लैगो कै चींटा

और इस खेल गीत का दूसरा पाठ इस प्रकार है—

अटकन चटकन
दही चटोकन
फूल-फूल फुलवारी में
बाबा जी की क्यारी में
बाबा गए दिल्ली
ल्याए सात कटोरी

१. हिंदी साहित्य का वृहद इतिहास : षोडश भाग : पृ० ८६

एक कटोरी फूटी
नेवल की टांग टूटी।

राबर्ट ग्रेव्ज ने लोक छंद के पाठ की अनिश्चितता की ओर संकेत करते हुए कहा है कि 'अपनी रुचि के अनुसार गायक पाठ परिवर्तन के लिये स्वतंत्र है। किसी भी पाठ के सम्बंध में समग्र रूप से नहीं कहा जा सकता कि यही पाठ सही है।'[1]

मौखिक परम्परा

बाल लोक काव्य मौखिक परंपरा में प्रचलित है। मानव विकास के किस चरण पर बालकों ने अपने लिए नृत्य, खेल या उत्सव गीतों की रचना की, इसका इतिहास बता सकना तो असंभव है, पर जब एक बार बाल गीत अस्तित्व में आए तो सतत परिवर्द्धन होता गया। 'ऐसा देखा जाता है कि छोटे-छोटे बच्चे छोटे-छोटे गीत बनाते, गुनगुनाते और गाते जाते हैं, परन्तु इनमें से कोई भी बालक गीत का रचयिता होने का दावा नहीं करता। यह किसी को याद भी नहीं रहता कि किस बालक ने किस गीत में किस कड़ी को जोड़ा।'[2]

गीतों के पाठान्तरों का एक महत्त्वपूर्ण कारण यह मौखिक परम्परा ही है। सुविधानुसार बालक पंक्तियाँ घटाते, बढ़ाते या जोड़ते जाते हैं। परिणामस्वरूप गीत अनेक रूप ग्रहण कर लेता है जैसा पाठ की विभिन्नता के अन्तर्गत दिखाया गया है।

सरलता

बाल लोक काव्य में भाषा, वस्तु और छन्द तीनों की सरलता रहती है। इन गीतों का सम्बन्ध केवल बालकों का मनोरंजन करना होता है। ये न बालकों को नीति की शिक्षा देने के लिए होते हैं, न दर्शन सिखाने के लिए। सहज बालकों के सहज जीवन से इनका सम्बन्ध होता। क्रीड़ामय स्वरों की गति पर इस काव्य की रचना होती है। एक बाल ने रौ में आकर कहा :

हाथी घोड़ा पालकी

और दूसरे बालक ने दूसरी पंक्ति कहकर छन्द पूरा कर दिया :

जय कन्हैया लाल की

---

१. देयर इज नेवर एनी करेक्ट टेक्स्ट—सींगर्स आर एलाउड टु आल्टर इट टु देयर लाईकिंग—नो सिंगिल वर्सन मे बी रिगार्डेड ऐज़ 'द राइट वन' इन ऐन एब्सोल्यूट सेंस : ले० राबर्ट ग्रेव्ज : द इंगलिश बैलेड : भूमिका, पृ० १३।

२. हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास : षोडश भाग : प्रस्तावना, पृ० ८८।

बालकों की भाषा की प्रमुख विशेषता है सरलता। इसलिए उनके द्वारा व्यवहृत भाषा में सरलता का प्रमुख गुण आ जाता है। वस्तु की सरलता का कारण भी बालकों का सरल जीवन है और अत्यधिक लयात्मक छन्द बालकों द्वारा निर्मित होने के कारण सरल होता है। उसमें पिंगल के किसी नियम का पालन नहीं होता। छोटी पंक्तियाँ, बड़ी पंक्तियाँ, तुकांत, अतुकांत पंक्तियाँ—यही है बाललोक काव्य। पर स्वरों की प्रधानता से एक विशेष प्रकार की भंगिमा पैदा हो जाती है और यह काव्य बच्चों के जीवन का अंग बन जाता है :

घपरी के घपरा
फोरि खाए खपरा
मिया बुलाए
चमकत आए.........

बाल लोक काव्य में इस सिद्धांत का स्वतः पालन हो गया है कि काव्य रचना बोलचाल की भाषा में होनी चाहिये और साथ ही उसमें गरिमा भी रहनी चाहिए।[1]

आंचलिकता

परंपरा से प्राप्त समस्त लोक साहित्य आंचलिक साहित्य है। बाल लोक-काव्य भी केवल भाषा की दृष्टि से ही नहीं, जीवन संदर्भों में भी आंचलिक है। ब्रज, अवधी और भोजपुरी की उपबोलियों में यह काव्य मिलता है तथा अंचल विशेष के उपकरणों से ही अपना अलंकरण करता है।

जिस क्षेत्र में जिस प्रकार के खेलों या उत्सवों का प्रचलन है, वहाँ के बाल काव्य में उन्हीं पर आधारित गीतों की रचना हुई है। ब्रज क्षेत्र में बाल उत्सव टेसू का प्रचलन है। फलतः वहाँ टेसू से सम्बन्धित अनेक बाल गीत हैं।

इसी विशेषता के अन्तर्गत प्रकृति परिवेश और ग्रामीण वातावरण का प्रभाव है। बाल गीतों में ग्राम्य जीवन का सौंदर्य है, साथ ही प्राकृतिक दृश्यांकन भी आए हैं। टेसू के गीत में बालक गाते हैं :

---

१. जिस तरह हम बोलते हैं
उस तरह तू लिख
और उसके बाद भी
हमसे बड़ा तू दिख।
—दूसरा सप्तक : भवानीप्रसाद मिश्र : पृ० ६।

सन् में ते संनवरिया निकस्यो
लाओ तमाखू पीवे कूँ
तेरो तमाखू जरि बुझि जइयो
मैं तो बैठी न्हाइवे कूँ ।

इसमें सन् के खेत का प्राकृतिक सौंदर्य भी है और ग्रामीण जीवन की तमाखू पीने की वास्तविकता भी ।

परवर्ती युग में बाल काव्य का विकास होने पर कवियों ने लोक छन्दों पर काव्य रचना की अथवा छन्द की भंगिमा को ग्रहण किया । फलस्वरूप ऐसे काव्य में नृत्यमयता और लोक गीतों जैसी सजीवता है । उमाकांत मालवीय के निम्नांकित बालगीत में लोकगीत की भंगिमा है :

गुम सुम क्यों तुम, चकई के चकभुम
चकई के चकभुम, नाचे लट्टू
चकई के चकभुम, बाँचे मिट्ठू
फर फर फहराती है दुम
गुमसुम क्यों तुम, चकइ के चकभुम ।
चकई के चकभुम, सरपट टट्टू
चकई के चकभुम, बड़ा निखट्टू
बीच राह में अकल हुई गुम
गुमसुम क्यों तुम, चकई के चकभुम ।[१]

कन्हैयालाल सेठिया ने तो राजस्थान के अपने बालगीत 'टमरक टूँ' में लोकगीत की पूरी शैली ही ग्रहण कर ली है ।[२] 'टमरक टूँ' श्रेष्ठतम बालगीतों में गण्य है ।

बाल लोकगीतों की सजीवता को अन्य भाषा भाषी बाल साहित्यकारों ने भी समझा है । मोहित घोष की 'आल्तो-पाटी' कविता लोकछंद पर आश्रित है जिसमें जीवन का तानाबाना कवि का अपना है ।[३]

१. नन्दन : सितम्बर : १९७० ।

२. मधुमती : जुलाई-अगस्त : ६७ : राजस्थान साहित्य अकादमी, पृ० ८७ ।

३. आल्तोपाटी लाल दो पाटी
तबला डुगिर माथाय चांटा
पाहाड़ देशेर रंगीत माटी
कचि शिशुर हांटी हांटी ।
—टापुर-टूपुर, मोहित घोष, पृ० ३६ ।

बंगला के अनेक आबोल ताबोल (ऊलजलूल कविताएँ) लोक छंद पर आश्रित होने के कारण ही इतने सजीव और लयात्मक हैं । [1]

छंद की अनियमितता

बाल लोक काव्य की रचना छंद की नियमित परंपरा के आधार पर नहीं हुई है । यह काव्य बाल हृदय की सहज अभिव्यक्ति है । छंद वर्णिक हो या मात्रिक निश्चित विधान को स्वीकार करता है । बाल लोक काव्य में नादात्मकता, स्वरों का उतार-चढ़ाव और घनीभूत संगीत तो अवश्य है, पर छंद की दृष्टि से न समान मात्राएँ हैं, न तुक, न यति । वैसे ये गीत मात्रिक छंद पर निर्मित हैं ।

काव्य दो प्रकार का हो सकता है—(१) पठ्य और (२) गेय । पठ्य काव्य विचारपूर्ण होता है । वह चेतना को किसी दिशा की ओर ले जाता है । ऐसा काव्य मनोरंजनात्मक कम होता और सोचने विचारने की सामग्री प्रदान करने वाला अधिक ।

गेय काव्य का उद्देश्य एक मात्र मनोरंजन करना है । उसका सौंदर्य भी गाये जाने पर ही व्यक्त होता है ।

बाल लोक काव्य गद्य काव्य है । जब बालक मिलकर गाते हैं तो संगीत-मय वातावरण उत्पन्न हो जाता है । स्वरों के उतार-चढ़ाव के साथ श्रोताओं का हृदय भी अनुभूति करता जाता है ।

बिना गद्य इस काव्य की सजीवता नहीं उभरती ।
इन गीतों का स्वर विधान भी असाधारण होता है । पाठ्यरूप में जो शब्द जितने स्वर को ग्रहण करता है, गेयरूप में वह भिन्न स्वर को ग्रहण कर लेता है । स्वर का विस्तार संकोचन किस शब्द के साथ कितना होगा, यह गाये जाने पर व्यक्त होता है ।

इस प्रकार संगीत ही बाललोक काव्य का छंद है ।

आशु कवित्व

बाल लोक काव्य आशु कवित्वजन्य है । तरंग में आकर कभी कोई एक बालक ही पंक्तियाँ जोड़ता गया है, कभी अनेक बालक क्रमशः पादपूर्ति करते गए हैं । शांति नाम की एक बालिका है । वह किसी का कहना नहीं मानती । अपने अध्यापक तक की उपेक्षा करती है । कोई बालक उसके इस स्वभाव को देखकर कह उठता है :

---

१. आबोल ताबोल : सुकुमारराय : सिगनेट प्रेस कलकत्ता ।

शांती मन भांती
कहना क्यों नहीं मानती
पंडित जी बुलाने आए
बस्ता क्यों नहीं बाँधती ।[1]

वक्ता ने आशु कविता में प्रसंग का निर्वाह कर दिया है, यद्यपि प्रसंग निर्वाह भी आवश्यक नहीं । रचना प्रवाह में एक दूसरे से असंबद्ध पंक्तियाँ भी आ सकती हैं । पर ऐसी असंबद्ध पंक्तियों को जोड़नेवाला तत्व संगीत होगा और होगी बालक की आंतरिक चेतना जो असंबद्ध कल्पनाओं में ही आनन्दानुभूति करती है :

बोलो गंगाजी की जै
लड्डू चार कचौरी छै

बालकों का यह आशुकाव्य आज पूर्णतया सुरक्षित नहीं है । कालप्रवाह में न जाने ऐसा कितना काव्य सृजित हुआ और कितना नष्ट हो गया । ऐसा काव्य बालकों का अपना काव्य है जो बाल काव्य की एक कसौटी प्रस्तुत करता है ।

संगीतात्मकता

संगीततत्व बाल लोक काव्य का प्राण है । वास्तव में समस्त लोक काव्य ही संगीतमय है । पर बाल लोक काव्य का संगीत विशेष प्रकार का है । बाल लोक काव्य न खंजरी पर गाया जाता है, न ढोलक पर । इसे तो बालक खेलते समय अथवा अपना कोई बाल उत्सव मनाते समय एकाकी या समवेत गाते हैं ।

एकाकी रूप में गाये जाने वाले गीतों को बालक अपने या साथियों के मनोरंजन के लिए गाते हैं या खेलते समय गाते हुए खेलते हैं और उत्सव गीतों में प्राय: बालगीत समवेत गाए जाते हैं । ऐसे अवसर पर बालक अपने को दो दलों में विभाजित कर लेते हैं । पहले एक दल गाता है, फिर दूसरा दल ।

इन गीतों का संगीत बड़ा गतिशील होता है । उसके स्वर और लयों को समझना या गा सकना उस व्यक्ति के लिए असम्भव ही है, जो उनकी प्रकृति से अपरिचित हैं । कहाँ स्वर को खींचना है, कहाँ संकोच देना है, यह गायन शैली से परिचित बालक ही जानते हैं ।

हिंदी में प्राप्त बाल लोक काव्य की ये कुछ विशेषताएँ हैं जो खड़ी बोली के बाल काव्य से उसे अलग करती है । खड़ी बोली में बाल काव्य रचना करने वालों ने इनमें से कुछ विशेषताओं को लिया भी है, जिससे उनके काव्य में वैशिष्ट्य आया है । बाल लोक काव्य की शैली का एक शिशुगीत है—

---

१. बालगीत साहित्य : ले० निरंकार देव सेवक, पृ० २६ ।

आमवाले आम दे
घर से लाकर दाम दे
झूठमूठ के दाम ले ।
झूठमूठ के आम ले
अच्छा मुझसे काम ले
तू इसका मत नाम ले ।
आम हैं सरकार के
सब अपने घरबार के
हम भारत सरकार के ।
हम भारत सरकार हैं
सेना के सरदार हैं
सबके पहरेदार हैं
अच्छा ले जा आम तू
कभी न देना दाम तू
आना सबके काम तू ।[१]

प्रस्तुत शिशुगीत का वातावरण लोक कविता का है । छंद भी लोक शैली से ही लिया गया है । पर संदर्भ आधुनिक जीवन से भी लियागया है ।

इस प्रकार प्राचीन पृष्ठभूमि का नवीन भाव प्रेषण में उपयोग किया गया है ।

बालकों के जीवन के विविध रूप हैं । फलस्वरुप बाल लोक काव्य भी विविध रूपों में प्राप्त होता है । बाल लोक काव्य के निम्नांकित रूप प्रायः दिखाई देते हैं—

(१) खेलगीत
(२) उत्सवगीत
(३) ऊलजलूलगीत
(४) लोरियाँ
(५) पहेलियाँ

(१) खेलगीत

खेल बालकों के जीवन की प्रमुख विशेषता है । बाल्यावस्था की दो ही मुख्य आवश्यकताएँ होती हैं---खेल, और भूख । ये दोनों आवश्यकताएँ प्राकृतिक हैं ।

१. आमवाले, आम दे, राष्ट्रबंधु : पराग : जून, १९६४ ।

अन्य अनेक आवश्यकताएँ कृत्रिम रूप से प्रारम्भ होती हैं। धीरे-धीरे वे बालक के जीवन का अंग बन जाती हैं।

खेल में बालक इतना अधिक रमते हैं कि अवकाश मिलते ही खेलने के लिए भाग खड़े होते हैं। और खेलते-खेलते जब भूख लगती है तभी वे घर में आते हैं। भूख की आवश्यकता के पूरा होते ही फिर खेलने निकल जाते हैं।

खेलों से बालकों को स्वास्थ्य, संवेदना, सहयोगिता और मानसिक आह्लाद आदि अनेक लाभ होते हैं। शिक्षाशास्त्रियों ने तो खेलों को शिक्षा में ही सम्मिलित कर लिया है। मान्टेसरी की शिक्षा पद्धति खेलों पर ही निर्भर है।

आयु के अनुसार खेल खेलने वाले बालक दो वर्गों में बँट जाते हैं---(१) वे बालक अथवा बालिकाएँ जो स्वयं मिलजुल कर खेल खेलते हैं और (२.) वे नन्हें शिशु जिन्हें माता-पिता अथवा दादा-दादी आदि कुछ गागाकर खेल खिलाते हैं।

लोक काव्य में इन दोनों वर्गों के गीत प्राप्त होते हैं। सुविधा के लिये पहले वर्ग के गीतों को बाल खेलगीत कह सकते हैं और दूसरे वर्ग के गीतों को शिशु खेलगीत।

बाल खेलगीत

बाल खेलगीत हिंदी की सभी उपबोलियों में प्राप्त होते हैं। हिंदी बाल लोक काव्य का यह अमूल्य भण्डार है।

बालकों के खेल और आनन्दमय जीवन पर ये गीत आधारित हैं। बाल सभ्यता के विकास की अवस्था के भी ये गीत सूचक हैं, साथ ही बाल मनोभावनाओं के मनोवैज्ञानिक अध्ययन में भी ये उपयोगी सिद्ध होते हैं। एक खेल-गीत है :

बाबूलाल बाबूलाल तेल की मिठाई
दतिया की गैल में कुतिया नचाई
कुतिया मर गई, कर लई लुगाई।[1]

गीत में केवल तीन चरण हैं। भाषा में सांकेतिकता अधिक है पूरे गीत का वातावरण संगीत के तानेबाने में बुना हुआ है।

बाबूलाल नामक एक व्यक्ति है जो तेल की मिठाई बेचता है। संभवत: वह प्रचारित करता है घी की मिठाई, पर है तेल की मिठाई। बच्चे गीत के माध्यम से यह व्यंग्यपूर्ण भंड़ाफोड़ करते हैं।

ऐसा प्रवंचन कार्य करनेवाला व्यक्ति दतिया की गलियों में कुतिया नचाने के अतिरिक्त कौन-सा अच्छा कार्य कर सकता है। कम से कम बच्चों की कल्पना

---

१. हिंदी साहित्य का वृहत् इतिहास : षोडश भाग, पृ० ३४६।

आमवाले आम दे
घर से लाकर दाम दे
झूठमूठ के दाम ले।

झूठमूठ के आम ले
अच्छा मुझसे काम ले
तू इसका मत नाम ले।

आम हैं सरकार के
सब अपने घरबार के
हम भारत सरकार के।

हम भारत सरकार हैं
सेना के सरदार हैं
सबके पहरेदार हैं

अच्छा ले जा आम तू
कभी न देना दाम तू
आना सबके काम तू।[1]

प्रस्तुत शिशुगीत का वातावरण लोक कविता का है। छंद भी लोक शैली से ही लिया गया है। पर संदर्भ आधुनिक जीवन से भी लियागया है।

इस प्रकार प्राचीन पृष्ठभूमि का नवीन भाव प्रेषण में उपयोग किया गया है।

बालकों के जीवन के विविध रूप हैं। फलस्वरुप बाल लोक काव्य भी विविध रूपों में प्राप्त होता है। बाल लोक काव्य के निम्नांकित रूप प्रायः दिखाई देते हैं—

(१) खेलगीत
(२) उत्सवगीत
(३) ऊलजलूलगीत
(४) लोरियाँ
(५) पहेलियाँ

(१) खेलगीत

खेल बालकों के जीवन की प्रमुख विशेषता है। बाल्यावस्था की दो ही मुख्य आवश्यकताएँ होती हैं---खेल, और भूख। ये दोनों आवश्यकताएँ प्राकृतिक हैं।

---

१. **आमवाले, आम दे, राष्ट्रबंधु : पराग : जून, १९६४।**

अन्य अनेक आवश्यकताएँ कृत्रिम रूप से प्रारम्भ होती हैं। धीरे-धीरे वे बालक के जीवन का अंग बन जाती हैं।

खेल में बालक इतना अधिक रमते हैं कि अवकाश मिलते ही खेलने के लिए भाग खड़े होते हैं। और खेलते-खेलते जब भूख लगती है तभी वे घर में आते हैं। भूख की आवश्यकता के पूरा होते ही फिर खेलने निकल जाते हैं।

खेलों से बालकों को स्वास्थ्य, संवेदना, सहयोगिता और मानसिक आह्लाद आदि अनेक लाभ होते हैं। शिक्षाशास्त्रियों ने तो खेलों को शिक्षा में ही सम्मिलित कर लिया है। मान्टेसरी की शिक्षा पद्धति खेलों पर ही निर्भर है।

आयु के अनुसार खेल खेलने वाले बालक दो वर्गों में बँट जाते हैं---(१) वे बालक अथवा बालिकाएँ जो स्वयं मिलजुल कर खेल खेलते हैं और (२) वे नन्हें शिशु जिन्हें माता-पिता अथवा दादा-दादी आदि कुछ गागाकर खेल खिलाते हैं।

लोक काव्य में इन दोनों वर्गों के गीत प्राप्त होते हैं। सुविधा के लिये पहले वर्ग के गीतों को बाल खेलगीत कह सकते हैं और दूसरे वर्ग के गीतों को शिशु खेलगीत।

बाल खेलगीत

बाल खेलगीत हिंदी की सभी उपबोलियों में प्राप्त होते हैं। हिंदी बाल लोक काव्य का यह अमूल्य भण्डार है।

बालकों के खेल और आनन्दमय जीवन पर ये गीत आधारित हैं। बाल सभ्यता के विकास की अवस्था के भी ये गीत सूचक हैं, साथ ही बाल मनोभावनाओं के मनोवैज्ञानिक अध्ययन में भी ये उपयोगी सिद्ध होते हैं। एक खेलगीत है :

बाबूलाल बाबूलाल तेल की मिठाई
दतिया की गैल में कुतिया नचाई
कुतिया मर गई, कर लई लुगाई।[1]

गीत में केवल तीन चरण हैं। भाषा में सांकेतिकता अधिक है पूरे गीत का वातावरण संगीत के तानेबाने में बुना हुआ है।

बाबूलाल नामक एक व्यक्ति है जो तेल की मिठाई बेचता है। संभवतः वह प्रचारित करता है घी की मिठाई, पर है तेल की मिठाई। बच्चे गीत के माध्यम से यह व्यंग्यपूर्ण भंडाफोड़ करते हैं।

ऐसा प्रवंचन कार्य करनेवाला व्यक्ति दतिया की गलियों में कुतिया नचाने के अतिरिक्त कौन-सा अच्छा कार्य कर सकता है। कम से कम बच्चों की कल्पना

---

१. हिंदी साहित्य का वृहत् इतिहास : षोडश भाग, पृ० ३४६।

ऐसा ही स्वीकार करती है। अनंतर कुतिया मर जाती है। तब बाबूलाल हलवाई स्त्री ले आता है।

बच्चों की कल्पना में बाबूलाल हलवाई ऐसे ही निकृष्ट और ऊटपटांग कार्य करता है।

गीत की अन्य विशेषता छन्दगत है। बाबूलाल शब्द की संबोधनात्मक पुनरुक्ति, 'दतिया और कुतिया' शब्द की अनुप्रासात्मकता तथा दीर्घ मात्रिक तुकांत-इस प्रकार की सहज योजनाओं से गीत में लयात्मक सौंदर्य प्राप्त कर लिया है।

एक अन्य खेल गीत है :

हीरा बीनें कीरा
मुकुंदे बीने बैर
गुरखुरू को कांटो लग गऔ
सब बगर गए बैर।

इस गीत में भी थोड़े से शब्दों के माध्यम से बाल अनुभूति को व्यक्त किया गया है। गीत के केन्द्र बिन्दु दो बालक हैं हीरा और मुकुन्द। हीरा कीड़े बीनता है और मुकुन्द बेर। हीरा का कीड़े बीनना हास्यास्पद है जो बालक के मन को आह्लादित करता है, पर मुकुन्द की स्थिति भी तब बाल भोक्ताओं के लिए आह्लादकारी हो जाती है जब उसे गुरुखुरू का काँटा लगता है और बीने हुए बेर बिखर जाते हैं।

थोड़े शब्दों में बाल जीवन की एक सामान्य बात कही गई है। पर बालकों के लिये तो यही बात असामान्य और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। कीरा बीनना, बेर बीनना, गुरुखुरू का काँटा लगना और बेरों का बिखरना—यही तो बालकों के जीवन में है और यही उनका खेल है।

गीत की छन्द योजना भी स्वर की गतियों पर है। अत्यन्त सरल शब्द है जो लोक जीवन की प्रतिक्षण प्रतीति कराते हैं। पूरा गीत एक बिंब निर्माण करता है

शिशु खेलगीत

इन शिशुगीतों का व्यवहार बड़ों के द्वारा बच्चों को खिलाते समय किया जाता है। गीतों के भोक्ता शिशु होते हैं जिनकी उम्र तीन चार वर्ष की होती है। बड़े-बूढ़े थपकी देते हुए या बालक को पैर पर बैठाकर खिलाते हैं।

तीन वर्ष के बालक कविता के अर्थ को ग्रहण नहीं करते, वे तो मात्र नाद सौंदर्य से प्रभावित होते हैं। अतः ऐसे गीतों में नाद की योजना प्रमुख होती है। ऐसा प्रस्तुत गीत है :

थापक थोला
दही मटोला
गुर को मेला
मेरी तेरी छाक आई
बर बांटि खाई
चली चिरैया
दाना खाने, पानी पीने, दाना खाने…… ।

खिलानेवाला व्यक्ति इसी प्रकार कहता जाता है और शिशु की बांह पर दो उँगलियाँ आगे बढ़ाता जाता है। अन्त में कांख के पास उँगलियां लाकर शिशु को गुदगुदा देता है और शिशु खिलखिलाकर हँस पड़ता है।

शिशुओं को खिलाने के लिये हिन्दी में ऐसे अनेक गीत हैं।

(२) उत्सव गीत

लोक जीवन में बालकों से संबद्ध अनेक उत्सव गीत प्रचलित हैं। ये उत्सव विभिन्न अवसरों पर होते हैं, जिनमें बालक और बालिकाएँ एक हृदय होकर भाग लेते हैं।

• बाल लोकोत्सव बालक-बालिकाओं के भावी जीवन की तैयारी में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। एक साथ मिलकर काम करना, उत्सव के अवसरों की अनुभूतियों का एक साथ आभोग और इस माध्यम से एक दूसरे के निकट आने का लाभ अव्यक्त महत्त्व की भूमिकाएँ हैं।

ये लोकोत्सव लोक सांस्कृतिकता की देन हैं, जिनका प्रारम्भकाल बता सकना कठिन है। पर इन उत्सवों ने ग्रामीण बालक-बालिकाओं के जीवन को भर दिया है, इसमें संदेह नहीं। नगर के अनेक व्यय साध्य मनोरंजनों से अधिक सजीवता इन उत्सवों में दिखाई देती है।

बाल लोकोत्सव बालक और बालिकाओं के अलग-अलग हुआ करते हैं। फलतः उनके गीत भी अलग-अलग हैं। बालकों से सम्बन्धित उत्सवों में सभी ग्रामीण बालक सोत्साह भाग लेते हैं और गीत गाते हैं तथा बालिकाएँ अपने उत्सवों में भाग लेकर समवेत उत्सवगीत गाती हैं।

दोनों प्रकार के गीतों में लोक संस्कृति की स्पष्ट छाप रहती है।

बालकों के उत्सव गीत

बालकों का एक प्रमुख उत्सव होता है टेसू। यह उत्सव उत्तर प्रदेश के पश्चिमी जिलों में मुख्य रूप से प्रचलित है। यह बालकों का बड़ा आकर्षक संगीतमय उत्सव है।

इसका समय भी बहुत सुन्दर है—क्वार महीने का अन्तिम सप्ताह, जब न विशेष गरमी होती है, न सरदी। ऐसे ही समय कुछ बालक तीन लकड़ियों से बने हुए टेसू को लेकर घर-घर जाते हैं टेसू के गीत गाते हैं और पुरस्कार में अनाज या पैसे प्राप्त करते हैं।

सप्ताह भर के उत्सव में एकत्र किया हुआ अनाज बेच दिया जाता है और टेसू के विवाह की सामग्री खरीद ली जाती है।

पूर्णिमा के दिन झेंझीं के साथ टेसू का विधिवत विवाह होता है। विवाहोत्सव बड़े लोग भी देखते हैं। धूम-धाम और समारोह के साथ उत्सव समाप्त होता है।

इस उत्सव का सम्बन्ध अर्जुन के वीर पुत्र बभ्रुवाहन से जोड़ा जाता है। जब अर्जुन का बनवास हुआ तो बनवास काल में नागकन्या उलूपी से उन्होंने विवाह किया। बभ्रुवाहन उलूपी का ही पुत्र था।

पर अपने पिता अर्जुन से बभ्रुवाहन प्रसन्न न था। इसीलिए शायद वह कौरवों के पक्ष से लड़ रहा था। पांडवों के लिये उसकी वीरता सिरदर्द थी। फलस्वरूप ब्राह्मण का छद्मवेष धरकर कूटनीतिज्ञ कृष्ण जी उसके पास गए और दान में उसका सिर माँग लिया।

पांडव पथ का काँटा बभ्रुवाहन समाप्त हो गया।

बभ्रुवाहन की यह करुण कहानी बालकों का उत्सव बन गई। संभवतः उसकी वीरता, तेजस्विता, निष्कलुषता और सरलपन तथा जीवन की करुणा ने ही उसे महान बनाया।

टेसू से सम्बन्धित अनेक बाल लोक गीत हैं। सभी गीत संगीतमय हैं, सभी लोक तत्वों से परिपूर्ण हैं और सभी में बाल कल्पनाओं का वैचित्र्य है। एक गीत है :

छोटी सी गैया, कचपैदरिया
असी डला भुस खाइ
बड़े ताल को पानी पीवै
हंगन बटेसुर जाइ
छोटी सी गैया छुटमासी
कोई छोटो सो चामर खाइ
पानी पीवे समुन्दर को
कोई नगर दुहावन जाइ—आदि

यह गीत नाद प्रधान है, जिसका सौन्दर्य समवेत गाए जाने पर व्यक्त होता है। सम्पूर्ण गीत में विभिन्न प्रसंग जुड़े हुए हैं अथवा संवृद्ध काव्य (पोएट्री आफ ग्रोथ) की शैली के अनुसार प्रसंगों को बैठाया गया है।

व्यक्त मन की अपेक्षा व्यक्त अथवा अवचेतन मन के भीतर चलने वाले अनेक कल्पना प्रसंगों को जैसे मूर्त रूप दे दिया गया है।

अपनी प्रकृति के कारण यह प्रायः ऊल-जलूल काव्य (नानसेंस पोएट्री) के निकट पड़ता है। इसमें हास्य तो है, पर व्यंग्य नहीं, जैसा एडवर्ड लियर के ऊल-जलूल काव्य में है।[१]

पर बच्चों का इससे अत्यधिक मनोरंजन होता है। वे इसकी कल्पनाओं की रहस्यात्मकता में खो जाते हैं और नाद सौन्दर्य से तुष्टि का अनुभव करते हैं।

टेसू सम्बन्धी अधिकांश गीत इसी प्रकार के प्रसंगयुक्त और हास्यमय हैं। इन्हें लोक हास्य काव्य कहा जा सकता है।

बालिकाओं के उत्सवगीत

बालकों के लोकोत्सवों की ही भाँति बालिकाओं के भी अनेक लोकोत्सव प्रचलित हैं। इन लोकोत्सवों से केवल मनोरंजन ही नहीं होता, भविष्य के जीवन की तैयारी में भी सहयोग मिलता है। सामाजिकता का सच्चा विकास तो इन्हीं लोकोत्सवों के माध्यम से होता है।

इन उत्सवों को बालिकाएँ विभिन्न अवसरों पर आयोजित करती हैं। इनमें झेंझी का उत्सव, मामुलिया, सुअटा और कायं डालना मुख्य हैं।

झेंझी का उत्सव टेसू के साथ ही मनाया जाता है। इधर बालक टेसू लेकर घर-घर जाते और गीत गाते हैं उधर बालिकाएँ झेंझी लेकर घरों में जाती हैं और अपने मधुर स्वर से झेंझी के समवेत गीत गाकर घर वालों का मनोरंजन करती हैं।

पर जहाँ बालक टेसू के गीत गाकर अनाज या द्रव्य पुरस्कार में लेते हैं, बालिकाएँ झेंझी के गीत गाकर किसी प्रकार का पुरस्कार नहीं लेतीं।

टेसू की भाँति झेंझी की भी अनेक बाल गीत प्रचलित हैं। इन गीतों में नारी जीवन की प्रधानता है। जिस प्रकार टेसू के गीत हास्यपूर्ण हैं, उसी

---

१. दे० ए बुक आफ लियर : एडवर्ड लियर।

प्रकार झेंझी के भी। यह हास्य अतिरंजना से पैदा किया गया है। एक मनोरंजक गीत है :

तुम सुखवार के हम सुखवार ?
इमली की जर में ते निकरी पतंग
ताकी हवा लगी मोरे अंग
जो ना देती झपटि किवार
तो उड़ि जाती कोस हजार
मेरी परोसिन कूटे धान
ताकी भनक परी मेरे कान
वा रड़िया ने ऐसे हरे
मेरे हातनि छाले परे
एक मिलो खसखस को दानो
नौ दिन कूटो दस दिन छानो
ताकी मैंने राँधी खीर
नौ दिन मरी पेट की पीर।

दूसरा उत्सव मामुलिया है जिसे बुन्देलखण्ड की बालिकाएँ मनाती हैं। भादों या क्वार के महीने में संध्या समय बालिकाएँ इस उत्सव के गीत गाती हैं। यह उत्सव प्राचीन क्वारी बालिकाओं के किसी अनुष्ठान का अवशेष है जिसमें पूजन की प्रधानता है। इसका एक गीत है—

चीकनी मामुलिया के चीकने पतौआ
बरा तरें लागी अथैया
कै बारी भौजी बरा तरें लागी अथेया
मीठी कचरिया के मीठे जो बीजा, मीठे ससुरजी के बोल
करई कचरिया के करये जों बीजा, करए सास जू कें बोंल
कै बारी बैया, कर ए सास जू के बोल।[1]

सुअटा का उत्सव क्वार के नवरात्र में नौ दिन मनाया जाता है। माना जाता है कि सुअटा नामक कोई दानव क्वारी बालिकाओं को उठा ले जाता था। अपनी रक्षा के लिए बालिकाओं ने दुर्गा की उपासना की। तभी से यह उत्सव चल पड़ा।

---

१. हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास : षोडश भाव : पृ० ३४४।

कायं डालना उत्सव एक प्रकार से झेंझी का ही रूपान्तर है। इसमें कुछ झेंझी का अंश है और कुछ क्षेत्रीय अंश सम्मिलित हो गया है।

बालक बालिकाओं के इन उत्सव गीतों की सरस धारा ग्रामीण बाल जगत को सरस बनाये रहती है। 'बच्चों के मन की धड़कन' इन गीतों में अंकित है। बाल जीवन की सुकुमारता, नाद सौंदर्य के प्रति ललक और सहज संगीत की इन गीतों में अभिव्यक्ति हुई है। पक्षियों की सहज चहचहाहट की तरह ये गीत सहज हैं। रवीन्द्र के शब्दों में 'बालकों को बहलाने के लिए लिखे गए लोक छंदों में—एक आदिम सौकुमार्य है, उस माधुर्य को वात्सल्य रस नाम दिया जा सकता है। वह न तीव्र है, न गम्भीर, वह अत्यन्त स्निग्ध, सरस एवं युक्ति संगतिहीन है।'[1]

३. ऊलजलूल गीत

ऊलजलूल गीत अथवा असंगतिपूर्ण काव्य हिंदी के लोक काव्य में ही नहीं, हिंदी खड़ी बोली में, भारत की अन्य भाषाओं में तथा विश्व की अन्य भाषाओं में भी पाया जाता है। बंगला में ऐसे काव्य को 'आबोल ताबोल' कहते हैं। 'आबोल ताबोल' का तात्पर्य है 'अनाप-शनाप या ऊटपटाँग।'

बंगला भाषा का आबोल ताबोल काव्य विश्व के श्रेष्ठतम बाल काव्य के अन्तर्गत है। वहाँ सुकुमारराय को ऐसा काव्य लिखने में सर्वाधिक ख्याति मिली है। ऐसे काव्य को वे अर्थ और स्वरविहीन '(नाइको माने, नाइको शूर)' मानते हैं।

अँग्रेजी में इस काव्य को 'नानसेंस' काव्य कहा गया है। एडवर्ड लियर का नानसेंस काव्य प्रसिद्ध है जिसमें हास्य के साथ उच्चकोटि का व्यंग्य है। उसका नानसेंस काव्य बच्चों के मन बहलाव के लिये है, पर उसमें जिस विरूपता पर व्यंग्य है, वह बड़ों के जीवन की है। उसकी एक मनोरंजक ऊलजलूल कविता है :

दैयर वाज़ ऐन ओल्ड मैन हू सेड 'हाउ
शैल आइ फ्ली फ्राम दिस हारिबुल काउ
आइ विल सिट आन दिस स्टाइल
ऐंड कंटीन्यू टु स्माइल,
व्हिच मे साफेन द हार्ट आफ द काउ।'[2]

---

१. रवीन्द्रनाथ : ले० डा० शिवनाथ, पृ० २६३।

२. पिक ए पोयम (ए पिक्चर प्ले बुक), चिल्ड्रेंस प्रेस इनकारपोरेटेड, शिकागो, पृ० २।

६

लियर ने गद्य-पद्य दोनों में ऊलजलूल साहित्य रचना की है।

हिंदी में बालकों के लिये उद्देश्यवादी, उपदेशात्मक, उत्सव-त्योहार तथा ऋतुमूलक काव्य रचना अधिक हुई है। परिणामस्वरूप शुद्ध बाल साहित्य कम लिखा गया और हास्य साहित्य और भी कम। इधर गत दशक से अच्छी हास्य कहानियाँ और हास्य नाटकों की तथा कुछ हास्य कविताओं की रचना हुई है। अभी इस दिशा में काफी सम्भावना है।

ऊलजलूल कविता लिखने में रामनरेश त्रिपाठी ने सफल प्रयोग किये थे। उनकी एक कविता है—

आई एक छींक नन्दू को
एक रोज वह इतना छींका
इतना छींका, इतना छींका
इतना छींका, इतना छींका
सब पत्ते गिर गये पेड़ के
धोखा उन्हें हुआ आँधी का।

श्रीप्रसाद के भी पराग में ऐसे ही कुछ शिशुगीत प्रकाशित हुए हैं। 'बात अजब थी' या 'ताक धिनाधिनताक' अथवा 'धम्मक-धम्मक धम'। जैसी कविताओं में ये प्रयोग देखे जा सकते हैं।

काव्य का ऊलजलूलपन वास्तव में जीवन का ही ऊलजलूलपन है। चित्रकला में इसी ने व्यंग्य चित्र (कार्टून) को जन्म दिया।

जीवन में ऐसी परिस्थितियाँ आती हैं जो स्वाभाविकता से हटकर होती हैं। उनमें वैचित्र्य और उपाहासात्मकता होती है। ऐसी स्थितियों से कहीं केवल हँसी आती है। और कहीं व्यंग्य से तिलमिलाकर रह जाना पड़ता है।

काव्य में ऊलजलूल पन कई प्रकार से पैदा किया जा सकता है। इसकी तीन विधियाँ निम्नांकित हैं :

(१) उच्चारणगत अर्थात अनजाने कुछ का कुछ लिख जाना
(२) काव्य में निरर्थक वस्तु (या शब्दों) का उपयोग करना
(३) ऐसा विषय लेना जो स्वयं में अर्थ-विसंगत हो।[१]

संख्या (१) के उदाहरण में ऐसे शब्दों का प्रयोग है जिसमें कोई वर्ण छूट जाता है और शब्द नया रूप ले लेता है। संख्या (२) के उदाहरण में ऐसी कविताएँ हैं :

---

१. वर्ल्ड लिट्रेरी टर्म्स : पृ० २८२।

पोसंपा भाई पोसंपा
चाय की प्याली रोसंपा
डाकू होना, क्या किया
सौ रुपये की घड़ी चुराई
अब तो डाकू फँस गया।

यहाँ पोसंपा और रोसंपा केवल ध्वनि सौन्दर्य पैदा करने के लिए हैं, अन्यथा उनकी निरर्थकता ऊलजलूलपन है।

संख्या (३) का उदाहरण असंगत विषय है जैसे :

नाचे बंदर
घर के अन्दर
ढोल बजा ढम ढम
शेर गरजता
गधा न डरता
चरता घास नरम
धम्मक धम्मक धम।[१]

• बाल लोक काव्य में ऊलजलूल गीत बालक-बालिकाओं के लोकोत्सव गीतों में मिलते हैं। टेसू और झेंझी के अधिकांश गीत ऊलजलूल हैं। टेसू शब्द ही ऊलजलूलपन का प्रतीक हो गया है। टेसू का एक लोक प्रचलित अर्थ मूर्ख माना जाता है।

पर काव्य असंगतपन ऊलजलूल नहीं लगता। जीवन में हँसने हँसाने के लिए असंगत बातें कहने का प्रचलन है। व्यक्ति मनोरंजन चाहता है। स्वाभाविक से हटकर कुछ अस्वाभाविक या असाधारण बात में मनोरंजन रहता है। यही असाधारणता टेसू के गीतों में है।

मन इस असाधारणता को देखकर हँस पड़ता है जैसे एक कार्टून को देखकर। बाल लोक जगत का ऐसा ही एक हँसाने वाला गीत है :

लाई लाइ हर जोतन जइयों
चिल्लक चोंटि गिलौदें खइयों
कछु खाई कछु बाँधी पोट
जाइ परी चिल्लों की चोट।

बच्चों के खेल गीतों में भी अनेक ऊलजलूल गीत ही हैं :—

अक्कड़ बक्कड़ बंबे भो
अस्सी नब्बे पूरे सौ

१. पराग, मई १९७०।

सौ में लागा धागा
चोर निकलकर भागा
पाव रोटी बिस्कुट
मेम खाए कुट कुट
साहब बोले वेरी गुड ।

इस गीत ने आधुनिक परिप्रेक्ष्य को भी अपने में लिया है । अन्त की पंक्ति का अँग्रेजी वाक्यांश इस बात की सूचना देता है कि बाल जीवन भी आधुनिक अँग्रेजियत से अप्रभावित नहीं है । भाषा मिश्रण की दृष्टि से भविष्य में इसका ऐतिहासिक महत्त्व होगा ।

इसी प्रकार व्रज लोक काव्य में प्रचलित 'अनमिल्ला' और 'अचका' ऊल-जलूल काव्य की ही विधाएँ हैं ! अनमिल्ला का तात्पर्य अनमेल या असंगत बातों का कथन है जैसे—

भैंस विटोरा चढ़ि गई, टपटप पेंचू खाय
उठाय पूँछ देखन लगे, दिवाली के तीन दिना
× × × ×
पीपर बैठी भैंसि उगारे, ऊँट खांट पै सोवे
पीछें फिरिकें देखि लुगाई आंगियाए कुत्ता धोवे ।[1]

पीपल पर बैठ कर भैंस का जुगाली करना, ऊँट का खाट पर सोना और कुत्ते का अंगिया धोना हँसाने वाला ऊलजलूल कथन है ।

उनका तात्पर्य भी अचकचाने या चौकाने वाली बात का कहना है । ये चौंकानेवाली बातें सामान्य रूप से असम्भव होती हैं । जैसे :

पीपर पे ते उड़ी पतंग, जो कुहुँ लगिजाय मेरे अंग
मैंने दे दई बजुर किवार, नहिं उड़ि जाति कोस हजार ।

खड़ी बोली के बाल काव्य में ऊलजलूल की इस शैली का अनुकरण उपयुक्त हो सकता है । कतिपय शिशु गीतों में यह अनुकरण दिखाई भी देता है । 'घर से निकले बागड़ बिल्ला' शिशुगीत में यही शैली है । इस शैली की यद्यपि बहुत कम, पर कुछ कविताएँ भी हैं । जोकर शीर्षक कविता ऐसी ही है :

---

१. हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास : षोडस भाग, पृ० ३५९ ।

गदहे ने अपना गाना गाया खुश होकर
तो कोयल बोली, 'बुद्धि कहाँ रक्खी ढोकर'
बोलो हँसकर
मत यों रोकर
मैं हूँ जोकर ।

बालकों के लिए काव्य की यह अत्यन्त उपयुक्त शैली है, जिसका सफल व्यवहार लोक काव्य सृष्टि में हुआ है ।

४. लोरियाँ

बालकों को सुलाने के लिए गाए जाने वाले गीतों को लोरी कहते हैं। बालक के काव्यसंस्कार का निर्माण सबसे पहले लोरियों से ही होता है ।

लोरियों के आस्वादन की वय जन्म से तीन या चार वर्ष तक ही है । इस वय में बालक की दो संवेदनाएँ मुख्य रूप से क्रियाशील रहती हैं । (१) चाक्षुष और (२) श्रवण । चाक्षुष संवेदना के सक्रिय होने के कारण ही वह प्रत्येक वस्तु को देखते ही पकड़ने के लिये दौड़ता है—चाहे खिलौना हो चाहे आग । बौद्धिक विकास न होने से वह आग और खिलौने में अन्तर नहीं कर पाता ।

श्रवण संवेदना के अन्तर्गत बालक में विभिन्न प्रकार की ध्वनियाँ सुनने की क्षमता का विकास हो जाता है । वह मधुर ध्वनियों को सुनकर आह्लादित होता है और कर्कश तथा भारी ध्वनियों को सुनकर डरता और चौंकता है ।

लोरी ध्वनिप्रधान काव्य रूप है । इसमें अर्थ की अपेक्षा ध्वनि या स्वर का ही अधिक महत्त्व है । 'हूँ···हूँ···हूँ' या 'हो···हो···हो' जैसी ध्वनि इकाइयों को मधुर बनाकर गुनगुनाया जाता है तो बालक के ऊपर इसका जैसे 'सम्मोहात्मक[1] प्रभाव पड़ता है और धीरे-धीरे उसकी आँखों में नींद आने लगती है ।

पर यह प्रभाव तभी उत्पन्न होता है जब लोरी स्वर प्रधान हो, अर्थ प्रधान नहीं । लोरी की आदि गायिका माता अथवा दादी, नानी, आदि ने इस तथ्य को पहचान लिया था और बच्चों को सुलाने के लिए स्वर प्रधान लोरियों की रचना की—अर्थ के भार से लोरियों को मुक्त रखा । विश्व के लोरी साहित्य में स्वर की प्रधानता है । यह स्वर संगीत के आरोह-अवरोह में आता है और बालक पर इसका अचेतन रूप से प्रभाव पड़ता है । वह अपने शरीर को शिथिल कर देता है और विश्राम की अनुभूति करने लगता है । बाह्य जगत से उसका

---

१. बांगला शिशु साहित्येर क्रम विकास : आशा गंगोपाध्याय, पृ० १६ ।

ध्यान हट जाता है और मानसिक शिथिलता की स्थिति में वह नींद की अनुभूति करने लगता है।

लोरियों को अर्थभार से मुक्त रखने के लिये तथा उन्हें स्वर या नाद प्रधान बनाने के लिये प्रायः स्वरों को जोड़ा जाता है अथवा शब्दों को पुनरुक्त कर दिया जाता है। यह शब्द पुनरुक्ति अत्यन्त नादात्मक होती है और स्वर को विलम्बित करती जाती है, जैसे—

चाना मामा, आरे आव
पारे आव
नदिया किनारे आव
सोने के कटोरवा में
दूध भात ले ले आव
बबुआ के मुँहवा में—घुटुक, घुटुक, घुटुक !

पूरी लोरी बालक के सामने संगीत के साथ पायी जाती है और अन्त में घुटुक-घुटुक शब्द को इतना अधिक लयात्मक कर दिया जाता है कि बालक निद्राभिभूत हो जाता है।

अर्थभार से मुक्ति और शब्द पुनरुक्ति सभी भाषाओं की लोरियों में पाई जाती है। अंग्रेजी की लोरी में—

बाई बाई लल्ला लल्ला बी
लल्ला बी, ओह लल्ला बी

जैसे शब्द पुनरुक्त किये जाते हैं।

इसी शैली में अंग्रेजी में अन्य लोरियों की रचना हुई—

डिडिल, डिडिल, डम्पलिंग, माई सन जान,
वेंट टू बेड विद हिज ट्राउजर्स आन;
वन शू आफ, एंड वन शू आन,
डिडिल, टिडिल, डम्पलिग माई सन जान।

लोरियों की दूसरी विशेषता यह है कि पुनरुक्त शब्द प्रायः अर्थ विहीन पर नाद प्रधान होते हैं। ऐसे शब्द नृत्यमय और गतिशील होते हैं जो लोरी में संगीत उत्पन्न कर देते हैं—

अरर बरर पुआ पाकेला
चीलर खोंइछा नाचेला
चीलर भइले घोर
मोर बाबू के मुहवा गोर

बालक गतिशील छंद और सुपरिचित बिम्ब योजना से आकृष्ट हो जाता है।[1]

कभी-कभी किसी बाद्य की ध्वनि को ही पुनरुक्त करके संगीतमयता और गतिशीलता पैदा की जाती है। ये ध्वनियाँ हैं 'धमधमाधम धम' या टाक डुमाडुम[2] आदि।

चौथी विशेषता लोरियों के कथ्य से सम्बन्धित है। लोरियों का कथ्य दो प्रकार का होता है :

(१) ऊलजलूल अथवा अर्थ विसंगत

(२) बालक के जीवन से सम्बन्धित

ऊलजलूल अथवा अर्थविसंगत लोरियाँ नाद सौन्दर्य के लिये निर्मित होती हैं। गोदी के अथवा झूले में झूलने वाले बालकों को अर्थ की अपेक्षा होती भी नहीं—

हाल हाल बबुआ
कुरई में ढेबुआ
माई अकसरुआ
बाप दरबरुआ
हाल हाल बबुआ

प्रस्तुत शिशु गीत के अधिकांश शब्द अर्थ विहीन हैं, वे केवल स्वर संगति पैदा करते हैं। इसका एक सुन्दर उदाहरण निम्नांकित बंगला लोरी है—

नोटन नोटन पायरागुली, झोंटन बेंधेछे
बड़ साहेबेर बीबीगुलि नाइते नेमेछे
दुइ धारे दुइ रुई कातला मेसे उठेछे
दादार हाते कलम छिलो छूड़े मेरेछे
ओपारेते दुटी मेये नाइते एशेछे
रुनू झुनू चुलगाछटि झाड़ते लेगेछे (इत्यादि)

लोटन कबूतरों के सिर पर के बाल बँधे हुए हैं। बड़े साहब की स्त्रियाँ नहीं आती हैं। वे दोनों किनारों पर रुई कातती हुई पानी में धँसी। दादा के

१. एइ छड़ागुलिर प्रधान आकर्षण इहादेर छंदेर नृत्य ओ चित्र धर्मिता- बांगला शिशु साहित्येर क्रम विकास : आशा गंगोपाध्याय, पृ० १८।

२. टाक डुमाडुम बाद्य बाजे सीतारामेर खेला : वही, पृ० १८।

हाथ की कलम गिर गई। उस पार से दो लड़कियाँ नहीं आई हैं। वे अपने केश खोलकर फैला रही हैं।

बालक के जीवन से सम्बन्धित लोरियों में कभी नींद का भी आह्वान किया जाता है और रोते हुए बालक को चुप कराया जाता है। इसी प्रसंग में उसके जीवन से सम्बन्धित कुछ अवांतर प्रसंगों का भी वर्णन किया जाता है जैसे—

निंदिया तोला आवे रे, निंदिया तोला आवे रे
सुति जाबे, सुति जाबे, बाबू सुति जाबे रे
झनि रोबे झनि रोबे, बाबू झनि रोबे रे
तोर दाई गै है बाबू, मउहा बिने बर रे
तोर बाबा गै है बाबू, खेत कोड़ारे रे
× × ×
चंदा मामा आवनी, दूध भात खावनी
बाबू के मुँहवा में गप के, नोनी के मुँह में गपके।

और कहीं कहानियों की भाँति क्रम संबृद्ध पद्धति पर लोरियों की रचना हुई है। क्रम संबृद्ध लोरियों में प्रश्न और उत्तर की पद्धति सम्बद्ध प्रसंगों को जोड़ते जाते हैं और समापन बाल जीवन सम्पूर्ण प्रसंग को जोड़कर करते हैं :—

चान भाभू, चान भाभू, हँसुआ द
से हंसुआ काहेला ? कतरा कतरा वेला
से कतरवा काहेला ? गोरुआ ढुकावे ला
से गोरुआ काहेला ? चोंतवा पुरावेला
से चोंतवा काहेला ? अंगना लिपावेला
× × ×
से बेटवा काहेला ? गुल्ली डण्डा खेलेला
गुल्ली डण्डा टूट गैल, बबुआ रूस गैल।

क्रम संबृद्ध लोरियाँ अन्य भाषाओं में भी पाई जाती हैं। स्थान परिवर्तन से आंचलिक वैशिष्ट्य आ गया है अन्यथा ऐसी सभी लोरियाँ अपने स्वरूप तथा कथ्य में समान हैं। एक असमी लोरी है—

जोनबाई ए बेजी एति दिया
बेजीनां के लाइ ? मोना सीबलाइ
मोनानो केलाइ ? धान भराब लाइ
धान्नो के लाइ ? हाती किनिबलाइ
हातीनों के लाइ ? उथि फुरि बलाइ (इत्यादि)

प्यारी जोन बाई, मुझे एक सुई दे दो। सुई किस लिए ? एक थैला सीने के लिये। थैला किसलिए ? रुपये धरने के लिए। रुपये किस लिए ? हाथी खरीदने

के लिये। हाथी किसलिए ? सवारी करने के लिये।)

लोरी वस्तुतः स्वर प्रधान लोक काव्य है, जिसका प्रारम्भ ओ-ओ या ऊँ-ऊँ अथवा हो-हो के मधुर स्वर के साथ हुआ होगा। कालांतर में स्वर के साथ सार्थक शब्द भी बैठाए जाने लगे, जिनमें बालक के सौन्दर्य का वर्णन रहता या बालक के खेल का अथवा बालक के लिए गाय के दूध देने, चंदा मामा का उसके पास आने का उल्लेख रहता।

पर लोरी का इसके आगे भी विकास हुआ। इस विधान ने विकसित बाल काव्य का रूप धारण कर लिया। लोक बोली में ही यह विकास प्रारम्भ हो गया था। अनन्तर खड़ी बोली में भी अनेक सुन्दर लोरियों की रचना हुई।

अन्य भाषाओं ने भी इस बाल विधा को अपनाया है। तेलगू की एक लोरी का बंगला अनुवाद सुकमलदास गुप्त ने किया है। यह लोरी लव और कुश के जीवन पर आधारित है। बाल्मीकि के आश्रम में सीता, लव और कुश को झुला रही हैं। बालक लव और कुश रोने लगते हैं। तब सीता नाना जनक तथा दादी कौशिल्या और सुमित्रा काकी उर्मिला, तथा मांडवी आदि के विभिन्न उपहार लेकर आने का उल्लेख करती हैं और रोते हुए लव कुश को चुप कराती हैं।

प्रस्तुत लोरी अपने छंद सौन्दर्य और कथ्य की दृष्टि से भारतीय भाषाओं की श्रेष्ठतम लोरियों में है। साथ ही अनुवाद की उत्कृष्टता से लोरी मौलिक काव्य की रसानुभूति कराती है :

सोनार दोला के किनेछे
मुक्ता मनि ढेले
राजार छेलेर मा किनेछे-
घूमाय राजार छेले
सीता केनेन दोलना सोनार
कदम गाछे बाँधा
लव कुशेरा घूमाय ताते
घूम ऐशेछे आधा
आर केंदोना आर केंदोना
घूमाओ काँदन भूले
सोनार दोलाय काँद ले शुये
केऊ नेबेना तूले।

(मोती और मणियों से जड़े हुए सोने के झूले को किसने खरीदा है ? राजा

के पुत्रों की माँ ने भूला खरीदा है और राजा के पुत्र भूला भूलते हैं। सोने का भूला सीता ने खरीदा है, (जिसे) उन्होंने कदम की डाल पर बाँध दिया है। उस भूले पर लव और कुश भूल रहे हैं। अभी उन्हें आधी ही नींद आई है। (तभी वे रोने लगते हैं और सीता जी कहती हैं) और मत रोओ, और मत रोओ। रोना धोना भूलकर सो जाओ। भूले पर रोते हुए सोने से कोई तुम्हें गोद न लेगा।[१]

इस प्रकार की लोरियाँ की सही परिभाषा के अन्तर्गत नहीं आ सकतीं। कारण स्वर के स्थान पर इनमें अर्थ की प्रधानता है और प्रारम्भिक वय के शिशु इन लोरियों से प्रभावित नहीं हो सकते। पर बाल काव्य की दृष्टि से ये लोरियाँ महत्त्वपूर्ण हैं और इसी दृष्टि से इन लोरियों की रचना हुई है।

हिन्दी लोक काव्य में लोरी विधा कब प्रारम्भ हुई, कहना कठिन है। इसका कारण यह है कि लोरी लोक गीत का अंग है और लोक गीत समूह रचना है जिसका रचनाकाल और रचयिता दोनों अज्ञात हैं।

पर यह कहने की आवश्यकता नहीं कि लोरी अत्यन्त प्राचीन रचना है जिसका संकेत सूर के पदों से मिलता है। माँ जसोदा कृष्ण को सुलाने के लिये लोरियाँ गाती है—हलरावे दुलराइ मल्हावे जोइ सोइ कछु गावे।

वस्तुतः लोरी बाल काव्य का सजीव अंग है तथा इसमें लोक संस्कृति निहित है।

५. पहेलियाँ

कहावत है 'पहेली मत बुझाओ'। वक्ता के कहने का उद्देश्य यह होता है कि बात को इस प्रकार स्पष्ट कहो जिससे समझ में आ जाय। तात्पर्य यह है कि पहेली में कही गई बात अस्पष्ट जैसी होती है, सामान्य बुद्धि से वह समझ में नहीं आती, और उसको समझने के लिये बौद्धिक व्यायाम की आवश्यकता होती है। तभी रामनरेश त्रिपाठी ने इन्हें 'बुद्धि पर शान बढ़ाने का यंत्र' और 'वस्तु ज्ञान बढ़ाने की कलें' कहा है।[२]

पर इन पहेलियों का प्रारम्भ कैसे हुआ? फ्रेजर के मत से 'पहेलियों की रचना अथवा उदय उस समय हुआ होगा, जब कुछ कारणों से वक्ता को स्पष्ट शब्दों में किसी बात को कहने में किसी प्रकार की अड़चन पड़ी होगी।[३]

---

१. संदेश : बंगला बाल मासिक, जनवरी १६६६।

२. ग्राम साहित्य : रामनरेश त्रिपाठी : भाग ३, पृ० २८५।

३. द गोल्डन बाउ, भा० ६, पृ०१२१।

इसी मानव प्रवृति के कारण पहेलियाँ संसार में सर्वत्र पाई जाती हैं। 'अविकसित मानव जाति में पहेलियाँ अधिक पाई जाती हैं, सभ्य जातियों के साहित्य में पहेलियाँ गढ़ने की परम्परा प्रायः लुप्त हो गई है।'[1]

बौद्धिक व्यायाम का आवाहन पहेलियों का सर्वोपरि गुण है। ऋग्वेद के मंत्र में एक पहेली इस प्रकार है---

'चत्वारि शृंगा, त्रयो अस्य पादा, द्वे शीषे, सप्त हस्तास्ते, अस्य त्रिधावद्धो वृषभो, रोरवीति महादेवो भृत्यां आ विवेष।'

इसका तात्पर्य यह किया गया है—'जिसके चार सींग है, तीन पैर हैं, दो सिर हैं, सात हाथ हैं, जो तीन जगहों में बँधा हुआ है, वह मनुष्यों में प्रविष्ट हुआ, वृषभ शब्द करता हुआ महादेव है।'

उपर्युक्त श्लोक का यह सामान्य अर्थ है, जिसमें किसी प्रकार का पहेलीपन नहीं है। पर इसका दूसरा गूढ़ अर्थ यह लगाया जाता है---'वह वृषभ यज्ञ है जिसके चारों सींग चारों वेद हैं, प्रातःकाल मध्याह्न और सायंकाल तीन पैर हैं। उदय और अस्त दो सिर हैं। सात प्रकार के छंद सात हाथ हैं। वह मंत्र ब्राह्मण और कल्परूपी तीन बंधनों से बंधा हुआ मनुष्य में प्रविष्ट है।'[2]

पहेलियाँ आदिम मानव की विकासात्मक अवस्था सूचित करती हैं। इनकी रचना संस्कृति के उस सोपान पर होती है जब व्यक्ति सादगी छोड़कर तर्क वितर्कना की गम्भीर गुहा में प्रवेश करता है।

यहीं से सम्भवतः मानव का बौद्धिक विकास होता है।

पौटर के अनुसार 'अति प्राचीन काल में आदि मानव के बाह्य जगत से संयोजन के अभ्यास स्वरूप पहेली का उदय हुआ। समस्त एकरूपता और उपयुक्तता, समस्त अव्यवस्थाएँ और असंगतियाँ बालकों तथा बाल मानव को आकृष्ट करती हैं। परिणामस्वरूप बालकों की अभिरुचि पहेलियों की ओर हो जाती है और इसी के परिणामस्वरूप अविकसित तथा आदिमानव ने पहेलियाँ प्रस्तुत कीं। समस्त लोक साहित्य पहेलियों से भरा पड़ा है। ये रहस्य भी हैं और साथ ही

---

१. इन द ट्रेडिशन आफ अनसोफिस्टिकेटेड पीपुल्स, रीडिल्स आफ दिस शार्ट आर एबंडेंट; इन मोर सोफिस्टिकेटेड लिटरेचर्स द नेक आफ क्वायॅनिंग सच रीडिल्स इज आलमोस्ट लॉस्ट।

—डिक्शनरी आफ वर्ल्ड लिटरेरी टर्म्स : टी० सिप्ले, पृ० ३४९।

२. निमाड़ी और उसका लोक साहित्य : रामनारायण उपाध्याय, पृ० ४२।

कैशोर बुद्धि की सचेतनवादिता भी।'[1]

पहेलियों का विकास बराबर होता गया। इसका कारण यह था कि जहाँ कुछ पहेलियाँ गणितीय थीं वहीं अनेक पहेलियाँ साहित्यिक सौंदर्य लिए हुए थीं। बौद्धिक उलझन से प्राप्त आनन्द 'मानव मनोरंजन'[2] और साहित्यिक सौन्दर्य ही पहेलियों को विकसित करने के मूल कारण थे। 'अपने आसपास की जिन वस्तुओं की ओर हम देखकर भी अनदेखे रह जाते हैं वे सब यहाँ नवीन कल्पना से शृङ्गार कर हमारी बुद्धि की परीक्षा लेती सी प्रतीत होती हैं। इनमें हमारे आस पास की प्रत्येक वस्तु का अत्यन्त ही सुंदर ढंग से परिचय संजोया हुआ है।'[3]

पहेलियों के प्रति इतना अधिक आकर्षण होने के कारण ही इनकी रचना गद्य और पद्य, दोनों विधाओं में हुई। गद्य पहेलियाँ गणितात्मक अधिक हैं। उनमें किसी प्रकार की साहित्यिकता प्रायः नहीं है।

पर पद्यात्मक पहेलियाँ साहित्य के अंश हैं, मुख्य रूप से बाल साहित्य के हैं। ऐसी पहेलियों में उपमा और रूपकों का विधान है, अनुप्रास की छटा है और हैं सुन्दर काव्यमय वर्णन। जब पहेली बुझाई जाती है—

चार पाम की चापरचुप्पो वा पे बैठी लुप्पो
आई सप्पो ले गई लुप्पो, रह गई चापरचुप्पो।[4]

तो 'भैंस पर मेंढ़की' उत्तर बताने के लिए बालक केवल बौद्धिक विलास ही नहीं करते, शब्द और वर्ण योजना के आलंकारिक सौंदर्य से भी आह्लादित होते हैं। इसी प्रकार :

एक थाल मोती से भरा, सबके सिर पर औंधा धरा।
चारों ओर वह थाल फिरे, मोती उससे एक न गिरे।[5]

कहने पर बालक 'आकाश' उत्तर के लिए जी तोड़ व्यायाम करते हैं और प्रयत्न से उत्तर पा भी जाते हैं। पर पहेली का अंत यहीं नहीं हो जाता। पहेली में संकेतित आकाश के सुन्दर वर्णन के प्रति भी आकर्षण है। मोती से भरे हुए थाल के रूपक से जिस आकाश का उल्लेख किया गया है वह अत्यन्त काव्यमय

---

१. स्टैंडर्ड डिक्शनरी आफ फोकलोर : सी० एफ० पोटर : भाग-२, पृ० ८३९।

२. हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ५७।

३. निमाड़ी और उसका लोकसाहित्य : रामनारायण उपाध्याय, पृ० ४१।

४. हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास : षोडश भाग, पृ० ३६२।

५. हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ५७।

है। यह साहित्यिक पहेली है।[1]

कहीं-कहीं पहेलियों में अत्यन्त जटिल पौराणिक सौन्दर्य भी प्राप्त होते हैं। इसका उदाहरण निम्नांकित पहेली है :

स्यामबरन मुख उज्जर कित्ते ? रावन सीस मदोदरि जित्ते !
हनुमान पिता करि लै हों, तब राम पिता भरि देहों।

प्रस्तुत पहेली बड़ी मनोरंजक है जिसमें राम, दशरथ, रावण, मन्दोदरी और हनुमान का एक साथ उल्लेख हुआ है। इसमें प्रसंग उर्द खरीदने बेचने का है। खरीदने वाला गूढ़ भाव से श्यामवर्ण और उज्ज्वल मुख अर्थात उर्द का भाव पूछता है। बेचने वाला रावण और मन्दोदरी के जितने सिर अर्थात एक रुपये में ग्यारह सेर बताता है। इस पर खरीदने वाला हनुमान पिता अर्थात पवन या हवा करके--पछोरकर लेने की बात कहता है। तब बेचने वाला रामपिता अर्थात दशरथ या रुपये के दस सेर देने की बात कहता है।

इस प्रकार एक सामान्य मोलभाव की बात पहेली बन गई

पहेलियाँ छोटी भी होती हैं और अपने छोटे कलेवर में सूक्तिरूप से संकेत करती हैं :

बाबा सोवैं जा घर में
गोड़ पसारैं आ घर में। (उत्तर दीपक)

या

आकास गइले चिरई, पाताल गइले बच्चा
हुचुक्क मारे चिरई, पियाव मोर बच्चा। (उत्तर ढेंकुल)

पहेली यद्यपि गणितीय बुझौवल है जिसके लिए बौद्धिक व्यायाम अनिवार्य होता है, पर पहेलियों के माध्यम से अच्छी कविताओं की भी सर्जना हुई है। अंग्रेजी का लोकप्रिय शिशुगीत 'हम्प्टी डम्प्टी' एक पहेली ही है, जिसका उत्तर है 'अंडा'।[2]

---

१. लिटरेरी राडिल्स आफेन डेवलप—एट द एक्सपेंस आफ द डिसक्रिप्टिव डिटेल्स। वर्ल्ड लिटरेरी टर्म्स : टी० सिप्ले, पृ० ३४९।

२. हम्प्टी डम्प्टी सैट आन ए वाल
हम्प्टी डम्प्टी हेड के ग्रेट फाल
आल द किंग्स हासेज एन्ड आल द किंग्स मेन
कुड नाट पुट हम्प्टी टुगेदर अगेन।

हिन्दी में जन मनोरंजन के लिए अधीर खुसरो ने अनेक पहेलियों की रचना की थी।

बालकों के लिए पहेलियाँ इतनी अधिक हास्योत्पादक और मनोरंजक पाई गईं कि लोक भाषाओं की पहेलियों के होते हुए भी नई पहेलियाँ लिखी गईं और आज भी लिखी जा रही हैं। कोयल सम्बन्धी एक पहेली है :

मीठा गाना गाती है जो
बाग बाग में जाती है जो
लगती सबको प्यारी,
उत्तर दो या फिर जल्दी से
मानो अपनी हारी।

बंगला बाल पत्रिकाओं में तो प्रतिमास काव्यमय पहेलियाँ (धान्धा) प्रकाशित होती हैं जिनका बाल पाठक उत्तर देते हैं।[1]

कालान्तर में पहेलियों के अनेक प्रकार प्रचलित हुए। शब्द के आगे, पीछे या बीच के अक्षर कम करते हुए[2] भी पहेलियाँ बनीं, प्राणी या पदार्थ की

---

१. प्रथम अक्षर आछे बिकाले-सकाले नाइ
द्वितीय पुकर नाइ उद्याने तारे पाइ
तिन भरसाय पाय थाकेना से आँखिलों रे
चतुर्थ जागरणे, नाहिं पाइ धूमधो रे
पंचम भोजने नाइ, रयेछे से अनाहारे
पांचे मिले जार नाम, प्रणाम जानाइ तारे।

पहला अक्षर विकाल (तीसरा पहर) में है, सकाल (प्रातःकाल) में नहीं। दूसरा अक्षर पुकुर (तालाब) में नहीं है, उद्यान में है। तीसरा अक्षर भरसा (विश्वास) में है, आँखिलोर (आँख के आँसू) में नहीं। चौथा अक्षर जागरण में है, धूमधोर (गहरी नींद) में नहीं। पाँचवाँ अक्षर भोजन में नहीं है, अनाहार में है। इन पाँचों अक्षरों के मिलने से जो नाम बनता है, उसको मैं प्रणाम करता हूँ।

यह पाँच अक्षरों का नाम है 'विद्यासागर' जो पहेली का उत्तर है।

—सन्देश : (बँगला बाल मासिक) : जुलाई-अगस्त, १९७० ।

२. आदि कटे तो जल बने, मध्य कटे तो काल।
अंत कटे तो काम हो, बूझो तुम तत्काल। (उत्तर काजल) :
—बालक, नवम्बर १९६६ ।

प्रकृति का निर्देश करते हुए पहेलियाँ बनी या एक शब्द से निर्मित गणितीय पहेलियाँ बनीं जैसे 'तीतर के दो आगे तीतर, तीतर के दो पीछे तीतर, तो बतलाओ कितने तीतर ? श्रोता सहज ही इसका उत्तर पाँच बतायेगा। पर सही उत्तर तीन है। तीन तीतरों के होने पर दो आगे हो जायेंगे और फिर दो पीछे भी हो जायेंगे।

उपर्युक्त बाल लोक साहित्य के अध्ययन के स्पष्ट है कि बाल मनोरंजन की दृष्टि भी उसमें परिव्याप्त है। यद्यपि यह सही है कि शुद्ध बाल लोक साहित्य की रचना खेल-गीतों या उत्सव-गीतों आदि के रूप में बालकों के द्वारा हुई, शेष साहित्य जनसमूह की सृष्टि है, पर अपनी सरलता और सहजता के कारण बड़ों के द्वारा सर्जित साहित्य में से भी बाल समाज अपने उपयोग की सामग्री संचित करता गया।

आज लोक साहित्य में बाल लोक साहित्य का अतुल भंडार उपलब्ध हो गया है। यह एक ओर जहाँ बालकों का मनोरंजन कर रहा है, वहीं बाल साहित्य रचना के सूत्र भी प्रदान कर रहा है। अनेक बाल कविताएँ, कहानियाँ और नाटक लोक साहित्य की पृष्ठभूमि पर निर्मित हुए हैं।[१]

लोक साहित्य का महत्त्व सभी ने स्वीकार किया है। इस संदर्भ में यहाँ तक कहा गया है कि 'विश्व के समस्त कथा साहित्य की जननी लोक कथाएँ हैं और समस्त काव्य की जननी लोकगीत।'[२] आनन्द प्रकाश जैन ने इस साहित्य को 'क्लासिक्स' की संज्ञा देते हुए बालकों के लिये इसे परिष्कृत रूप में प्रस्तुत करने की आवश्यकता बताई है।[३]

खेद है, हिंदी में लोक साहित्य का उपयोग साहित्य की अन्य विधाओं में प्रायः नगण्य है। लोक साहित्य में नये अर्थों की पर्याप्त सम्भावना है वह व्यंग्य साहित्य है, जिसमें से मनोनुकूल अर्थ निकालकर रूपान्तर के साथ अन्य विधाओं को जन्म दिया जा सकता है। रूसी साहित्यकार सैम्युएल मारशाक की नाट्य कविता 'छोटा सा घर' मूलतः वहाँ की एक लोक कथा है। मारशाक ने इसे नये परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया है। बूढ़े आदमी का दस्ताना[४] नामक पुस्तिका भी एक

---

१. शेयाल पंडितेर पाठशाला (काव्य नाटिका) संदेश : अप्रैल, १९६८, 'ब्राह्मण ओ ब्राह्मणी' (काव्य नाटिका : वही, दिसम्बर, १९६७।

२. हिंदी साहित्य का बृहद इतिहास : षोडश भाग : प्रस्तावना, पृ० १७९।

३. बच्चों का साहित्य कैसा हो ? (निबन्ध : आनन्दप्रकाश जैन : धर्मयुग १४ जून, १९६४।

४. विदेशी भाषा प्रकाशन गृह, मास्को।

रूसी लोक कथा ही है जो ए० राचेव के चित्रों द्वारा नया अर्थ देने लगी है।

बंगला बाल साहित्यकारों ने लोक साहित्य को बाल साहित्य की अन्य विधाओं में परिणत किया है। हिन्दी बाल साहित्यकारों को उपलब्ध लोक साहित्य को सजा सँवार कर, बालोपयोगी बनाकर ही नहीं प्रस्तुत करना है, अन्य विधाओं में भी, उसका उपयोग करना है। पहला कार्य तो काफी अधिक हुआ भी है—सभी भाषाओं के लोक साहित्य के संग्रह हिंदी में प्रकाशित हुए हैं, पर दूसरे कार्य के लिये कल्पना की आवश्यकता है। यह एक प्रकार की मौलिक साहित्य सृष्टि है--- लोक साहित्य तो आधार मात्र प्रस्तुत करेगा।

इधर गत दशक से बाल साहित्य की चेतना जिस प्रकार बढ़ रही है और विभिन्न भाषाओं के बाल साहित्य का अंतरावलम्बन प्रारम्भ हुआ है, उससे इस अभाव की पूर्ति की भी आशा बढ़ चली है।

वास्तविकता यह है कि अभी हिंदी बाल साहित्यकारों को बहुत कुछ करना है, अमेरिकी कवि राबर्ट फ्रास्ट के शब्दों में अभी उन्हें 'बहुत दूर जाना है... बहुत दूर।'

•

आधुनिक हिन्दी बाल साहित्य की पृष्ठभूमि : १९वीं शताब्दी

भारतीय शिक्षा व्यवस्था : नई परिस्थितियाँ

भारतीय शिक्षा व्यवस्था में नई परिस्थितियाँ अंग्रेजों के भारत आगमन के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुईं। इन नई परिस्थितियों ने भारतीय शिक्षा में आमूल परिवर्तन कर दिया। शिक्षा ने परंपरित रूप को त्यागकर एक नई दिशा ग्रहण की।

इस दिशा परिवर्तन की सीमा में ही हिन्दी बाल साहित्य ने भी अपना स्थान बनाया। पर विस्तृत विश्लेषण के पूर्व तत्कालीन इतिहास को भी संक्षेप में देखने की आवश्यकता है।

भारत में उथल-पुथल का प्रारम्भ विदेशी आक्रमणों के साथ हुआ। अनेक विदेशी भारत में धन लूटने की दृष्टि से आये और धन लेकर चले गये। पर मुगल जो आए तो गए नहीं—वे भारतीय जीवन में रम गए। उन्होंने व्यवस्थित शासन की स्थापना की और भारत को ही अपना देश मान लिया। यह भारतीय इतिहास का मध्यकाल था। वैसे यह शांतिकाल था, पर सांस्कृतिक और शैक्षिक दृष्टि से यह समय अधिक समृद्ध न था। फिर भी मकतब या उर्दू और अरबी फारसी की पाठशालाएँ तथा संस्कृत अध्यापन की व्यक्तिगत संस्थायें थीं जहाँ शौकिया या ज्ञानलब्धि के उद्देश्य से छात्र एकत्र होकर अध्ययन करते थे।

अरबी फारसी तथा उर्दू की शिक्षा का प्रारम्भ देश में मुगलों के कारण हुआ था। किन्तु संस्कृत शिक्षा की परम्परा प्राचीन थी।

अंग्रेज भारत में व्यावसायिक उद्देश्य लेकर आये थे। भारत की संपन्नता की ख्याति पुर्तगाली, डच और फ्रांसीसियों को भी भारत में लाई थी। सबका एक ही उद्देश्य था--भारत में व्यवसाय और भारतीय धन को अपने देश में ले जाना। परिणामस्वरूप प्रारम्भ में संघर्ष भी हुआ और अंग्रेजों ने अपने बुद्धि चातुर्य तथा संगठित शक्ति से सबको पराजित कर दिया। व्यवसाय के क्षेत्र में भारत में उनका एकाधिकार स्थापित हो गया।

अब अंग्रेज अपनी व्यावसायिक संस्था ईस्ट इंडिया कम्पनी के माध्यम से अबाध गति से भारत के साथ व्यवसाय करने लगे। धर्म, व्यवसाय और साम्राज्य प्रायः साथ साथ चलते हैं। ईस्ट इंडिया कम्पनी की सफलता देखकर अंग्रेज पादरियों का भी भारत में आगमन प्रारंभ हो गया। वे यहाँ धर्म प्रसार करना चाहते थे, भारत की अशिक्षा और अस्थिरता से लाभ उठाकर भारत को ईसाई मत में परिणत कर लेना चाहते थे।

इसके मूल में सम्भवतः अंग्रेजों की एक दूसरे प्रकार की दूरदर्शिता भी थी–भारत में स्थापित होनेवाले अंग्रेजी राज्य में स्थानीय ईसाइयों का सहयोग। अंग्रेज भारत को एक ओर राजनीतिक दास बनाना चाहते थे और दूसरी ओर धर्म के माध्यम से मानसिक और सांस्कृतिक दास।

अंग्रेजों ने व्यवसाय करने के साथ-साथ राजनीतिक रूप से भी भारत में अपने को फैलाना प्रारंभ कर दिया। भारतीय राजनीति में भाग लेकर और तत्कालीन राजाओं के साथ मेल ओर विरोध (डिवाइड ऐंड रूल) की नीति पर चलकर उन्होंने भारत को हथियाना प्रारंभ कर दिया। भारत की शासन सत्ता क्रमशः उनके हाथों में आती चली गई। प्रारंभ से ही उन्होंने विभाजन और शासन की नीति से काम लिया। भारत की तत्कालीन राजनीतिक भूमि इसके लिए उन्हें अत्यन्त उपयुक्त मिली। इस उद्देश्य से उन्होंने भारतीय राजाओं से लड़ाइयाँ भी लड़ीं।

सन् १७६४ के बक्सर युद्ध के बाद उनका शासकीय रूप खुलकर सामने आ गया।[१]

अंग्रेजों का शासन प्रसार होता रहा। भारत के जो भाग इनके हाथ में आए, वहाँ की शिक्षा व्यवस्था पर भी इनकी दृष्टि गई। इसके लिए आवश्यकता हुई पुस्तकों की, जिनके द्वारा जनता को शिक्षित किया जा सके।

हिन्दी खड़ी बोली का विकास बहुत पहले से हो चुका था। अमीर खुसरो ने जिनका जन्म सन् १२५४ में हुआ था—अपनी पहेलियों और तुकबंदियों में खड़ी बोली का अत्यन्त साफ-सुथरा रूप रखा था। अमीर खुसरो द्वारा प्रयुक्त प्रांजल खड़ी बोली से सिद्ध होता है कि खड़ी बोली के 'कुछ गीत, कुछ पद्य, कुछ तुकबंदियाँ खुसरो के पहले से अवश्य चली आती होंगी।'[२] इस प्रकार 'उस समय सारे

१. भारतीय शिक्षा का इतिहास : ले० रमणीकान्त सूर तथा श्यामाचरण दुबे, पृ० २७

२. हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ३८२।

उत्तरी भारत में खड़ी बोली व्यवहार की शिष्ट भाषा हो चुकी थी।'

इसी खड़ी बोली में प्रारम्भ में उर्दू के साथ-साथ पुस्तकें लिखाई गईं। इन पुस्तकों में जहाँ 'प्रेमसागर' और 'नासिकेतोपाख्यान' जैसी पुस्तकें बड़ों के उपयोगार्थ थीं, वहीं कुछ ऐसी पुस्तकों की भी रचना हुई, जो बड़ों के साथ-साथ बालकों के लिए भी समान रूप से उपयोगी थीं।

उर्दू मुगल दरबार में प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुकी थी, इससे उसका भी स्वतन्त्र रूप विकसित होता गया था, पर जैसा हरिकृष्ण देवसरे मानते हैं कि 'उर्दूवालों ने उस समय खड़ी बोली का विरोध किया और उसे 'भाखा' शब्द उन्होंने ही दिया',[1] तथ्य से दूर जाना है। वास्तव में' 'भाखा' शब्द का प्रयोग भक्तिकाल में ही हो गया था। तुलसीदास ने एकाधिक बार भाखा शब्द का प्रयोग किया है।[2] आगे चलकर रीतिकाल में केशव ने 'भाखा' शब्द का प्रयोग किया।[3] तुलसीदास के 'भाषा' शब्द के प्रयोग से स्पष्ट है कि यह शब्द भक्तिकाल के भी पहले से चला आ रहा था।

इस प्रकार 'भाखा' शब्द तत्कालीन काव्य भाषा ब्रज और अवधी के लिये प्रचलित था। इसका मूल संस्कृत का 'भाषा' शब्द है, जिसका तात्पर्य है जन प्रचलित की बोली। इससे सिद्ध है कि उर्दूवालों ने खड़ी बोली को 'भाखा' नहीं कहा।

हिन्दी में पुस्तकें लिखने की व्यवस्था सन् १८०३ में फोर्ट विलियम कालेज, कलकत्ता के हिन्दी-उर्दू के अध्यापक जान गिलक्राइस्ट ने कराई। इसके लिए उन्होंने चार व्यक्तियों को नियुक्त किया--मुन्शी सदासुखलाल, सैयद इंशा अल्ला खाँ, लल्लूलाल और सदल मिश्र। खड़ी बोली के इन चारों प्रारंभिक साहित्यकारों ने गिलक्राइस्ट महोदय के आदेश पर जो पुस्तकें प्रस्तुत कीं, वे मुख्यतः धार्मिक ही हैं, बाल साहित्य की नहीं--न मुन्शी सदासुख लाल का सुखसागर, न इंशा की 'रानी केतकी की कहानी' न लल्लूलाल का 'प्रेमसागर' और न सदल मिश्र का 'नासिकेतोपाख्यान'। हाँ, लल्लूलाल ने संस्कृत से कुछ अनूदित सामग्री अवश्य दी है, जो बड़ों के लिए होते हुए भी बालोपयोगी है।

---

१. हिन्दी बाल साहित्य : एक अध्ययन : हरिकृष्ण देवसरे, पृ० ११३।

२. तौ फुर होउ कहउँ सब 'भाषा' भनिति प्रभाउ।
—रामचरितमानस : बालकांड : दोहा संख्या १५

३. 'भाखा' बोलि न जा नहीं, जिनके कुल के दास।
तिन भाखा कविता करी जड़मति केशवदास॥

यह पहले ही बताया गया है कि प्रारंभ में बाल साहित्य का सुचिंतित लेखन नहीं हुआ। जो सामग्री बालकों के उपयोग की सिद्ध हुई, बालकों ने उसे ग्रहण कर लिया और वह बाल साहित्य के अन्तर्गत आ गई। यह स्थिति केवल हिन्दी की ही नहीं, विश्व की सभी भाषाओं के बाल साहित्य की है। प्राचीन अँग्रेजी बाल साहित्य के सम्बन्ध में कार्नेलिया मीग्स ने जो कुछ लिखा है,[1] वह आधुनिक युग में व्यवस्थित बाल साहित्य रचना के पूर्व तक लागू होता है।

हिन्दी में बाल साहित्य की व्यवस्थित परम्परा का विकास द्विवेदी युग से ही होता है, जिसका आगे चलकर विचार किया जायेगा। इसके पूर्व का साहित्य बड़ों और आनुषंगिक रूप से बालकों के उपयोग का है, यद्यपि बाल-साहित्य रचना का प्रयास भारतेन्दु युग से ही हो जाता है ऐसी स्थिति में भारतेन्दु युग के पूर्व की बाल साहित्य परम्परा में उपर्युक्त लेखक चतुष्टयी में केवल लल्लू-लाल का अनूदित साहित्य विचारणीय रह जाता है और सुप्रसिद्ध साहित्यकार हैं राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द, जिन्होंने साहित्य का भण्डार भरने के प्रसंग में बालकों के लिए भी पठनीय सामग्री प्रस्तुत की। राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द का कुछ साहित्य निश्चित रूप से बाल साहित्य की श्रेणी में है, क्योंकि शिक्षा विभाग से सम्बन्धित होने के कारण बालकों की शैक्षिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर उन्होंने साहित्य रचना की थी।

पर हरिकृष्ण देवसरे का सदल मिश्र कृत 'नासिकेतोपाख्यान' के विषय में यह कहना कि 'बालकों को धर्मशास्त्र पढ़ाने तथा नैतिक ज्ञान देने के लिए यह पुस्तक उपयोगी सिद्ध हुई'[2] संगत नहीं प्रतीत होता। आचार्य शुक्ल द्वारा दिए गए जिस उद्धरण पर यह निष्कर्ष आधारित है,[3] उससे भी यही बात सिद्ध होती है। नासिकेत मुनि द्वारा 'यम की पुरी सहित नरक का वर्णन', 'भार्या का त्याग' और 'दूसरे की स्त्री को व्याहना' जैसे प्रसंग बालोपयोगी नहीं हो सकते। इसमें सन्देह नहीं कि पुस्तक की रचना का उद्देश्य नैतिक ज्ञान देना ही है, पर बालकों को नहीं, बड़ों को।

---

१. इन दैट एंसियेंट वर्ल्ड आफ प्रिमिटिव आइडियाज ऐंड प्रिमिटिव इंपल्सेज, देयर वाज लिटिल डिस्टिंक्शन बिटविन ह्वाट इंटरटेंड द एल्डर्स ऐंड ह्वाट इंटर-टेंड द यंग :—ए क्रिटिकल हिस्ट्री आफ चिल्ड्रेंस लिटरेचर : मीग्स, पृ० २३।

२. हिन्दी बाल साहित्य : एक अध्ययन : हरिकृष्ण देवसरे, पृ० ११४।

३. हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ४०१।

फिर महराज रघु की पुत्री चन्द्रावती और उसके पुत्र नासिकेत तथा महा-मुनि उद्दालक के जिस पौराणिक प्रसंग पर पुस्तक आधारित है, वह भी बालकों के लिए उपयोगी न होकर, बड़ों के लिये ही उपयोगी है।

इस प्रकार विवेच्य सीमा में लल्लूलाल और राजा शिवप्रसाद सितारे-हिन्द यही दो लेखक रह जाते हैं जिनकी उपलब्धियों पर विचार किया जा सकता है।

लल्लूलाल उर्दू खड़ी बोली हिन्दी और ब्रज तीनों भाषाओं पर समान अधिकार रखते थे। जान गिलक्राइस्ट से सम्पर्क होने पर उन्होंने हिन्दी ग्रन्थों की रचना के लिए सन् १८०० में फोर्ट विलियम कालेज में इनकी नियुक्ति की। तत्कालीन शैक्षिक आवश्यकताओं की दृष्टि से वहाँ इन्होंने तीन कृतियों के अनुवाद किए—(१) सिंहासन बत्तीसी, (२) बैताल पचीसी तथा (३) राजनीति।

सिंहासन बत्तीसी सुन्दरदास कवि के ब्रज भाषा ग्रन्थ का खड़ीबोली में रूपांतर है। (सन् १७९८)। मूल पुस्तक संस्कृत में 'सिंहासन द्वात्रिंशिका' या 'द्वात्रिंशत्पुत्तलिका' अथवा 'विक्रमचरित' आदि नामों से ख्यात है। नैतिकता और आदर्शोन्मुख प्रस्तुत पुस्तक बालकों के लिये उपयोगी सिद्ध हुई है।

दूसरी पुस्तक बैताल पचीसी भी मूल संस्कृत पुस्तक का अनुवाद है, जिसमें राजा विक्रमादित्य और बैताल के वार्तालाप से सम्बन्धित पच्चीस कहानियाँ हैं। बुद्धि पैनी करने के लिए ये कहानियाँ उपयोगी हैं। बैताल द्वारा पूछे गए प्रश्नों में बुद्धिमत्ता और मनोरंजकता, दोनों तत्त्व हैं। इसी दृष्टि से ये कहानियाँ बालकों को रुचिकर प्रतीत हुई हैं और रहस्यमयता के बावजूद बालक आज तक उन्हें पढ़ रहे हैं।

बैतालपचीसी के मूल रचयिता शिवदास कवि हैं, जिसका अनुवाद सन् १७९९ में लल्लूलाल ने प्रस्तुत किया था।

तीसरा ग्रन्थ 'राजनीति' है जो हितोपदेश की कहानियों का अनुवाद है। पर सन् १८१२ में किया गया यह अनुवाद ब्रजभाषा में है। इसकी कहानियाँ धर्म, नैतिकता, व्यवहार ज्ञान आदि से सम्बन्धित हैं।

पंचतंत्र की भाँति पाँच भागों में विभक्त 'राजनीति' की ब्रजभाषा अधिक कठिन नहीं है, बालकों द्वारा थोड़े प्रयास से समझी जा सकती हैं। भाषा का प्रस्तुत उदाहरण इसका प्रमाण है—'इतनी कहि पुनि राजा बोल्यो कि मेरे पुत्र गुनवान होंय तो भलो। यह सुनि कोऊ राजसभा ते बोल्यो कि महाराज आपु, कर्म, वित्त, विद्या अरु मरन ये पाँच बात देहधारी कों गर्भ ही में सिरजी हैं।............जो तिहारे पुत्रनि के कर्म में विद्या लिखी है तो विद्यावान

होंयगे ।[1]

राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' हिन्दी, उर्दू, फारसी, संस्कृत, अंग्रेजी और बँगला के ज्ञाता तथा अनेक पुस्तकों के लेखक थे । हिन्दी साहित्य के इतिहास में इनका महत्त्वपूर्ण स्थान है । तत्कालीन साहित्य जगत में इन्होंने काफी उथल-पुथल पैदा की थी । साहित्य और भाषा, दोनों ही दृष्टियों से ये विचारणीय हैं । आगे चलकर इनकी भाषा गत नीति विवादास्पद हो गई थी, जब उसमें अरबी-फारसी का अतिरेक होने लगा था ।

बाल साहित्य रचना में भी राजा साहब उस युग की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी हैं । रामचन्द्र तिवारी ने इनके साहित्य पर विचार करते हुए लिखा है कि इनकी 'कृतियों में से अधिकांश विद्यार्थियों को दृष्टि में रखकर लिखी गई हैं ।'[2]

इसमें सन्देह नहीं कि इनकी कृतियों में विद्यार्थीपन है । कुछ पुस्तकें तो केवल विद्यार्थियों को दृष्टि में रखकर पाठ्य पुस्तक रचना के ख्याल से निर्मित हुई हैं । कारण, ये शिक्षा विभाग में निरीक्षक पद पर थे और इनके सामने हिन्दी पाठ्य पुस्तकों की समस्या थी । तत्कालीन उर्दू के जोर को देखते हुए इन्होंने भी जन प्रचलित हिन्दी का आश्रय लिया, जिससे साहित्य का भी प्रचार हो और उर्दू की हिमायती सरकार इन्हें संस्कृत निष्ठ भाषा से मुक्त देखकर नाराज न हो ।

राजा साहब के साहित्य में विद्यार्थीपन या स्तर का हलकापन इसलिये भी था कि वह युग खड़ी बोली के निर्माण का युग था । वैसे खड़ी बोली पहले से प्रचलित थी, पर व्यवहार का रास्ता पूर्णरूप से नहीं खुला था । राजा साहब हिन्दी को साहित्य के व्यावहारिक क्षेत्र में ला रहे थे, तभी उनका भी युगीन प्रभाव के कारण उर्दू की ओर झुकाव हो गया ।

गम्भीर साहित्य रचना के लिए भाषा का व्यवस्थित और स्तरीय होना आवश्यक है । अन्यथा भाषा निर्माण की प्रक्रिया में हलका-फुलका साहित्य ही निर्मित हो पाता है जैसा शिवप्रसाद सितारेहिंद का साहित्य है ।

शिक्षा विभाग में इंस्पेक्टर के पद पर होने के कारण तथा बालकों की शिक्षा से सीधा सम्बन्ध होने के कारण राजा साहब बाल साहित्यकारों के क्षेत्र में आ जाते हैं । बालकों के लिये आपने दो प्रकार के ग्रन्थों की रचना की है— एक वे जो विशुद्ध पाठ्य-पुस्तकें हैं और दूसरी वे जो बालकों का मनोरंजन

१. हिन्दी साहित्य कोश : भाग २, पृ० ४५७ । (ज्ञानमण्डल, वाराणसी) ।
२. वही, पृ० ४५८ ।

करती हैं तथा बाल साहित्य के अन्तर्गत आती हैं। पहले प्रकार की पुस्तकों में 'भूगोल हस्तामलक', 'छोटा भूगोल हस्तामलक', 'स्वयं बोध उर्दू', 'वर्णमाला', 'इतिहास तिमिर नाशक' तथा 'हिन्दी का व्याकरण' इत्यादि हैं और दूसरी कोटि की पुस्तकें हैं—'आलसियों का कोड़ा', 'राजा भोज का सपना,' 'बच्चों का इनाम', 'लड़कों की कहानी' तथा 'बीरसिंह का वृत्तांत।'

जीवन निर्माण—साहित्य का यह आदर्शवादी दृष्टिकोण भारतीय साहित्य में प्राचीनकाल से रहा है। आदर्शवादी सिद्धान्तों की स्थापना विश्व बाल साहित्य का लक्ष्य सदा रहा है। राजा साहब इसी लक्ष्य से प्रभावित प्रतीत होते हैं। राजा भोज का सपना नामक कल्पित कहानी में यह बात अच्छी तरह देखी जा सकती है। राजा भोज को अपने दान का अत्यधिक अहंकार है। स्वप्न में सत्य प्रगट होता है और राजा भोज के द्वारा अहंकार वश किए अत्याचारों को प्रगट करता है। वह दान के सम्बन्ध में राजा भोज के अभिमान को भी दूर करता है।

नींद खुलने पर राजा भोज को अपने किये का पश्चात्ताप होता है। वास्तविकता उसके सामने स्पष्ट हो जाती है। वह सही दृष्टि पा जाता है। लेखक इसी दृष्टि को अपनाने का पाठकों को सन्देश देता है—'हे पाठक जनों, क्या तुम भी भोज की तरह ढूंढ़ते हो और भगवान से उस राह के मिलने की प्रार्थना करते हो? भगवान तुम्हें ऐसी बुद्धि दे और अपने राह पर चलावे, यही हमारी अन्तःकरण का आशीर्वाद है। जिन ढूंढ़ा तिन पाइयाँ, गहरे पानी पैठ।'

यहाँ यह भी द्रष्टव्य है कि प्रस्तुत निबन्धात्मक कहानी केवल बालकों को दृष्टि में रखकर नहीं लिखी गई। बालकों के साथ बड़े लोग भी इसके आदर्श को ग्रहण कर सकते हैं जिनके लिए मूलतः इसकी रचना हुई प्रतीत होती है।

भाषा की दृष्टि से भी यह कहानी बालकों के लिए बोधगम्य है। कहानी में जन प्रचलन की ऐसी सरल स्वाभाविक भाषा का व्यवहार हुआ है जो वस्तुतः हिन्दी है, जिसमें अरबी फारसी का परम्परित रूप लेशमात्र भी नहीं है। एक उदाहरण पर्याप्त होगा—

'राजा ने एक बड़ी लम्बी ठंडी साँस ली और अत्यन्त निराश होकर यह बात कही कि इस संसार में ऐसा कोई मनुष्य नहीं है जो कह सके कि मेरा हृदय शुद्ध और मन में कुछ भी पाप नहीं। इस संसार में निष्पाप रहना बड़ा ही कठिन है। जो पुण्य करना चाहते हैं, उनमें भी पाप निकल आता है। इस संसार में पाप से रहित कोई भी नहीं, ईश्वर के सामने पवित्र पुण्यात्मा कोई भी नहीं।'

शिवप्रसाद सितारेहिन्द ने 'गुटका' नाम से साहित्य, की जिस पाठ्य पुस्तक की रचना की थी, और उसमें भाषा को जो संस्कृत मिला ठेठ सरल रूप[१] रखा था, उसी प्रकार की भाषा 'राजा भोज का सपना' में है। सन् १८६० के बाद उनका झुकाव उर्दू की ओर हुआ जो क्रमशः बढ़ता चला गया। पर इसके पूर्व राजा साहब में एक शैली बनाने का प्रयास है। इस प्रयास के अन्तर्गत भाषा का ठेठपन है तथा गद्य में अनुप्रासात्मक शब्द योजना है। हिन्दी में यह प्रवृत्ति कुछ अन्य पुराने साहित्यकारों में भी दिखाई दी थी। बड़ों के लिए साहित्य रचना में यह प्रवृत्ति बाधक बन जाती है, क्योंकि इसके प्रभाव से विचार पक्ष दब जाता है पर बाल साहित्य के लिए यह प्रवृत्ति अनुचित नहीं हैं। कारण, बाल साहित्य ऐसी विधा है जो अपनी आर्थी उपलब्धि के अलावा शब्दों में निहित ध्वनि मूल्यों के कारण भी महत्त्वपूर्ण हो जाती है। 'राजा भोज का सपना' से ही ऐसा एक अन्य उदाहरण है—

'यह सुनकर सारा दरबार पुकार उठा कि 'धन्य महाराज—आपने इस कलिकाल को सतयुग बना दिया, मानो धर्म का उद्धार करने को इस जगत में अवतार लिया। आज आपसे बढ़कर और दूसरा कौन ईश्वर का प्यारा है, हमने तो पहले ही से आपको साक्षात धर्मराज विचारा है।'

अपनी नैतिक शिक्षा के कारण यह कृति बालोपयोगी है।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के माध्यम से आये पादरियों ने भारत में धर्म प्रचार आरम्भ कर दिया था। इस प्रकार के लिए उन्होंने बाईबिल की तथा दूसरी जिन कहानियों का आश्रय लिया, उनमें कुछ बालोपयोगी अवश्य होंगी। पर आज ऐसी कहानियाँ उपलब्ध नहीं हैं। बाद में 'आगरा, मिर्जापुर और चुनार जैसे ईसाई धर्म के प्रचार केन्द्रों की ओर से बालकों के लिए स्कूल खुले और पाठ्य पुस्तकें तैयार कराई गईं।[२] ये पाठ्य पुस्तकें धर्मप्रचार प्रधान भले ही रही हो, पर उनमें बाल साहित्य भी रहा होगा।

'शिक्षा सम्बन्धी पुस्तकों की माँग वास्तव में सन् १८४३ के पहले ही पैदा हो गयी थी। ऐसी पुस्तकों के प्रकाशन के लिये आगरा में सन् १८३३ में ही स्कूल बुक सोसाइटी स्थापित हो चुकी थी, जिसका संचालन पादरियों के द्वारा होता था।'[३]

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ४१७।

२. वही, पृ० ४०३।

३. वही, पृ० ४०३, ४०४।

कुछ शैक्षिक पुस्तकें मिर्जापुर में ईसाइयों द्वारा स्थापित 'आरफेन प्रेस' से भी निकली थीं। 'विशुद्ध हिंदी' की इन पुस्तकों में 'मनोरंजक वृत्तःत' 'जंतु प्रबंध विद्यासागर' तथा 'विद्वान संग्रह'[१] उपयोगी बाल साहित्य की कृतियाँ प्रतीत होती हैं।

जिस प्रकार अंग्रेज मिशनरियों ने हिन्दी बाल साहित्य के निर्माण में योग दिया और आगरा बुक सोसाइटी स्थापित की, वैसे ही कलकत्ते में भी सन् १८१७ में 'कलकत्ता स्कूल बुक सोसाइटी' की स्थापना की थी। इस संस्था ने भी बंगला में तारिणी चरण मित्र कृत 'नीति कथा' ईसप की कहानियाँ एवं ताराचांददत्त कृत 'मनोरंजनेतिहास' जैसी महत्वपूर्ण बालकृतियाँ प्रस्तुत कीं[२]।

हिन्दी में तत्कालीन बाल साहित्य की प्रेरणा के एक स्रोत राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद भी थे, जिन्होंने स्वयं तो पाठ्य-पुस्तकों की रचना की ही, पंडित श्री लाल तथा पंडित वंशीधर आदि से भी पाठ्य-पुस्तकें तैयार कराईं। सन् १८५२ से १८६२ के बीच अनेक शैक्षिक पुस्तकें प्रकाशित हुईं। इनमें आगरा नार्मल स्कूल के अध्यापक पं० वंशीधर ने सन् १८५२ में गुलिस्तां के एक अंश का 'पुष्पवाटिका' नाम से अनुवाद किया। ये कहानियाँ बालकों के उपयोग की हैं। इनके भारतवर्षीय इतिहास का विषय नाम से ही स्पष्ट है और 'जीविका परिपाटी, अर्थशास्त्र की पुस्तक है, पर सन् १८५८ में रचित 'जगत वृत्तांत' बालोपयोगी कृति होगी।

इसी प्रकार पं० बद्रीलाल ने सन् १८६२ में 'हितोपदेश' का अनुवाद किया जिसमें बहुत सी कथाएँ छाँट दी गई थीं। यह मुख्यतः बालोपयोगी कृति है।[३]

समाहार

आधुनिक हिन्दी बाल साहित्य का विकास इसी समय से प्रारम्भ हो जाता है। इस युग का बाल साहित्य धर्म शिक्षा मूलक अधिक है। आगे के बाल साहित्य की वह पृष्ठभूमि है। हिन्दी बाल साहित्य की नींव ही धर्म और शिक्षा मूलक है, जिसमें धर्म से हटकर तो आधुनिक बाल साहित्य काफी आधुनिक जीवन से जुड़ गया है, पर शिक्षामूलक तत्व अभी तक समाप्त नहीं हुआ है।

जिस प्रकार आगे के युग का नेतृत्व भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने किया, बाल

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ० ४०४।
२. बांग्ला शिशु साहित्येर क्रम विकास : आशा गंगोपाध्याय, पृ०२९।
३. हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ० ४१६।

साहित्य की दृष्टि से इस युग का नेतृत्व राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द ने किया।

साथ ही इस युग के बाल साहित्य में ईसाई मिशनरियों का भी योग है।

पर सीधी बाल साहित्य रचना इस युग में विशेष रूप से प्रारम्भ नहीं हुई थी, पाठ्य पुस्तकों के माध्यम से ही हिन्दी बाल साहित्य का विकास हुआ।

भारतेन्दु युग में बाल साहित्य : विश्लेषण और विवेचन

यह पहले ही बताया जा चुका है कि बाल साहित्य का समारम्भ नई परि-स्थितियों के परिणामस्वरूप बाल शिक्षा की पुस्तकों के माध्यम से हो चुका था। विवेच्य युग के बाल साहित्य का क्षितिज और विस्तृत हुआ। अब शैक्षिक पुस्तकों की रचना के साथ-साथ एक स्रोत और प्रगट हुआ---स्वतन्त्र बाल साहित्य रचना का। यही बाल साहित्य रचना की वास्तविक दिशा है।

यद्यपि इस दिशा का बोधक साहित्य अधिक नहीं है, पर इसका अस्तित्व तो सामने आ ही चुका था।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नेतृत्व के कारण ही इस युग का नामकरण भारतेन्दु युग हुआ। भारतेन्दु जी साहित्य में नई या आधुनिक चेतना के उन्नायक सिद्ध हुए। खड़ीबोली को व्यवहारोपयोगी रूप में ढालने से कम महत्वपूर्ण काम नई चेतना के विकास का नहीं है।

इस काल में भारत का परिवेश पूर्णतः बदल चुका था। अंग्रेज १८५७ की भारतीय क्रांति दबा चुके थे। अब उन्होंने अपने शासन का स्वरूप भी बदल दिया था और देश में अधिक दृढ़ता से अपने को स्थापित कर लिया था।

शिक्षा व्यवस्था में भी उनका काफी प्रवेश हो चुका था। देश में अंग्रेजों की शासन पद्धति, जीवन का स्वरूप और शैक्षिक दृष्टिकोण स्पष्ट हो गये थे। जिस प्रकार अँग्रेजों ने अपना उन्नयन किया था, उनके जीवन में जिस प्रकार की स्वच्छंदता थी---भारतेन्दु जी भी अपने देश का ऐसा ही उन्नयन चाहते थे।

पर इसके साथ अँग्रेजों की शासकीय कुटिलनीति भी जुड़ी हुई थी, जिससे भारतेन्दु जी अपरिचित न थे। इस प्रकार नई राष्ट्रचेतना जगाकर एक ओर भारतेन्दु जी देश को नवनिर्माण का संदेश देना चाहते थे और दूसरे अँग्रेजों की कूटनीतियों से भारत को आगाह करना चाहते थे।

भारतेन्दु जी के जीवन का एक छोर पौराणिकता से भी जुड़ा हुआ था। इस सम्बन्ध में भी वे अपने विचार व्यक्त करते जा रहे थे।

तत्कालीन साहित्यकार भारतेन्दु की इन साहित्यगत मान्यताओं से प्रभावित थे। फलस्वरूप भारतेन्दुयुग के जिन साहित्यकारों ने बाल साहित्य रचना में योग दिया, उनमें ये प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं। स्वयं भारतेन्दु ने बड़ों के लिये साहित्य रचना करते हुए बालकों को भी दृष्टि में रखा और साहित्य रचना की। उनकी बड़ों के लिये लिखी गई नाटिका 'अंधेरी नगरी' तो आज बालक ही अधिक पसन्द करते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य नाटकों में भी बीच-बीच में ऐसे स्थल आ जाते हैं जो बालोपयोगी हैं।

अब भारतेन्दु के साथ इस काल के उन साहित्यकारों का विवेचन किया जाता है जिन्होंने बाल साहित्य रचना में प्रमुख रूप से भाग लिया।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र नवीन चेतना के युगपुरुष थे। जीवन की थोड़ी ही सीमा में साहित्य के विविध आयामों का उन्होंने उद्घाटन किया। मौलिक और अनूदित रूप में प्रभूत साहित्य रचना की। भाषा संस्कार और साहित्य के नेतृत्व का कार्य अलग ही है।

अपनी बहु आयामी प्रवृत्तियों में बाल शिक्षा और बालोपयोगी साहित्य रचना की ओर भी भारतेन्दु ने ध्यान दिया। बालकों की शिक्षा के लिये उन्होंने 'चौखम्बा स्कूल' की स्थापना की और बालकों के चारित्रिक विकास के लिये 'सत्य हरिश्चन्द्र नाटक' की रचना की। सत्य हरिश्चन्द्र यद्यपि अर्द्धमौलिक नाटक है और आर्य क्षेमेन्द्र की कृति चण्ड कौशिक' को मुख्यतः आधार बनाकर स्वतन्त्रता के साथ रचा गया[१] है। पर जैसा की आगे चलकर विवेचन किया जायेगा, यह भारतेन्दु की सोद्देश्य बाल साहित्य की सृष्टि है।

भारतेन्दु की साहित्य सर्जना पर विचार करते हुए श्री हरिकृष्ण देवसरे ने प्रतिपादित किया है कि उन्होंने (भारतेन्दु ने) 'सामाजिक चेतना' का एक महत्व-पूर्ण पहलू बालक-बालिकाओं में नवजागरण माना था और इसी उद्देश्य से 'बाला-बोधिनी' पत्रिका का प्रकाशन १ जून १८७४ से प्रारम्भ किया था। यद्यपि यह पत्रिका अधिक समय तक नहीं निकली, तथापि इसने हिन्दी में बाल साहित्य रचना को जन्म दिया। यहीं से विशुद्ध हिन्दी बाल साहित्य का विकास आरम्भ होता है।[२]

---

१. भारतेन्दु ग्रंथावली : पहला खंड : भूमिका, पृ० २८।
२. हिन्दी बाल साहित्य : एक अध्ययन : डॉ० हरिकृष्ण देवसरे, पृ० ११८।

इसी का पुनर्कथन फिर आगे किया गया है ।[१]

श्री देवसरे का यह विचार भ्रामक है । 'बाला-बोधिनी' जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, महिलोपयोगी पत्रिका थी । भारतेन्दु ने इसका प्रकाशन स्त्री शिक्षा के लिये,[२] किया था, बालकों के लिये, या बाल साहित्य के लिये नहीं ।

अन्यत्र भी 'बाला-बोधिनी' को स्त्रियों के उपकारार्थ[३] लिखा गया है ।

वास्तव में यह भ्रामक स्थापना और पहले से प्रारम्भ हो गई थी जब 'बाला-बोधिनी' को 'बाल-बोधनी' मान लिया गया । निरंकारदेव सेवक लिखते हैं—उनका (भारतेन्दु का) ध्यान बाल साहित्य को विकसित करने की ओर था, यह इस बात से सिद्ध है कि सन् १८७४ में 'उन्होंने 'बाल-बोधिनी' नाम से एक पत्रिका निकाली थी ।''[४]

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के बाल साहित्य को दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता है: (१) विशुद्ध बाल साहित्य और (२) अर्द्ध बाल साहित्य । अर्द्ध बाल साहित्य से तात्पर्य उस साहित्य से है जिसकी रचना मूलतः बड़ों के लिये हुई थी, पर जिसमें बालकों के मनोरंजन के भी अधिकांश तत्व आ गये हैं । इन्हीं तत्वों के कारण ये कृतियाँ आज बालकों को ही विशेष रूप से आनन्दित करती हैं ।

विशुद्ध बाल साहित्य अथवा बालकों को दृष्टि में रखकर लिखी गई कृति 'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक है, जिसकी रचना सम्वत् १६३२ में हुई थी । प्रस्तुत नाटक की रचना करने के पूर्व भारतेन्दु जी कई नाटकों की रचना कर चुके थे । पर वे नाटक मुख्यतः शृंगार रस के थे । अतः अपने मित्र बाबू बालेश्वर प्रसाद बी० ए० के आग्रह पर एक ऐसे नाटक की रचना का विचार किया जो बालोपयोगी हो । नाटक के उपक्रम में भारतेन्दु जी ने लिखा है---"मेरे मित्र बाबू बालेश्वर प्रसाद बी० ए० ने मुझसे कहा कि आप कोई ऐसा नाटक लिखें जो

---

१. 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने बाल साहित्य की आवश्यकता समझते हुए' उसकी पूर्ति के लिए बाला-बोधिनी पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया था । इस पत्रिका में बालिकाओं के ज्ञानवर्द्धन तथा मनोरंजन के लिए रचनाएँ प्रकाशित होती थीं । —हिन्दी बाल साहित्य : एक अध्ययन : डॉ० हरिकृष्ण देवसरे, पृ० १२१ ।

२. हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ४३६ ।

३. हिन्दी साहित्य कोश : भाग २, पृ० ३८३ ।

४. बालगीत साहित्य : निरंकारदेव सेवक, पृ० १३८ (किताब महल प्र० लि०)

लड़कों के पढ़ने के योग्य हो, क्योंकि श्रृंगार रस के आपने जो नाटक लिखे हैं, वे बड़ों लोगों के पढ़ने के हैं, लड़कों को उनसे कोई लाभ नहीं। उन्हीं के इच्छानुसार मैंने यह सत्य हरिश्चन्द्र नामक रूपक लिखा है।"[१]

बालकों के मन में सत्य की प्रतिष्ठा ही प्रस्तुत रूपक का उद्देश्य है। बाल साहित्य का बहुत सा अंश मुख्यतः प्राचीन बाल जीवन का दिशा निदेशक है। ऐसे साहित्य की रचना के पीछे यह मनोवृत्ति काम करती है कि बाल्यावस्था के प्रारम्भिक वर्ष निर्माण और संस्कार ग्रहण के वर्ष हैं। उस समय उनके व्यक्तित्व का जिस भूमि पर निर्माण होता है, वह भविष्य में सदा बनी रहती है।

यह धारणा दुधारी तलवार है, क्योंकि ऐसा मान लेने पर रूखे, नीरस और उपदेशवादी साहित्य के निर्माण की सम्भावना बढ़ जाती है। हिन्दी में आज बाल साहित्य के नाम पर एक वर्ग द्वारा ऐसा घिसा-पिटा साहित्य काफी दिया जा रहा है। संसार का प्रारम्भिक बाल साहित्य सुधार और निर्माण वादी है। पर इस स्थापना के सहारे श्रेष्ठ साहित्य की रचना करना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है।

पर भारतेन्दु का यह नाटक सुधार और सत्यपरक होते हुए भी रंग सम्भावनाओं से परिपूर्ण है। उसके अभिनय में गति और स्वाभाविकता है, भाषा इतनी सहज है कि नाटक बाल साहित्य की महत्त्वपूर्ण कृति बन गया है।

राजा हरिश्चन्द्र ने जिस प्रकार कठिनाइयों का सामना करते हुए सत्य का अनुसरण किया, वह प्रत्येक बालक-बालिका के लिये अनुकरण का विषय है। स्वप्न में दान किये हुये राज्य को वस्तुतः उन्होंने दान कर दिया, और दक्षिणा चुकाने के लिये अपने को तथा अपनी पत्नी शैव्या को बेच दिया। एक राजा का इतना बड़ा त्याग---दाता से सहर्ष दीन बनने का यह संकल्प अद्‌भुत है।

किन्तु राजा हरिश्चन्द्र की विपत्तियों का यहीं अंत नहीं हुआ। सत्य प्रतिज्ञ होने के कारण श्मशान पर कर रूप में उन्हें अपनी पत्नी से अपने पुत्र का कफन लेना पड़ा और पत्नी ने अपने आँचल से बनाये हुए कफन का आधा भाग दिया।

यह थी सत्य की प्रतिष्ठा और सत्यप्रिय राजा हरिश्चन्द्र के दृढ़ संकल्प का परिपालन। उनका संकल्प पूरा उतरा----

---

१. भारतेन्दु ग्रंथावली : पहला खंड, पृ० २५१।

चन्द टरे सूरज टरे टरे जगत व्यौहार।
पै दृढ़ श्री हरिचन्द कौ टरे न सत्य विचार।।[1]

राजा हरिश्चन्द्र सत्य पर खरे उतरे और इन्द्र द्वारा ली गई उनके सत्य की परीक्षा का प्रकरण पूरा हुआ। काव्य न्याय (पोएटिक जस्टिस), के आधार पर राजा हरिचन्द्र को पुनः पुत्र, राज्य आदि की प्राप्ति हो गई।

पर लेखक ने सत्य की प्रतिष्ठा धार्मिक दृष्टि से कराई है। फल-स्वरूप नाटक का प्रतिपाद्य जहाँ तहाँ अतिकल्पना और वायवीपन से आक्रांत हो गया है। किन्तु पौराणिक वृत्तों में ऐसा प्रायः होता है और प्रस्तुत नाटक का वृत्त पौराणिक ही है। नाटक का प्रारंभिक अंश इस प्रकार है—

द्वारपाल—महाराज! नारद जी आते हैं।

इन्द्र—आने दो अच्छे अवसर पर आए।

द्वारपाल—जो आज्ञा (जाता है)

इन्द्र—(आप ही आप) नारद जी सारी पृथ्वी पर इधर उधर फिरा करते हैं इनसे सब बातों का पक्का पता लगेगा। हमने माना कि राजा हरिश्चन्द्र को स्वर्ग लेने की इच्छा न हो तथापि उसके धर्म की एक बेर परीक्षा तो लेनी चाहिए।

(नारद जी आते हैं)

इन्द्र—(हाथ जोड़ कर दण्डवत करता है) आइए आइए, धन्य भाग्य आज किधर भूल पड़े।

नारद—हमें और भी कोई काम है, केवल यहाँ से वहाँ और वहाँ से यहाँ—यही हमें है कि और भी कुछ।

इन्द्र—साधु स्वभाव ही से परोपकारी होते हैं। विशेष करके आप ऐसे जो हमारे से दीन ग्रहस्थों को घर बैठे दर्शन देते हैं। क्योंकि जो लोग ग्रहस्थ और कामकाजी हैं वे स्वभाव ही से ग्रहस्थी के बन्धनों से ऐसे जकड़ जाते हैं कि साधु संगम तो उनको सपने में भी दुर्लभ हो जाता है, न वे अपने प्रबन्धों से छुट्टी पावेंगे, न कहीं जायेंगे।[2]

भारतेन्दु की नाट्यकुशलता हिन्दी जगत ने स्वीकार की है, जो उद्धृतांश से स्पष्ट है। फिर भी आज नाटक अपने संक्षिप्त रूप में ही मंचित हो सकता है। नाटक में स्थानिकता का भी संस्पर्श है, जो नाटक को सजीवता प्रदान करता है।

---

१. भारतेन्दु ग्रन्थावली : (सत्य हरिश्चन्द्र नाटक) पहला भाग, पृ० २६२।
२. वही : पहला खण्ड (सत्य हरिश्चन्द्र नाटक), पृ० २५८।

चार अंकों के लघुकाय सन्देशपूर्ण नाटक में करुणा और आशा का संचरण क्रमशः हुआ है। कैशोर अवस्था के बालकों के लिए सत्य हरिश्चन्द्र नाटक हिन्दी बाल नाट्य साहित्य का प्रथम नाटक है और भारतेन्दु प्रथम बाल नाटककार।

भारतेन्दु का दूसरा नाटक है 'अंधेर नगरी' जो व्यंग्य प्रहसन है। इसे प्रारंभ में अर्द्ध बाल साहित्यिक कहा गया है, क्योंकि इसका व्यंग्य गम्भीर स्तर पर बड़ों के लिए है, और अपने सामान्य संदर्भ में बालकों के लिए। दोनों ही श्रेणी के लिए दर्शक एक साथ बैठकर नाटक में आन्दानुभूति कर सकते हैं— ठीक वैसे ही जैसे मारिया क्लारा माशाडोक्त ब्राजीली नाटक 'नीला घोड़ा से'[१]। सं० १९३८ में निर्मित अन्धेर नगरी छोटा सा नाटक है। इसकी रचना अन्यापदेशिक' (ऐलीगोरिकल) शैली में हुई है, जिसका उद्देश्य तत्कालीन शासन की अव्यवस्था और अन्धेर को सामने लाना है। 'अन्धेर नगरी चौपट्ट राजा, टके सेर भाजी, टके सेर खाजा' यही नाटक का मूल प्रतीक है।

छः दृश्यों में निर्मित प्रस्तुत अन्यापदेशिक शैली के नाटक में दृश्य दो, चार, पाँच और छः अत्यन्त बालोपयोगी है। वैसे इस नाटक का आनन्द बड़ों के लिए भी लिए कम नहीं है। दृष्य दो का बाजार का विस्तृत वर्णन पूर्ण सजीवता लिए हुए हैं और बालकों के मन को आकृष्ट कर लेगा। हलवाई, कुँजड़िन आदि के वर्णन के साथ बालकों के विशेष प्रिय दृश्य हैं चना और चूरन बेचनेवाले के। इनकी संघटना लेखक ने स्थानीय जीवन के यथार्थ निरीक्षण से की है। चना बेचने वाले का स्वरूप इस प्रकार उपस्थित हुआ है—

चने बनावैं घासीराम। जिनकी झोली में दूकान।।
चना चुरमुर चुरमुर बोले। बाबू खाने को मुँह खोले।।
चना खावै तौकी मैना। बोलें अच्छा बना चबैना।।
चना खायँ गफूरन मुन्ना। बोलें और नहीं कुछ सुन्ना।।
चना खाते सब बंगाली। जिनकी धोती ढीली ढाली।।
चना खाते मियाँ जुलाहे। दाढ़ी हिलती गाह बगाहे।।
चना हाकिम सब खा जाते। सब पर दूना टिकस लगाते।।
चने जोर गरम—टके सेर।

उपर्युक्त अंश में न केवल चलतू कविता की सहज, रवानगी है, बल्कि चने खाते समय चुरमुर की ध्वनि गफूरन साहब का कुछ न सुनना, बंगालियों का

---

१. **नटरंग (नाट्य त्रैमासिक) : अंक १३, जनवरी-मार्च,७०, पृ० ५।**

ढीली-ढाली धोती पहनना और अफ़सरों की टैक्स लगाने की ज्यादती आदि में हास्य और व्यंग्य का सहज समन्वय है ।

भाषा प्रयोग की दृष्टि से भी नाटक की सरलता बालकों के उपयुक्त है । इसी प्रकार नाटक में चूरन वाले का सुन्दर लटका है—

चूरन अमलबेद का भारी । जिसको खाते कृष्ण मुरारी ।।
मेरा पाचक है पचलोना । जिसको खाता श्याम सलोना ।।
चूरन बना मसालेदार । जिसमें खट्टे की बहार ।।
मेरा चूरन जो कोई खाय । मुझ को छोड़ कहीं नहीं जाय ।।

× × × ×

चूरन साहेब लोग जो खाता । सारा हिन्द हजम कर जाता ।।
चूरन पुलिस वाले खाते । सब कानून हजम कर जाते ।।
ले चूरन का ढेर, बेचा टके सेर ।।

न्याय की अंधता दिखाना ही नाटक का उद्देश्य है । चौपट बादशाह की अंधेर नगरी में न्याय के नाम पर केवल अंधेर है । उदाहरण के लिए कल्लू बनिए की दीवार गिर जाने से एक बकरी दब जाती है । कुछ लोग इसके न्याय के लिए राजा के पास आते हैं । राजा इस प्रकार बातचीत करता है—

राजा—(नौकर से) कल्लू बनिए की दीवार को अभी पकड़ लाओ ।

मंत्री—महाराज, दीवार नहीं लाई जा सकती ।

राजा—अच्छा, उसका भाई, लड़का, दोस्त, आशना जो हो, उसको पकड़ लाओ ।

मंत्री—महाराज, दीवार ईंट चूने की होती है, उसको भाई बेटा नहीं होता ।

राजा—अच्छा, कल्लू बनिए को पकड़ लाओ ।
(नौकर लोग दौड़कर बाहर से बनिए को पकड़ लाते हैं) क्यों बे बनिये । इसकी लरकी नहीं बरकी क्यों दबकर मर गई ?

मंत्री—बरकी नहीं महाराज, बकरी ।

राजा—हाँ-हाँ, बकरी क्यों मर गई—बोल, नहीं अभी फाँसी देता हूँ ।

कल्लू—महाराज ! मेरा कुछ दोष नहीं । कारीगर ने ऐसी दीवार बनाई कि गिर पड़ी ।

राजा—अच्छा' इस कल्लू को छोड़ दो' कारीगर को पकड़ लाओ ।
(कल्लू जाता है । लोग कारीगर को पकड़ लाते हैं) क्यो बे कारीगर ! इसकी बकरी किस तरह मर गई ?

इसी प्रकार का अव्यवस्थित न्याय चलता है, जो बच्चों के हँसने और मानसिक स्तर पर कुछ ग्रहण करने की अच्छी सामग्री है।

उद्धृत अंश में संवादों की मार्मिकता और स्वाभाविकता भी द्रष्टव्य है। छोटे-छोटे संवादों में सहज वातावरण की सर्जना की गई है।

यह है भारतेन्दु के बाल साहित्य का परिदृश्य। भारत में अंग्रेजी शासन की स्थापना के परिणामस्वरूप जो नवीन परिस्थितियाँ उत्पन्न हुई थीं, भारतेन्दु उनसे अपरिचित न थे। सामाजिक सुधार के साथ-साथ उनके मन में बालकों के मनोरंजन और उत्थान की भी दृष्टि रही होगी। तभी उन्होंने सत्य हरिश्चन्द्र जैसे नाटक की रचना की। अंधेर नगरी तथा अन्य फुटकर रचनाओं का आनन्द बालक उनके जीवनकाल में ही लेने लगे होंगे।

यद्यपि भारतेन्दु बाल साहित्य रचना का युग नहीं है, पर बाल साहित्य की जो रचना राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द के जमाने से प्रारम्भ हो गई थी, भारतेन्दु काल में आनुषंगिक होते हुए भी वह और अधिक बढ़ी।

फ्रेडरिक पिंकाट

ये अपने देश इंग्लैंड में रहकर हिन्दी सेवा करने वाले साहित्यकार थे। हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिये इनके मन में सच्ची लगन थी।

तत्कालीन बाल शिक्षा के लिए इन्होंने दो बालोपयोगी पुस्तकें तैयार की थीं—(१) बालदीपक, (२) विक्टोरिया चरित्र। बालदीपक बच्चों की पाठ्य-पुस्तक है। यह चार भागों में थी और बिहार के शिक्षा विभाग में प्रचलित थी। इसमें नीति और उपदेशपरक सामग्री अधिक थी जैसा इस उद्धरण से स्पष्ट होता है—

'हे बालको! तुमको चाहिए कि अपनी पोथी को बहुत सम्हालकर रक्खो। मैली न होने पावे, बिगड़े नहीं, और जब उसे खोलो, चौकसाई से खोलो कि उसका पन्ना अँगुली के तले दबकर फट न जावे।'[१]

दूसरी पुस्तक 'विक्टोरिया चरित्र' है जिसमें बालकों के पढ़ने के लिए महारानी विक्टोरिया का चरित्र दिया गया है।

पिंकाट की तरह पं० केशवराम भट्ट ने भी 'कुछ स्कूली पुस्तकें'[२] प्रस्तुत की थीं। निश्चित है, इन पुस्तकों में बालोपयोगी सामग्री दी गई होगी।

---

१. हिन्दी साहित्य इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : पृ० ४५६।

२. वही पृ० ४५५।

इस प्रकार भारतेन्दु काल का बाल साहित्य मूलतः पाठ्य-पुस्तकों के माध्यम से सामने आया और वह नीति तथा शिक्षा परक अधिक था। अकेले भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ही बालकों के लिए 'सत्य हरिश्चन्द्र नाटक' लिखते हुए मिलते हैं। अंधेर नगरी' अपनी शैली के कारण बालोपयोगी हो जाता है।

इसमें सन्देह नहीं कि आधुनिक बाल साहित्य की परम्परा पाठ्य-पुस्तकों के माध्यम से ही प्रारम्भ होती है और यह परम्परा भारतेन्दु के पूर्व शिवप्रसाद सितारे हिन्द के समय से विकसित होती हुई भारतेन्दु युग में पुष्ट होती है।

पर बाल साहित्य का वास्तविक रूप तो पाठ्येतर साहित्य के द्वारा विकसित होता है। यह परम्परा आगे चलकर आती है।

हिन्दी बाल साहित्य का वास्तविक समारम्भ : द्विवेदी युग

पृष्ठभूमि—भारतेन्दु काल की हिन्दी के लिए दो महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ थीं (१) आधुनिक चेतना का विकास और (२) खड़ी बोली का जन्म। आधुनिक चेतना अंग्रेजी शासन की प्रतिक्रिया थी और खड़ी बोली युग की माँग थी। हिन्दी बाल साहित्य के विकास में इन दोनों उपलब्धियों का योग है।

यह पहले ही बताया गया है कि अंग्रेजी शासन की स्थापना के बाद अपने धर्म प्रचार के लिए भारत में ईसाई मिशनरी आने लगे। इनका उद्देश्य तो भारतवासियों को अपने धर्म में दीक्षित करना था, पर इसकी प्रक्रिया प्रच्छन्न थी। उन्होंने इस कार्य के लिए बाल शिक्षा संस्थाओं की स्थापना की। बालकों को शिक्षा देने के साथ-साथ वे अपने धर्म का प्रभाव भी डालते जाते थे।

बाल शिक्षा के लिए उन्हें बाल पाठ्य-पुस्तकों की आवश्यकता हुई। बाल पाठ्य-पुस्तकों में कुछ प्रचारात्मक सामग्री के अतिरिक्त बालरुचि की कविताएँ, कहानियाँ और लेखादि देना अनिवार्य था। यह सामग्री भारतीय पौराणिक और ऐतिहासिक भी थी तथा योरोप से आयातित भी। योरोपीय कहानियों और वहाँ के वीर पुरुषों की जीवनियों से सम्बन्धित सामग्री अनूदित करके प्रस्तुत की गई।

यह क्रम आगे तक चलता रहा। आज भी ट्राय के युद्ध की कहानी अथवा हेंस क्रिश्चियन एंडरसन की 'दी स्लीपिंग ब्यूटी' का रूपांतर 'सोती सुन्दरी' जैसी कहानियाँ पाठ्य-पुस्तकों में दी जा रही हैं।

खड़ी बोली का प्रारम्भ भारतेन्दु युग के पूर्व से ही हो गया था। भारतेन्दु युग में खड़ी बोली ने स्पष्ट स्वरूप ही नहीं ग्रहण किया बल्कि साहित्यिक व्यवहार की भी भाषा बन गई। गद्य-विधा की अभिव्यक्ति में खड़ी बोली की क्षमता असीमित थी। लोक व्यवहार में भी वह आ ही चुकी थी। खड़ी बोली के इस महत्त्वपूर्ण विकास ने बाल साहित्य की त्वरित संवर्द्धना में काफी योग दिया।

यही कारण है कि द्विवेदी युग में अनेक साहित्यकार बाल साहित्य रचना में लीन दिखाई देते हैं ।

इस प्रकार बाल साहित्य रचना का सूत्रपात पाठ्य-पुस्तकों से हुआ। यह निस्संकोच कहा जा सकता है। किन्तु बाल साहित्य का एक स्रोत लोक साहित्य भी है, जिसकी परम्परा भारत में प्राचीन काल से चली आ रही थी। लोक साहित्य में बालोपयोगी कहानियों का भण्डार है। इस पूर्व संचित बाल साहित्य ने भी द्विवेदी युगीन बाल साहित्य की रचना और विकास में योग दिया।

भारतेन्दु तथा भारतेन्दु युगीन साहित्यकारों ने जिस आधुनिक चेतना का प्रवर्तन किया था, उसका पूर्ण परिपाक द्विवेदी युग में ही दिखाई देता है। द्विवेदी युग में गद्य ने शास्त्रीय रूप ग्रहण किया, गद्य की भाषा पुष्ट, संवर्द्धित और व्याकरण सम्मत हुई। सामान्य जीवन से हटकर शास्त्रीयता ग्रहण करने तथा साहित्य रचना के अत्यधिक निकट आ जाने से बाल साहित्य रचना को सहज प्रेरणा मिल गई। लेखक बाल साहित्य रचना में जुट गए।

बाल साहित्य का समारंभ

भाषा संवर्द्धन के साथ द्विवेदी युग बाल साहित्य रचना के लिए भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि बाल साहित्य का वास्तविक समारंभ इसी युग से होता है। इस युग के साहित्यकारों में साहित्यिक चमत्कार और कल्पना रचना की सूक्ष्मता भले ही न हो, दृष्टिकोण की व्यापकता उनमें थी। एक ओर जहाँ काव्य, कहानियाँ और निबन्ध आदि विधाओं में बड़ों के लिए साहित्य रचना हो रही थी, वहीं बालहित और बालक साहित्य संवर्द्धन की दृष्टि से लगभग वे ही साहित्यकार बालकों के लिए भी कविताएँ, कहानियाँ और लेखों की रचना कर रहे थे।

पुस्तकाकार बाल साहित्य के प्रकाशन के अतिरिक्त बाल पत्रिकाओं का प्रकाशन भी इसी युग से आरम्भ हुआ। 'बालसखा', 'विद्यार्थी', 'कुमार', 'शिशु' और 'खिलौना' आदि बाल पत्रिकाएँ पूर्ण बाल-साहित्यिक दृष्टिकोण लेकर चलीं। साज-सज्जा की तड़क-भड़क और व्यावसायिकता से मुक्त इन पत्रिकाओं में बाल साहित्य के मूल सिद्धान्तों पर विशेष दृष्टि थी। भाषा, शैली और वस्तुगत दृष्टिकोण जैसा साठेक वर्ष पूर्व के बाल साहित्यकारों ने पैदा कर लिया था, वैसा आज सभी बाल साहित्यकारों में नहीं है। आज के और उस युग के बाल साहित्य का तुलनात्मक आकलन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि आज का बाल साहित्य कहानी, उपन्यास और नाट्य विधाओं में तो आगे बढ़ा है, पर काव्य और निबन्ध

विधा ने समानान्तर प्रगति नहीं की। आज तो काव्य और निबन्ध-इन दो विधाओं की हिन्दी बाल पत्रिकाओं में उपेक्षा भी हो रही है, जिसको देखकर निराशा होती है।

आज की बाल पत्रिकाओं की व्यावसायिक होड़ अत्यन्त दुःखद है। इसी का फल है कि वे संतुलित संपादन का मार्ग छोड़कर कहानी प्रधान बनकर रह गई हैं। इसके विपरीत द्विवेदी युग की प्रमुख बाल पत्रिका 'बालसखा' प्रस्तुत भूमिका के साथ प्रकाशित हुई थी।

'उन्नत भाषाओं में बाल साहित्य को एक विशेष स्थान प्राप्त है। यह अटल नियम है कि बालक बालिकाओं को प्रारम्भ में जैसी शिक्षा दी जाती है, आगे चल कर वे वैसे ही होते हैं। जो आज किशोर हैं, वही कल प्रौढ़ हो जायेंगे। और उनके तन के साथ उनके मन की भली बुरी भावनाओं की भी उन्नति या अवनति अवश्य होगी। आजकल बहुत से नवयुवक यदि अपनी मातृभाषा या अपने धर्म से घृणा करते हैं तो वह उन्हीं कुसंस्कारों का परिणाम है जिनसे उन्हें बचाने की उनकी किशोरावस्था में कुछ भी कोशिश नहीं की गई थी। इसमें उन नवयुवकों का उतना दोष नहीं, इसके लिए उत्तरदाता वही हैं जिन्होंने अपने बाल-बच्चों को जानबूझकर अथवा अपनी उदासीनता के कारण विपथगामी हो जाने दिया या बना दिया। एक बार जड़ पकड़ लेने पर कुसंस्कारों से सहज ही छुटकारा नहीं मिल सकता। अतएव इस बात का प्रयत्न करना कि संस्कारों की जड़ ही न जमने पावे, बड़ा भारी परोपकार है, क्योंकि इससे जाति या देश का बहुत कुछ कल्याण होना निश्चित है। इन्हीं बातों का विचार करके उन्नत जातियों के लोग अपने देश के बच्चों का सुधार करना आवश्यक समझते हैं। उनमें सत्य, तेज, ओज, स्फूर्ति, उत्साह, प्रफुल्लता, जातिप्रेम, आत्मगौरव आदि सद्भावों को उन्नत करके तथा कुसंस्कारों की जड़ काटकर उनको अच्छे मार्ग पर चलाना वे अपना प्रधान कर्त्तव्य समझते हैं। यही कारण है कि उनके यहाँ बाल साहित्य को गौरव की दृष्टि से देखा जाता है और उसको सर्वाङ्ग सुन्दर बनाने के लिए पूरा प्रयत्न किया जाता है। नये-नये ढंग की शिक्षा प्रणालियाँ निकाली जाती हैं और बालकों के थोड़े से मानसिक श्रम से ही उनका ज्ञान भण्डार विपुल रूप से भर जाय, इस बात का प्रयत्न किया जाता है।'

'बालसखा' के निकाले जाने का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए कहा गया था—'बालसखा' के निकाले जाने को उद्देश्य है—बालक-बालिकाओं में रुचि आना, उनमें उच्च भावनाओं का भरना और उनमें से दुर्गुणों को निकालकर बाहर करना, उनका जीवन सुखमय बनाना और उनमें हर तरह का सुधार करना। अनुभवी

लोगों का कहना है कि बालक-बालिकाओं के लिए लेख लिखने में जितनी कठिनाई पड़ती है, उतनी बड़ी उम्रवालों के लिए लिखने में नहीं पड़ती, पत्र के प्रत्येक लेख को बालकों के उपर्युक्त बना लेना हँसी खेल नहीं है। जिन्हें इस विषय में सफलता हुई हो वे अवश्य प्रशंसा के पात्र हैं। यहाँ पथ प्रदर्शन के लिए कहाँ और किसे टटोलें। अतः यही सब दिक्कतें 'बालसखा' के लेखकों पर भी पड़ेंगी, परन्तु बालसखा को बालोपयोगी बनाने में अपनी ओर से हम कोई बात उठा न रखेंगे। बाल्यावस्था की ओर ध्यान रखकर भी इसके लिए भाषा और विषय रखे जाने की चेष्टा की जायेगी।'

बाल साहित्य के प्रति द्विवेदीयुग का यह सम्यक और स्वस्थ दृष्टिकोण था। इसके मूल में बालकों को कोरा आदर्शवादी साहित्य देने की अपेक्षा स्वस्थ मनोरंजक, ज्ञानवर्द्धक और व्यक्तित्व विधायक साहित्य देने की परिकल्पना थी। यह उसी नवीन चेतना का परिपाक था, जो भारतेन्दु युग में विकसित हुई थी। भारतेन्दुयुगीन चेतना राष्ट्रप्रेम और सामाजिक उत्थान-इन धाराओं में मुख्य रूप से कार्य कर रही थी। इसका प्रभाव द्विवेदीयुगीन बाल साहित्य पर भी था। उसमें भी बालकों को नवीन साँचे में ढालकर आधुनिक जीवन के अनुरूप बनाने का स्पष्ट प्रयास था।

'बालसखा' की इस संपादकीय नीति की तुलना अंग्रेजी बाल पत्रिका 'सेंट निकोलस' की संपादकीय नीति से की जा सकती है। जिस बात को बालसखा ने समझाकर विस्तार के साथ कहा था, वही बात सेंट निकोलस में सूत्र रूप में कहीं गई थी। सेंट निकोलस का प्रकाशन सन् १८७३ में मेरी मेप्स डाज के संपादन में हुआ था। इसकी संपादकीय नीति थी :

—सभी उम्र के बालकों को विशुद्ध और वास्तविक मनोरंजन प्रदान करना।

—बालकों और बालिकाओं के जीवन से सर्वोत्तम उदाहरण प्रस्तुत करना।

—चित्रकला के सौन्दर्य के प्रति अभिरुचि जाग्रत करना।

कल्पना का समुचित विकास करना।

—देश, परिवार, प्रकृति, सत्य, सौन्दर्य और ईमानदारी के प्रति प्रेम उत्पन्न करना।

—बालक-बालिकाओं को जीवन संग्राम के लिए तैयार करना।

—सतत विकास के साथ उनकी आकांक्षाएँ बढ़ाना।

—तीव्र संसार की गतिविधियों के साथ चलना।

—ऐसी पठनीय सामग्री प्रदान करना जिसे हर माता-पिता बेझिझक अपने बच्चों को दे सकें।[1]

जिस स्वस्थ दृष्टिकोण के साथ योरोप में बाल साहित्य का विकास हुआ, वैसा ही स्वस्थ दृष्टिकोण लेकर बालसखा का प्रकाशन हुआ। 'सेंट निकोलस' में काव्य, कहानी और ऊलजलूल (नॉनसेन्स) साहित्य के माध्यम से बालकों को कल्पना प्रधान साहित्य मिलने लगा, ऐसी साहित्य जो वस्तुतः बालकों को प्रभावित करता है। कोरा उपदेशात्मक साहित्य तो इस पत्रिका के आते ही हवा हो गया। इतना ही नहीं, इस पत्रिका ने नये-नये लेखकों को भी जन्म दिया, जिन्होंने उपयुक्त बाल साहित्य की सर्जना की।[2]

द्विवेदी युग में भी स्वस्थ दृष्टिकोण के साथ बाल साहित्य रचना के सभी आयामों में लेखकों ने प्रयास किये। बाल जीवन के अनुकूल भाव भाषा तथा शैली पर दृष्टि रखते हुए इस युग के साहित्यकारों ने बाल साहित्य की रचना की। इस युग की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि यह भी है कि जिन्होंने बड़ों के लिए साहित्य रचना की थी और बड़ों के साहित्य के क्षेत्र में ख्याति प्राप्त कर चुके थे, उन्होंने बच्चों के लिए भी उसी मनोयोग से साहित्य रचना की। हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त, कामता प्रसाद गुरु, गयाप्रसाद शुक्ल सनेही, रामनरेश त्रिपाठी, प्रेमचन्द आदि सभी साहित्यकार तत्कालीन बाल-पत्रिकाओं के लिए लिखते थे तथा काव्य, नाटक और लेखों आदि की पुस्तकों के जरिए बालकों का भी मनोरंजन और ज्ञानवर्द्धन करते थे।

आज स्थिति इसके विपरीत है। बड़े साहित्यकार आज बाल साहित्य रचना से कतराते हैं 'क्योंकि इसमें उन्हें प्रतिष्ठा की हानि प्रतीत होती है'।[3] वे सम्भवतः यह भूल जाते हैं कि टालस्टाय, रवीन्द्रनाथ टैगोर स्टीवेंसन और रामनरेश त्रिपाठी या दिनकर की प्रतिष्ठा बाल साहित्य रचना से नहीं गिरी, तो उनकी क्यों गिरेगी। वस्तुतः इसके मूल में उनके द्वारा बाल साहित्य के महत्त्व-बोध की अवस्वीकृति प्रतीत होती है। इधर कुछ रुख बदला है, जिसके फलस्वरूप

१. ए क्रिटिकल हिस्ट्री आफ चिल्ड्रेंस लिटरेचर : मीग्स, पृ० २८०।

२. वही : पृ० २८०।

३. दिनमान : १६ नवम्बर, ६९ (बाल साहित्य : चमकदार : अस्तबल, कमजोर घोड़े), पृ० ५९।

यशपाल, अमृतलाल नागर, राजेन्द्र यादव, मन्नू भंडारी, प्रभाकर माचवे, कन्हैया लाल मिश्र प्रभाकर आदि कुछ बड़े साहित्यकार आकृष्ट हुए हैं और बालकों की अनेक कहानियाँ कविताएँ तथा औपन्यासिक कृतियाँ दी हैं। जाकिर हुसेन की, दो कहानी पुस्तकें 'अबूखां की बकरी' तथा 'जिससे ठंडा उसी से गरम' निश्चित रूप से चरचा का विषय रही हैं और श्रेष्ठ कृतियाँ हैं किन्तु अन्य जिन थोड़े से बाल साहित्यकारों ने बाल साहित्य रचना की है, उनका मूल्यांकन अभी शेष ही है और यह निस्सन्देह कहा जा सकता है की सभी बड़ों का साहित्य बालोपयोगी नहीं है। आधुनिक कवि प्रभाकर माचवे की निम्नांकित कविता-पंक्तियाँ किस सीमा तक बालोपयोगी हैं, यह विचारणीय है :

नया खिलौना मनपसन्द
हँसता जैसे बसन्त
लाल गुलाबी और केशरी
फुलों की देखी शोभाश्री
सरदी का है अंत
शुरू हुआ है नये गीत का नया छन्द
शुरू हुआ है नये गीत का नया बन्द
नये-नये सुर छन्द
नव ऋतु, नया आनन्द।[1]

प्रस्तुत कविता बाल साहित्य रचना की भ्रामक धारणा पर आधारित है। बच्चों को गम्भीर भाव देना अनुचित नहीं पर शैली तथा छन्द का ध्यान अपेक्षित है। यहाँ इसका पूर्ण अभाव है।

दूसरी ओर बाल साहित्य रचना का वास्तविक युग द्विवेदी युग है जिसमें प्रयोगशीलता भी है तो बच्चों के स्तर पर ही। हरिऔध ने बालकाव्य के क्षेत्र में अनेक सराहनीय प्रयोग किए हैं जैसे—

बिखरे मोती न्यारे हैं,
या चमकीले तारे हैं
सुधरी नीली चादर पर
सुन्दर फूल पसारे हैं
× ×

१. पत्ते झरते हैं, प्रभाकर माचवे : नंदन : मार्च, १९७० ।

सरग बाग के पौधों
दमक रहे फल सारे हैं
या है दहकी आग कहीं
फैल रहे अंगारे हैं
दिये देवतों के घर के
जगते जोत सहारे हैं
या आकाश विमानों पर
बैठे देव दुलारे हैं। [1]

प्रस्तुत कविता के विश्लेषण से स्पष्ट हो जाता है कि इसका न केवल विषय (तारे) ही बालपयोगी है, बल्कि भाषा और छन्द निर्वाह में भी सादगी के साथ सहज अलंकृत व्यंजना है। तारों के विषय में कवि की सभी उत्प्रेक्षाएँ सुन्दर और बालकों के रसानुभूति परिवेश के अन्तर्गत हैं।

हरिऔध ने बालकों को प्रिय लगने वाले ऐसे ही अनेक विषय चन्दा, चिड़ियाँ, तितली आदि पर कविताएँ लिखीं। तारे और चाँद हरिऔध को इतने प्रिय थे कि इन दोनों विषयों पर उन्होंने अनेक कविताएँ लिखीं। चमकीले तारे की अनूठी व्यंजना है—

कभी टूट ये पड़ते हैं
फूलों जैसे झड़ते हैं
चिनगी सी छिटकाते हैं
छोड़ फुलझड़ी जाते हैं।

हरिऔध की ही तरह द्विवेदी युग के अन्य कवि मैथिलीशरण गुप्त का कृतित्व बाल साहित्य के क्षेत्र में सराहनीय है। गुप्त जी मुख्यतः कवि थे और बड़ों के लिए प्रभूत काव्य साहित्य की रचना की। पर युग की प्रेरणा से उन्होंने बालकाव्य भी साधा और कुछ महत्त्वपूर्ण कविताएँ बालकों के मनोरंजनार्थ लिखीं। यह पहले ही कहा जा चुका है कि द्विवेदी युग का प्रत्येक बाल साहित्य-कार बाल साहित्य रचना गम्भीर दृष्टि के साथ करता था। बच्चों का साहित्य बड़ों के साहित्य से पृथक् भूमि पर निर्मित होता है। द्विवेदी युग के कवि बाल साहित्य रचना के समय उक्त भूमि पर सहज ही आ जाते थे। गुप्त जी की बाल मनोरंजनार्थ लिखी गई सरकस विषयक निम्नांकित कविता इसका उदाहरण है:

1. तारे : बाल विभग : हरिऔध, पृ० ४।

होकर कौतूहल के बस में । गया एक दिन मैं सरकस में ।
भय विस्मय के खेल अनोखे । देखे बहु व्यायाम अनोखे ।।
एक बड़ा सा बन्दर आया । उसने झटपट लैम्प जलाया ।।
डट कुर्सी पर पुस्तक खोली । आ तब तक मैना यों बोली ।।
हाजिर है हुजूर का घोड़ा । चौंक उठाया उसने कोड़ा ।।
× × ×
एक मनुष्य अन्त में आया । पकड़े हुए सिंह को लाया ।।
मनुज सिंह की देख लड़ाई । की मैंने इस भाँति बड़ाई ।।
किसे साहसी जन डरता है । नरनाहर को वश करता है ।।
मेरा एक मित्र तब बोला । भाई तू भी है बस भोला ।।
यह सिंही का जना हुआ है । किन्तु स्यार यह बना हुआ है ।।
यह पिंजड़े में बन्द रहा है । नहीं कभी स्वच्छन्द रहा है ।।
छोटे से यह पकड़ा आया । मार-मार कर गया सिखाया ।।
अपने को भी भूल गया है । आती इस पर मुझे दया है ।।

इसी प्रकार प्रेमचन्द की 'कुत्ते की कहानी' तथा अन्य बालोपयोगी कहानियाँ और जीवनियाँ आज भी बच्चों को आकर्षित करती हैं। रामनरेश त्रिपाठी ने तो गद्य पद्य दोनों क्षेत्रों में युगविधायक कार्य किया है । बाल साहित्य के प्रति उनकी दृष्टि बड़ी पैनी और सूक्ष्म थी । लोक कथाओं के संग्रह से लेकर अनेक मौलिक कविताओं और नाटकों के द्वारा उन्होंने बालकों का चरित्र निर्माण, ज्ञानवर्द्धन और मनोरंजन किया है । काव्य के क्षेत्र में उन्होंने अनेक प्रकार के प्रयोग किये । उनकी एक कविता है :

पानी बरसे छम छम छम
बिजली चमके चम चम चम
ढोलक बाजे धम धम धम
आओ-दौड़ें धम-धम-धम
आगे पीछे
सीधे तिरछे
मिलकर दौड़ो
साँस न तोड़ो
हिम्मत रख हर दम दम दम
पानी बरसे छम छम छम ।[1]

---

1. बानर संगीत : रामनरेश त्रिपाठी ।

त्रिपाठी जी में बच्चों के स्वभाव को पहचानने की अद्भुत क्षमता थी तभी वे बालकों की आवश्यकताओं के अनुरूप इतना अच्छा साहित्य प्रस्तुत कर सके।

बाल साहित्य के क्षेत्र में द्विवेदी युग की उपलब्धियाँ बहुआयामी हैं। संक्षेप में वस्तु तत्त्व और भाषा तथा शैली का सौन्दर्य द्विवेदी युग के बाल साहित्य में है। इस युग में साहित्यकार भी अनेक हुए। द्विवेदी युग में बाल साहित्य का समारंभ ही नहीं हुआ, पूर्ण गरिमा के साथ इस युग में बाल साहित्य का समुचित विकास भी हुआ। बाल जीवन को प्रभावित करने वाले जितने भाव और विचार की दिशाएँ हो सकती हैं, उनका सम्यक रूप द्विवेदी युग के बाल साहित्य में है।

●

स्वातन्त्र्यपूर्व बाल साहित्य : विश्लेषण और विवेचन

पृष्ठभूमि—साहित्य की आधुनिक चेतना का विकास भारतेन्दु युग में ही हो गया था। द्विवेदी युग में यह चेतना पूरी तरह से विकसित हो गई। राजनीतिक, सामाजिक और साहित्यिक तीनों प्रकार की क्रांतियाँ इस युग में हुईं। इसी युग में बाल साहित्य का वास्तविक समारंभ हुआ। बाल साहित्य बाल जीवन की स्वतन्त्र स्वीकृति का परिणाम है। अब पौराणिक, धार्मिक और सामंती जीवन की राजारानी विषयक कहानियाँ तथा लोक कथाएँ नई चेतना के बालकों के लिए अपर्याप्त सिद्ध होने लगीं। युवापूर्व मानव की तीन अवस्थाएँ हैं–(१) शिशु, (२) बाल और (३) किशोर। तीनों अवस्थाओं की विशिष्ट मानसिक स्थिति और बोध स्तर होता है। बाल साहित्य का निर्माण इन तीनों अवस्थाओं के लिए किया गया।

द्विवेदी युग का बाल साहित्य-विस्तार एक क्रम में स्वतन्त्रता प्राप्ति तक चलता है। यहाँ तक सामाजिक और साहित्यिक दोनों क्षेत्रों में स्वातन्त्र्योत्तरकाल से भिन्न प्रकार की गतिशीलता रहती है। हिन्दी बाल साहित्य सर्जना में भी इस गतिशीलता के दर्शन होते हैं। द्विवेदी युग के मध्य में ही बाल साहित्य का स्वरूप और मान्यताएँ स्पष्ट हो गई थीं, जिनके आधार पर आगे की बाल साहित्य रचना हुई।

बाल साहित्य-रचना में बाल शिक्षा के विकास का महत्त्वपूर्ण योग रहा है। बाल-शिक्षा के लिए पाठ्य-पुस्तकों की रचना करते समय बालकों का स्वभाव बोधस्तर और उनकी भावनाओं तथा आकांक्षाओं को समझा गया। इससे बाल साहित्य की विशिष्टता सामने आई। इस प्रकार पाठ्य-पुस्तकों ने आधुनिक बाल साहित्य को जन्म दिया।

बालक संसार का सबसे अधिक जिज्ञासु प्राणी होता है। उसका मस्तिष्क प्रारम्भ में कोरे कागज की भाँति होता है, जिसको वह अपनी सीमा में ज्ञान और अनुभवों से भरता है। जिज्ञासु बालक का पाठ्य-पुस्तकों से पूरा पड़ता न देखकर

उनके अनुकूल अलग साहित्यिक पुस्तकें निर्मित हुईं। प्रारम्भ में बाल साहित्य पाठ्य-पुस्तकों के अन्तर्गत ही था, पर इस परिस्थिति ने बाल साहित्य का स्वतन्त्र अस्तित्व स्थापित कर दिया। अब पाठ्य-पुस्तकों की रचना स्वतन्त्र रूप से लिखे गए बाल साहित्य के आधार पर होने लगी।

साहित्य की सभी विधाओं के माध्यम से जिज्ञासा को शान्त करने वाली और मनोरंजनपूर्ण सामग्री बालक को प्रदान की गई—कहानी, निबंध, नाटक, काव्य चारों विधाओं का सम्यक विकास हुआ। हिन्दी बाल साहित्य में महत्त्वपूर्ण उपन्यास आज भी आठ दस से अधिक नहीं हैं जिनमें एक अच्छा उपन्यास धर्मवीर भारती कृत 'बालक प्रेम और परियाँ' बालसखा में उसी समय (सन् १९२६) क्रमशः प्रकाशित हो गया था। मौलिक की अपेक्षा अनूदित (पूर्ण या संक्षिप्त) अथवा भारतीय परिवेश में रूपान्तरित उपन्यास ही आज महत्त्व पाए हुए हैं।

स्वातन्त्र्य पूर्वकाल में बाल साहित्य का विकास बड़ी तीव्रता से हुआ। साहित्यकारों ने कथा साहित्य, काव्य, विज्ञान, धर्म, पुराण, इतिहास इत्यादि विषयों से सम्बन्धित कृतियाँ प्रस्तुत कीं। जैसे एक खाली सागर को भरने में छोटे बड़े, प्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित सभी साहित्यकार जुट गए। प्रौढ़ साहित्य में प्रतिष्ठा पानेवाले साहित्यकारों ने बालकों के लिए भी उसी मनोयोग से लिखा, जिस मनोयोग से प्रौढ़ साहित्य की रचना की। हरिऔध, प्रेमचन्द, पंत, रामकुमार वर्मा और रामनरेश त्रिपाठी जैसे साहित्यकारों का कृतित्व बाल साहित्य में भी महत्त्वपूर्ण है। इनमें रामनरेश त्रिपाठी ने तो बाल साहित्य में युग विधायक कार्य किया है।

वास्तव में त्रिपाठी जी स्वातन्त्र्य पूर्वकाल के बाल साहित्य के सूर्य हैं। उन्होंने श्रेष्ठ बाल काव्य रचना के साथ-साथ कहानियाँ भी लिखीं, नाटक भी रचे और बाल पत्रिका 'वानर' का प्रकाशन भी किया। बालकों के प्रति उनके हृदय में अटूट अनुराग था और बाल पाठकों की साहित्यिक भूख को तृप्त करने की तीव्र लालसा थी।

बालकों के लिए उन्होंने गद्य-पद्य दोनों ही क्षेत्रों में प्रयोग किए।

हरिऔध ने भी बालकाव्य में विविध प्रयोग करके दिखला दिया कि वे अनेक शैलियों की रचना में सक्षम हैं। उस युग के साहित्यकारों के लिए बाल साहित्य रचना एक मिशन था, जिसको उन्होंने उत्तरदायित्व के साथ पूरा किया।

यद्यपि आज की भाँति एक पृथक लेखक वर्ग उस समय तैयार नहीं हुआ था, जो केवल बाल साहित्य रचना करता हो, फिर भी विद्याभूषण विभु, स्वर्ण

सहोदर, श्रीनाथ सिंह, जहूरबख्श और सोहन लाल द्विवेदी ने प्रमुख रूप से बालकों के लिए लिखा और इस क्षेत्र में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की। बाल साहित्य रचना की दृष्टि से इस युग का लक्ष्य अत्यन्त व्यापक था। भले ही नाटक और कथा साहित्य की शैलियों का आज जैसा विकास उस समय नहीं हुआ था पर व्यापक लक्ष्य के आधार पर स्वातन्त्र्यपूर्वकाल को बाल साहित्य का स्वर्णकाल कहा जा सकता है।

उस युग के साहित्यकारों ने सभी प्रकार से बाल साहित्य के भण्डार को भरने की चेष्टा की। बालकों के स्वतन्त्र व्यक्तित्व की स्वीकृति उस युग का व्यापक बाल साहित्य सिद्ध कर देता है। जिस युग में बच्चों के लिए शिशु, कुमार, बाल सखा, विद्यार्थी, खिलौना, बानर, बमबम आदि चालीस से भी अधिक बाल पत्रिकाएँ हों, पच्चीसों हस्तलिखित बाल पत्रिकाएँ हों और मूर्धन्य साहित्यकारों ने साहित्य रचना में योग दिया हो—पुस्तकों के रूप में भी विपुल साहित्य प्रकाशित हुआ हो, वह समय बच्चों के लिए सर्वोत्तम होगा।

और बड़ों के साथ बच्चों की रचनाओं के संग्रह प्रकाशित करने का आग्रह भी इसी युग में दिखाई देता है। ऐसा ही संग्रह शिवाजी बुक डिपो लखनऊ ने हरिदयाल चतुर्वेदी नामक चौदह वर्षीय बालक की कविताओं का 'जादूगर' नाम से प्रकाशित किया था। प्रकाशक ने इस संग्रह की बाबत लिखा था--'हमें प्रसन्नता होगी यदि अन्य बालक और बालिकाएँ अपनी बालोपयोगी रचनाएँ हमारे पास पुस्तकाकार छपने के लिए भेजें। हम बालकों को उत्साहित करना चाहते हैं, क्योंकि हम जानते हैं कि वे ही भावी राष्ट्र के कर्णधार हैं, उन्हें अपने पथ का निर्माण करने का अवसर मिलना ही चाहिए।'

इस कविता संग्रह के विषय थे जादूगर, सपेरा, बुलबुल, कोयल, चंदा, वर्षा आदि। यह संग्रह न केवल बालकों को रचना करने का प्रोत्साहन देने की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है बल्कि यह भी बोध कराता है कि किन-किन विषयों पर बालकों के लिए काव्य रचना होनी चाहिए। बालक अपने परिवेश की वस्तुओं पर यथार्थ दृष्टि से लिखी गई कविताएँ पढ़ना चाहते हैं, यह इस संग्रह से स्पष्ट हो जाता है।

इतने व्यापक स्तर पर बाल साहित्य का प्रकाशन उस युग की एक महत्त्वपूर्ण घटना है।

बाल साहित्य के आधारभूत सिद्धान्तों की खोज

बाल साहित्य रचना के साथ-साथ उसके सिद्धान्तों का स्पष्टीकरण भी आवश्यक होता है। बिना सैद्धान्तिक आधार के रचना का उपयोग संदिग्ध हो जाता है। इसी उद्देश्य से स्वातन्त्र्यपूर्व युग में बाल साहित्य विवेचन पर बल

दिया गया। लेखकों को इस विषय पर लिखने की प्रेरणा देने के लिए पुरस्कार भी दिए गए। अंग्रेजी बाल साहित्य पहले से ही समृद्ध रहा है। अतः उससे तुलना करते हुए एक सौ रुपये पुरस्कार के साथ एक निबन्ध लिखने का आग्रह कानपुर के अखिल भारतीय शिक्षा सम्मेलन की ओर से किया गया—'हिन्दी बाल साहित्य का आलोचनात्मक और तुलनात्मक सिंहावलोकन तथा उसकी भावी समृद्धि के सुझाव' पर उत्तम निबन्ध लिखनेवाले को कानपुर के श्री मोहनलाल जैन सौ रुपये पुरस्कार देंगे। निबन्ध लगभग चार हजार शब्दों का हो। उसमें हिन्दी बाल-साहित्य की तुलना अंग्रेजी बाल साहित्य से की जाय। बालकों की तीन मुख्य अवस्थाओं (शैशव, बाल्य और किशोर) के अनुकूल साहित्य पर पूर्ण और विशद विवेचन हो। निबन्ध हिन्दी में हो तो उसका अंग्रेजी भाषांतर भी साथ रहे जिससे अन्य भाषाओं के बाल साहित्य पर आमन्त्रित निबन्धों का तुलनात्मक अध्ययन हो सके। निबन्ध १५ अक्टूबर सन् १९४५ तक श्रीकृष्ण विनायक फड़के, मन्त्री, शैशव तथा गृहशिक्षा विभाग, अखिल भारतीय शिक्षा सम्मेलन, श्रद्धानन्द पार्क कानपुर के पते पर भेजे जावें।'[१]

उस समय के प्रमुख बाल साहित्यकार जहूरबख्श ने 'सुधा' मासिक के दो अंकों (नवम्बर, दिसम्बर, १९२८) में बाल साहित्य का ऐतिहासिक आलोकन और विवेचना करते हुए 'बाल साहित्य का निर्माण' शीर्षक निबन्ध प्रकाशित कराया। जहूरबख्श ने ऐतिहासिक विषयों पर अनेक मनोरंजक बाल कहानियाँ लिखी थीं। साथ ही कविताओं और निबन्धों से भी बाल साहित्य की व्यापक सेवा की थी। उनका विवेचना मूलक निबन्ध भी इसीलिए महत्त्वपूर्ण बन पड़ा है। संपूर्ण बाल-साहित्य को शिशु साहित्य, बाल साहित्य और कन्यासाहित्य में वर्गीकृत करते हुए उन्होंने साहित्येतर विषय भूगोल आदि को इस प्रकार लेने को कहा है कि उनसे बालकों में संवेदना जागृत हो सके। वे लिखते हैं, 'भूगोल में यह बतलाने से क्या लाभ की गंगा नदी कहाँ से बह निकलती है, कहाँ गिरी है और उसके तट पर कौन-कौन नगर बसे हुए हैं। बल्कि यह बतलाना चाहिए कि जिस स्थान से गंगा नदी निकली है, वह कहाँ है, कैसा है, गंगा का इतना महत्त्व क्यों है, उसके पानी से लोगों को क्या लाभ होता है। भारत पर इसका क्या प्रभाव पड़ता है, इसके तटवासी लोगों को इससे क्या लाभ-हानि है आदि आदि।'[२]

---

१. बालसखा : (संपादक का पृष्ठ) अक्टूबर, १९४५।

२. सुधा (बाल साहित्य का निर्माण) नवम्बर, दिसम्बर, १९२८।

यद्यपि इस युग में बाल साहित्य समीक्षा पर किसी स्वतन्त्र ग्रंथ की विशेष रचना नहीं हुई, पर समीक्षात्मक दृष्टि साहित्यकारों में थी जिसकी अभिव्यक्ति निबन्धों या बाल पत्रिकाओं के संपादकीय लेखों में हुआ करती थी। रामनरेश त्रिपाठी, सुरेश सिंह, आनन्दकुमार, रामजी लाल शर्मा और श्रीनाथ सिंह जैसे प्रबुद्ध संपादक अपने संपादकीय के जरिये बाल साहित्य रचना का मार्ग सुझाया करते थे। जनवरी १९४० के 'कुमार' बाल मासिक के संपादकीय में लिखा गया था।

'कुमार का दृष्टिकोण प्रारम्भ से ही प्रगतिशील रहा है। बीसवीं शदी सब तरह से संसार के लिए क्रांतिकारी और युगान्तकारी प्रमाणित होने जा रही है। हमारे युग में जहाँ एक ओर मानव सभ्यता के लिए हितकर विचार धाराओं का प्रादुर्भाव हो रहा है, वहाँ दूसरी ओर अनेक प्रतिक्रियात्मक और भ्रम में डालने वाले सिद्धान्तों का भी प्रचार बढ़ रहा है। हमारा सदैव से यह दृष्टिकोण रहा है कि हम अपने बालकों को इन वाद-विवादों के चक्कर में न डालकर उनके सामने केवल वैज्ञानिक सामग्री प्रस्तुत करें जिससे उन्हें मानव जीवन और संसार के प्रति अपने दृष्टिकोण को वैज्ञानिक बनाने में सहायता मिले। साथ ही अपने विद्यार्थियों और नवयुवकों का ज्ञान वर्द्धन करने के लिए हम उनमें पर्याप्त मात्रा में इतिहास, भूगोल, स्वास्थ्य, भ्रमण वृत्तान्त आदि विषयों का समावेश रखते हैं और बालकों के मनोरंजन के लिए तथा उनमें साहित्यिक और सांस्कृतिक अभिरुचि पैदा करने के लिए 'कुमार' में प्रतिमास विद्वान् लेखकों के मौलिक साहित्यिक निबन्ध आलोचनाएँ, जीवनियाँ, कविताएँ, एकांकी नाटक, कहानियाँ और हास्य रस के लेखों तथा चित्रों एवं कार्टूनों का भी मनोग्राही संकलन और संचयन रहता है।'[1]

प्रस्तुत संपादकीय में बाल साहित्य को वर्तमान युग के अनुकूल वैज्ञानिक दृष्टि से देने का स्पष्ट आग्रह है। बालक के व्यक्तित्व को आधुनिक साँचे में ढालने और संकीर्णताओं से बचाने; उसका मनोरंजन और ज्ञानवर्द्धन करने तथा साहित्य के द्वारा बालक के जीवन में आनन्द का स्रोत बहाने का पूरा प्रयास दिखाई देता है।

संपादक ने इस जिम्मेदारी को अच्छी तरह पूरा भी किया और 'कुमार' को सभी प्रकार से अपने समय की श्रेष्ठतम पत्रिका बनाया। सुमित्रानन्दन पन्त की

---

१. 'कुमार' : संपादकीय : जनवरी, १९४०।

कविता 'कलरव'[1] कुमार में ही प्रकाशित हुई थी। उस युग के प्रायः सभी बड़े साहित्यकारों ने जो बड़ों के लिए लिखते थे, बालकों की दृष्टि से 'कुमार' में लिखा पर सोहन लाल द्विवेदी, स्वर्ण सहोदर, शंभुदयाल सक्सेना, कुमार हृदय, आदि की कविताएँ इस पत्रिका में विशेष रूप से प्रकाशित हुईं।

टैगोर की अनेक कविताओं के अनुवाद भी इस पत्रिका ने दिये थे।

'कुमार' की ही भाँति 'बानर' के प्रथम अंक (जुलाई १९३१) के संपादकीय में प्रकाश्य बाल साहित्य की चर्चा की गई थी और छोटे बच्चों के लिए विनोदपूर्ण साहित्य देने की मंशा से इसे प्रारम्भ किया गया था। वास्तव में बानर अपने नाम के अनुरूप ही चंचल और सँयत पत्रिका थी। स्वातन्त्र्य पूर्व बाल साहित्य के दृष्टिकोण को समझने के लिए यह पत्रिका पूरी सामग्री प्रस्तुत करती है। इसमें भी रामनरेश त्रिपाठी के अतिरिक्त उस युग के सभी प्रतिनिधि प्रौढ़ एवं बाल साहित्य निर्माताओं ने लिखा। पन्त की प्रसिद्ध कविता 'घन्टा'[2] इसी में प्रकाशित हुई थी।

---

१. कलरव का कुछ अंश इस प्रकार है :

कलरव किसको नहीं सुहाता
कौन नहीं इसको अपनाता
यह शैशव का सरल हास है
सहसा उर से है आ जाता
कलरव किसको नहीं सुहाता
कौन नहीं इसको अपनाता
यह ऊषा का नवविकास है
जो रज को है रज बनाता
कलरव किसको नहीं सुहाता
कौन नहीं इसको अपनाता।

'कुमार' : अगस्त १९३२।

२. अता बानर : जनवरी १९३२

पन्त की घंटा कविता अत्यन्त सरस बालोपयोगी रचना है। पर आज उसे एक महान छायावादी कवि की छायावादी कविता मान लिया गया है और बड़ों की कविता के रूप में रहस्यवाद के साथ उसका अध्ययन विश्लेषण किया जाता है। यह विचित्र बात है कि बच्चों की एक कविता गम्भीर रहस्यवादी कविता बन गई। उक्त कविता इस प्रकार है :

बानर का दृष्टिकोण वैज्ञानिक और मनोविनोद परक तो प्रारम्भ से ही था, पर जब यह आनन्द कुमार के हाथों में आया तो उन्होंने बाल साहित्य के सिद्धान्तों के रूप में क्रांति को स्थान दिया। उनका सम्पादकीय उस युग की परिस्थितियों में एक आश्चर्य है और बाल साहित्य को सिद्धान्ततः नई क्रांतिकारी दिशा देने वाला है। अपने सम्पादकीय में उन्होंने लिखा था—'हमारे पास ७० फीसदी कविताएँ और लेख ऐसे आते हैं जिनमें बस ईश्वर के आगे एक गुलाम की तरह हाथ जोड़कर प्रार्थना की जाती है। हम इसको पसन्द नहीं करते।'

× × × ×

मैं ईश्वर का विरोध करने को नहीं कहता। पर यह जरूर कहता हूँ कि जो कुछ करना चाहिए अपने भरोसे पर करना चाहिए, ईश्वर या और किसी के भरोसे पर नहीं। यदि कोई कर्ममार्ग पर अटल रहता है तो कोई जरूरत नहीं की ईश्वर के आगे वह एक अपराधी या गुलाम की तरह हाथ जोड़कर खड़ा रहे।

× × × ×

अब वह जमाना बीत गया जब लोग मौज से घर में बैठकर तरह-तरह की झूठी कल्पनाएँ किया करते थे। अब समाज और देश में क्रांति करने की आवश्यकता है। इसलिए प्रत्येक काम समय देखकर करना चाहिए।[१]

उपर्युक्त सम्पादकीय से सम्पादक की जीवंतता और बालजीवन के द्वारा क्रांति करने का भाव प्रकट होता है। इस क्रांति के लिए समर्पित होने वाले बाल साहित्य को ही वे श्रेष्ठ मानते थे। शिक्षा के क्षेत्र में साहित्य का बहुत बड़ा स्थान है। ऐसे साहित्य से निश्चित रूप से बालकों का दृष्टिकोण बदलता और समाज की नई रचना होती। पर आनन्द कुमार बानर के सम्पादक अधिक समय तक नहीं रहे।

उस आसमान की चुप्पी पर, घंटा है एक टंगा सुन्दर
जो घड़ी-घड़ी मन के भीतर कुछ कहता रहता है बजकर
परियों के बच्चों से सुन्दर कानों के भीतर उसके स्वर
घोंसला बनाते उतर-उतर फैला कोमल ध्वनियों के पर
भरते वे मन में मधुर रोर जागो रे जागो कामचोर
डूबे प्रकाश में दिशा छोर, अब हुआ भोर अब हुआ भोर
आई सोने की नई प्रात. कुछ नया काम हो नई बात
तुम रहो स्वच्छ मन स्वच्छगात, निद्रा छोड़ो रे गई रात।

१. बानर : सितम्बर, अक्टूबर, १९३३।

आज की बाल पत्रिकाएँ कहानी प्रधान अधिक हो गई हैं। स्वातन्त्र्यपूर्व पत्रिकाओं (और स्वतन्त्रता के कुछ समय बाद की भी) में कहानी, कविताएँ निबंध, नाटक, चुटकुले, व्यंग्य चित्र आदि कई स्तम्भों में सामग्री प्रस्तुत की जाती थी। इससे वे अधिक उपयोगी बन गई थीं। पर आज तो बाल पत्रिकाओं में कभी-कभी तो कविताओं को बिलकुल ही छोड़ दिया जाता है और सम्पूर्ण अंक कहानी विशेषांक के रूप में निकाला जाता है। हुआ तो दो एक निबंध भी दे दिए।[१] विद्यार्थी में आनन्दीप्रसाद मिश्र ने इस विषय पर विचार करते हुए लिखा है—

'भारतवर्ष में आमतौर पर यह ख्याल किया जाता है कि छोटे बच्चों के लिए कहानियों से बढ़कर अधिक दिलचस्प चीज और दूसरी नहीं है। परन्तु विद्वानों की सम्मति इसके विरुद्ध है। वे कहते हैं कि अगर बच्चों को कहानियाँ पढ़ने और सुनने का आदि बना दिया गया तो वे इसी शौक में पड़ जाएँगे और दूसरी लाभप्रद वस्तुओं की ओर ध्यान भी न देंगे। अनुभवी विद्वानों ने मालूम किया है कि कहानियों से पहले उनमें आविष्कार की रुचि उत्पन्न होती है और बालकों का जीवन ही इतना सुन्दर होता है कि उसे औरों के जीवन अर्थात कहानियों पर ध्यान देने का अवकाश ही नहीं मिलता।'[२]

आज की कहानी प्रधान पत्रिकाएँ बालपाठकों की रुचि को एकांगी बना रही हैं। उनमें साहित्य की सभी विधाओं का समावेश नहीं है। फल यह है कि बालपाठक न आविष्कारी मनोवृत्ति को जगाने वाला साहित्य पाता है और न अपना ज्ञान बढ़ाने में समर्थ हो पाता है।

उपर्युक्त निबंधों और सम्पादकीय लेखों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उस युग के लेखकों और सम्पादकों ने बाल साहित्य के सही सिद्धांतों की खोज की थी और उन्हीं के अनुसार साहित्य का लेखन और प्रकाशन भी हुआ था। आज उस सैद्धान्तिक आधार को भुला देने के कारण ही साहित्य एकांगी हो गया है।

प्रयोगशीलता

स्वातन्त्र्यपूर्व बाल साहित्य में एक हद तक प्रयोगों को भी स्थान दिया गया।

---

१. बाल भारती का अक्टूबर ७१ और नन्दन का नवम्बर ७१ अंकों में से एक में भी कविता नहीं है।

२. विद्यार्थी (बच्चों के लिए पाठ्य पुस्तकें शीर्षक निबन्ध), फाल्गुन सं०—१९८०।

ये प्रयोग इस बात को प्रमाणित करते हैं कि उस समय बाल साहित्य रचना के प्रति अटूट लगन थी। त्रिपाठी जी एक ऐसे व्यक्तित्ववान बाल साहित्यकार थे, जिन्होंने न केवल श्रेष्ठ बाल साहित्य की रचना ही की, बल्कि लेखकों को प्रेरणा भी प्रदान की और बाल साहित्य में नये-नये प्रयोगों को प्रोत्साहन दिया। इन प्रयोगों के लिए उन्होंने पुरस्कार तक प्रदान किए। साथ ही किस प्रकार बाल साहित्य को प्रयोग धर्मी बनाया जाय, इसके लिए स्वयं रचना करके बताया।

'बानर' के माध्यम से त्रिपाठी जी प्रयोग और पुरस्कार सम्बन्धी योजनाएँ पूरी करते थे। नमूने की काव्य रचना देकर उसी प्रकार की कविता लिखने के लिए बानर में पुरस्कार घोषित किए गए थे। 'बिना क्रिया की कहानी' का प्रयोग[1] भी किया गया था और कई लेखकों ने एकाधिक अंकों में बिना क्रिया की कहानियाँ दी थीं।

ऐसा ही एक प्रयोग कविता में अनेक फलों, मिठाइयों, पक्षियों आदि का परिचय देना था। अमरनाथ की कविता 'मामा आए' इसी प्रकार की है—

मामा आए, मामा आए
मामा आए, क्या क्या लाए
मामा लाए चना चबेना
मामा लाए तोता मैना
मामा लाए खेल खिलौना
मामा लाए बुड्ढा बौना
मामा लाए बानर भालू
मामा लाए बैगन आलू
मामा लाए गुड्डा गुड़िया
मामा लाए मीठी पुड़िया (इत्यादि)

रामनरेश त्रिपाठी की ही भाँति श्रीनाथ सिंह भी बाल साहित्य से व्यापक लगाव रखनेवाले व्यक्ति थे। इन्होंने भी बालपत्रिकाओं का सम्पादन और विस्तृत बाल साहित्य रचना की थी। बच्चों को हँसाने के लिए खिलवाड़ पूर्ण प्रयोग भी इन्होंने किए। शिशु में प्रकाशित निम्नांकित कविता एक प्रयोग है जिसमें हर दूसरी पंक्ति का अंतिम शब्द गायब है। कविता की भूमिका में यह बताया गया है कि जब कविता लिख ली गई तो एक लड़के ने हर दूसरी पंक्ति के अंतिम शब्द को मिटा दिया और बाल पाठकों से कहा गया कि वे शब्द पूर्ति करके पढ़े—

थी वह लड़की बड़ी दुलारी
पहने थी रेशम की .....

१. बानर : जून, १६३५।

दर्पण देख सदा खुश होती
क्योंकि जड़े थे नथ में……
घर आते जब योगी ज्ञानी
उन्हें पिलाया करती……
आलस में न बिताती थी दिन
सकती थी सौ तक गिनती… ..
कभी न घर में करती दंगा
जाती रोज नहाने……(इत्यादि)[१]

इसी प्रकार स्वर्ण सहोदर और विद्याभूषण 'विभु' आदि ने अनुकरणात्मक मनोरंजक कविताएँ लिखीं। शब्दों के ध्वनि या अनुरणन-मूलक प्रयोग से काव्य विषय की सहज प्रतीति होने लगती है इस प्रकार की कविताओं से हृदय को विशेष उल्लास प्राप्त होता है। हिंदी में यह प्रवृत्ति पुरानी है। तुलसी ने युद्ध संबंधी वर्णन में इस शैली को अपनाया है और भूषण ने भी अनुप्रासात्मक संयुक्त शब्द प्रयोग से इसी शैली का आश्रय लिया है।[२]

अनुप्रासात्मक शब्दावली बाल काव्य में सहज ही आकर्षण पैदा कर देती है जब बच्चे 'ताकधिनाधिनताक'[३] या—

छाख बाबा जी छाखबी नाकी
छाख रे खेला छाख चालाकी
मोजेर बाजी भेल्की फाँकी
पड़ पड़ पड़ पड़ बी पाकी धप्प[४]

गाते हैं तो उनका तन मन आन्दोलित हो उठता है। ऐसी कविताओं में काव्यार्थ काव्यानुभूति बन कर अपने आप व्यक्त होने लगता है। डबल्यू० एम०

---

१. शिशु : जुलाई १९२६।

२. क्रुद्ध फुरत अति जुद्ध जरत नहिं रुद्ध मुरप भट
खग्ग बजत अरि बग्ग तजत तनु सग्ग सजत ठट। भूषण ग्रंथावली, पृ० १९१।

३. पराग, अप्रैल, १९६९।

४. आबोल ताबोल : सुकुमारराय : (सिगनेट प्रेस, कलकत्ता), पृ० ५१।

रायबर्न ने कविता में इसी बात पर बल दिया था।[1]

ऐसी स्थिति में 'बच्चों की कविताओं में विचार और अभिव्यक्ति दोनों का सौन्दर्य होना चाहिए, उनमें लय होनी चाहिए।'[2]

स्वातन्त्र्य पूर्व कवियों ने लयात्मक कविताएँ देकर अनेक प्रकार के छन्द विषयक प्रयोग किए। बन्दूकों के चलने की एक विशेष ध्वनि होती है इस ध्वनि को शब्दों के 'माध्यम से 'बन्दूक चली' कविता में व्यक्त किया गया है। अर्थपूर्ण शब्दों की योजना से कथ्य अनुभूत होने लगता है—

बन्दूक चली, बन्दूक चली
चल गई सनासनसन सननन
घल गई दनादनदन दननन
जाने किस पर किस जगह घली
बन्दूक चली, बन्दूक चली
धड़ धड़ धड़ाम आई आवाज
मानो कि भरभरा गिरी गाज
गूँजा स्वर घर-घर गली गली
बन्दूक चली, बन्दूक चली
× × ×
लड़की भड़की, लड़का भड़का
दादी का दिल धड़ धड़ धड़का
सहमी बेचारी रामकली
बन्दूक चली बन्दूक चली[3]।

'बिन्नी की गाड़ी' कविता भी इसी प्रकार का सुन्दर प्रयोग है जिसमें सरल शब्दों के द्वारा वातावरण सजीव हो उठा है—बच्चों का खेल का जीवन ही कविता बन गया है। बच्चे उछलते कूदते हैं, गाड़ी चलाते हैं, गाड़ी फिसलती है,

---

१. आवर मेन टास्क ऐज टीचर्स आफ पोएट्री इज टु क्रियेट एन एटमासफियर इन ह्विच द मीनिंग आफ द पोएम कैन बी फेल्ट रादर देन अडंरस्टुड इटेंलेक्टुअली बट नन द लेस अन्डरस्टुड : द टीचिंग आफ द मदर टंग : डबल्यू० एम० रायबर्न: पृ० १०५।

२. पोयम्स फार चिल्ड्रेन, इविन इफ वेरी सिम्पुल सुड हैव बियूटी आफ थाट ऐन्ड ब्रियूटी आफ एक्सप्रेशन : वही : पृ० १०६,१०७।

३. बालसखा : फरवरी : १९४१।

झाड़ी में अटकती है और बच्चे झाड़ी को काटने का संकल्प करते हैं। यही जीवन की गति है। जीवन में बाधाएँ आती हैं, मनुष्य उनको दूर करने का संकल्प करता है और तब जीवन में आनन्द का स्रोत बहने लगता है। कविता इस प्रकार है :

बिन्नी की गाड़ी
बिन्नू अनाड़ी
ले चला अगाड़ी
आ गई पहाड़ी
छूट गई गाड़ी
लुढ़की पिछाड़ी
पड़ी एक झाड़ी
फँस गई गाड़ी
रुक गई गाड़ी
लाओ कुल्हाड़ी
काटेंगे झाड़ी।[१]

'बानर संगीत'[२] के नृत्यगीत भी बाल काव्य के प्रयोग हैं और कविताओं की नई सम्भावनाएँ प्रकट करते हैं। इसके गीत थिरकते नाचते हुए बाल, स्वभाव के अनुकूल हैं। यहाँ शब्द मात्र शब्द न रहकर सजीव ध्वनियाँ बन जाते हैं।[३]

आज बाल-पत्रिकाओं के सम्पादक बाल काव्य को उचित स्थान नहीं दे रहे हैं बाल काव्य की अनेक सम्भावनाएँ हैं, जो प्रोत्साहन के अभाव में सामने नहीं आ पा रही हैं। विभिन्न प्रकार के गीत, समवेत गीत, विविध विषयों की कविताएँ, छोटे शिशुओं का काव्य जैसे प्रयोग तभी सम्भव हैं जब सम्पादक उन्हें महत्त्व दें और बाल काव्य को विकसित करने का प्रयास करें। यदि आज कविताएँ छपती भी हैं तो उन्हें इतना गौण स्थान मिलता है कि बाल पाठक आकृष्ट नहीं हो पाते।

---

१. मोहनमाला : रामनरेश त्रिपाठी।

२. बानर संगीत : रामनरेश त्रिपाठी।

३. वर्ल्ड्स वेयर टु हिम नाट मियरली वर्ड्स
देयर साउन्ड्स रंग स्विट ऐज बेलस ऐंड बर्ड्स
वाल्टर डी ला मेयर : दिस इयर, नेक्स्ट इयर।

पद्य या कविताओं की तरह गद्य के क्षेत्र में भी अनेक प्रयोग हुए। मूल लोक बोलियों में बाल कहानियों का प्रकाशन इसका उदाहरण है। खड़ी बोली में रूपान्तरित होने पर कहानी मूल का सौन्दर्य खो देती है। यह रूपान्तरण काव्य रूपान्तर की ही भाँति है। काव्य रूपान्तर में भी मूल भाषा की ध्वनियाँ, छन्द आदि नहीं आ पाते।

लोक बोली में कहानियाँ प्रयोगशील मासिक 'बानर' में छापी जाती थीं।[१]

अनन्त क्षितिज

स्वातन्त्र्य पूर्वकाल में बाल साहित्य का अनन्त विस्तार हुआ। एक ओर जहाँ भावानुकूल और बाल मनोविज्ञान को दृष्टि में रखकर बाल साहित्य रचना की गई, वहीं अनेक विधाओं में भी बाल साहित्य रचना हुई। बाल साहित्य के दो प्रमुख उद्देश्य हैं—मनोरंजन और व्यक्तित्व का उन्नयन। तद्युगीन साहित्य ने दोनों जिम्मेदारियों को निभाया।

वास्तव में इस युग में जैसे बाल साहित्य के अनन्त क्षितिज ही खुल गए थे बाल साहित्यकार केवल कविताओं, कहानियों, उपन्यासों और नाटकों या निबन्धों की ही रचना नहीं कर रहे थे बल्कि वे बाल पाठक को मानव जीवन से लेकर विश्व जीवन तक की जानकारी दे देना चाहते थे।

अन्ततः बाल पाठक भी एक बौद्धिक प्राणी होता है। वह अपने परिवेश की प्रत्येक वस्तु के विषय में जानकारी चाहता है। कभी-कभी उसकी जिज्ञासा फूट भी पड़ती है :

किसने मेरा बाग सजाया
कल तो सोते थे सब पौधे
किसने आकर उन्हें जगाया
छोटी-छोटी इन बूँदों से
किसने है उनको नहलाया।[२]

---

१. बानर : मार्च १६३४ (गंगाप्रसाद पाण्डेय की कहानी 'हुसियार कौवा, : बघेलखण्डी में छपी है)।

२. लालबाग : पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी : बालसखा : मई, १६३१। इसी के समानान्तर जिज्ञासा रवीन्द्रनाथ टैगोर की एक कविता में भी व्यक्त हुई है—

पर बाल साहित्यकार उनकी बोध सीमा के अन्तर्गत प्रायः प्रत्येक विषय का यथातथ्य ज्ञान करा देना चाहता है। गद्य की निबन्ध विधा का इसके लिए अच्छा उपयोग हुआ है। विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में इस उद्देश्य से जानकारी पूर्ण लेख प्रस्तुत किए गए और ऐसी पुस्तकों की रचना की गई, जिनसे बालकों का ज्ञान विस्तार हो।

विभिन्न बाल पत्रिकाओं में प्रकाशित ज्ञानकारी पूर्ण लेखों के विषयों की कोई सीमा नहीं है। वास्तव में संसार में आए बालक नामक प्राणी को सभी कुछ जानना भी है। लेखकों ने इसी दृष्टि से बालकों के लिए ज्ञान के अनन्त द्वार खोलने की चेष्टा की।

इस संदर्भ में मुन्शी कन्हैयालाल एम० ए० एल-एल० बी० ने 'गया तीर्थ'[१] 'जगन्नाथपुरी''[२] आदि तीर्थ स्थानों पर रोचक विवरण प्रस्तुत किए। 'गेहूँ की कहानी' में ठाकुरदत्त मिश्र ने गेहूँ का विकास, उसकी उपयोगिता इत्यादि विषय पर बालकों के समझने लायक लेख दिया। यह सचित्र था। लक्ष्मी नारायण दीनदयाल अवस्थी ने 'हवा' का जानकारी पूर्ण परिचय दिया। ऐसी रचनाओं में वैज्ञानिक तथ्यों का आश्रय लिया गया है जो और भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। 'हवा' का परिचय इस प्रकार दिया गया है—

'हवा हमारे चारों ओर भरी हुई हैं। जिस प्रकार बड़े-बड़े सागरों में पानी ही पानी होता है, उसी प्रकार जमीन के चारों ओर हवा ही हवा है। इसी पर हमारा जीवन रहता है। यदि हवा न हो तो हमारा जीवित रहना भी दूभर हो जाय।'[३]

दर्शनीय और ऐतिहासिक स्थानों का मनोरंजक तथा जानकारी पूर्ण वृत्त सुरेश सिंह ने प्रस्तुत किया।[४]

काल छिलो डाल खालि, आज फुले जाय भरे
बल देखि तुइ माली, हय से केमन करे

(कल तो डाल खाली थी। आज उसमें फूल आ गए हैं। हे माली तू ही देख कर बता कि ऐसा कैसे हुआ।) बाल साहित्य : रवीन्द्रनाथ ठाकुर, पृ० ४७ (साहित्य अकादमी : नई दिल्ली)।

१. बालसखा : अगस्त, १९३२।
२. वही, अक्टूबर, १९३२।
३. वही : जून, १९३३।
४. वही, दिसम्बर, १९३४।

'सहारा का रेगिस्तान' में बड़े सरल ढंग से वहाँ के जीवन, रहन-सहन आदि का विस्तार पूर्वक परिचय दिया गया है। बाल पाठक ऐसे विवरण पढ़कर और अधिक जानकारी प्राप्त करने की चेष्टा करेंगे।

'सहारा निवासियों का पेशा अधिकतर सौदागरी है। कई सौदागरों का गिरोह एक साथ चलता है। खाने पीने की सारी सामग्री अपने साथ ऊँटों पर लाद लेते हैं। रास्ते में अपने शरीर को खाल अथवा कपड़ों से सर से पैर तक ढके रहते हैं। यदि ऐसा न करें तो गरमी और उड़ती हुई बालू से शरीर फट जाय और घाव हो जायँ।'[१]

अन्य विषयों में 'छात्रालय जीवन'[२] (गुलाब राय), 'स्वदेश प्रेम'[३] (शांतिप्रिय द्विवेदी), कंगारू,[४] 'चन्द्रमा'[५] (सुरेश सिंह) आदि हैं। पुरुषोत्तमदास टण्डन, लाला लाजपतराय, बाबू राजेन्द्र प्रसाद, प्रेमचन्द, जयशंकर प्रसाद आदि का भी बालकों को ज्ञान कराया गया था।

बालकों का ज्ञान बढ़ाने के लिए ही ज्ञान-विज्ञान, आविष्कार देश-विदेश परिचय, तथा अन्य विविध विषयों पर पुस्तकों की रचना हुई। इनमें आविष्कार की बातें (चन्द्रशेखर शास्त्री),[६] आविष्कार की कहानियाँ (जगपति चतुर्वेदी),[७] वायु के चमत्कार (जगपति चतुर्वेदी),[८] प्रकृति की विचित्रता (रामदहिन मिश्र),[९] वर्तमान युद्धकला (सीतला सहाय)[१०] जैसी पुस्तकें महत्त्व की हैं।

इसी प्रकार अयोध्या प्रसाद झा;[११] कृपानाथ मिश्र;[१२] बलदेव सिंह[१३]

१. शिशु (सहारा का रेगिस्तान) : बुद्धिसागर वर्मा 'विशारद' : अप्रैल, १६२६।

२. विद्यार्थी : मार्गशीर्ष : संवत् १६७६।

३. वही : कार्तिक : १६८०।

४. बानर : दिसम्बर, १६३१।

५. वही : जनवरी, १६३२।

६. युगांतर प्रकाशन समिति : पटना।

७. भारती पब्लिशर्स, पटना।

८. कमला पुस्तक भण्डार, दारागंज, प्रयाग।

९. बाल शिक्षा समिति : पटना।

१०. इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद।

११. विचित्र दुनियाँ : बाल शिक्षा समिति : पटना।

१२. बालकों का योरोप : पुस्तक भण्डार, लहेरियासराय : पटना।

१३. अंधकार के पथिक : बाल शिक्षा समिति : पटना।

और रामनारायण मिश्र ने यात्रा सम्बन्धी पुस्तकें लिखकर बालकों का ज्ञान, बढ़ाया। रामनारायण मिश्र ने लंका, ईराक, बर्मा, पोलैण्ड, मिस्र, रूमानियाँ, बेल्जियम इत्यादि अनेक देशों पर पुस्तकें लिखीं; जिनका प्रकाशन भूगोल कार्यालय; इलाहाबाद से हुआ था।

इतिहास, पुराण, धर्म, स्वास्थ्य, सफाई जीवनी संग्रह, जीवन चरित्र जैसे विषयों पर भी बालकों को दृष्टि में रखकर पर्याप्त मात्रा में लिखा गया। इससे बाल साहित्य के विस्तार का परिचय मिलता है। साथ ही यह भी ज्ञात होता है कि स्वातन्त्र्य पूर्व का साहित्यकार बालक को ज्ञान और चिन्तन से पूरी तरह जोड़ देना चाहता था। वह उसके ज्ञान का सुविस्तृत मार्ग खोल देना चाहता था। बालक के पूर्ण व्यक्तित्व के विकास के लिए यह आवश्यक है।

बालकाव्य

इस युग में सबसे अधिक विकास हुआ काव्य का। हरिऔध से लेकर सोहन लाल द्विवेदी और निरंकार देव सेवक तक कवियों ने बालकों के लिए काव्य रचना की। इसमें छायावादी कवि पंत और डॉ० रामकुमार वर्मा जैसे कवियों ने भी योग दिया। स्वातन्त्र्य पूर्व युग की यह एक विशेषता है कि प्रौढ़ों के लिए काव्य रचना करने वाले ख्यातनाम कवियों ने बालकों के लिए भी लिखने में किसी प्रकार का संकोच नहीं किया। आज के बड़े कवियों में यह बात कम दिखाई देती है। हाल के गत पाँच सात वर्षों में ऐसे कवियों ने बच्चों के लिये जमीन तोड़ने की कोशिश की है। इससे कोई उपलब्धि सामने नहीं आई है, किन्तु प्रयास का फिर भी महत्व है।

तद्युगीन बाल-पत्रिकाओं ने बालकाव्य को विशेष महत्त्व दिया था। रामनरेश त्रिपाठी, श्रीनाथ सिंह, विद्याभूषण विभु, स्वर्ण सहोदर, सोहनलाल द्विवेदी, निरंकार देव सेवक आदि कवियों का तो काव्य रचना क्षेत्र में सबसे ऊँचा और ऐतिहासिक स्थान है। इनके काव्य में बालजीवन की सजीवता है। बालक का हँसना, खेलना, दौड़ना धूपना, विनोद, पढ़ाई परिस्परिक मेल जैसी बाल जीवन की प्रकृतियों की सजीवता है। इसके अतिरिक्त प्राकृतिक सौन्दर्य और बाल परिवेश की काव्यमय अभिव्यक्ति है। बालक की एक विशिष्ट मानसिक स्थिति होती है। इस मानसिक स्थिति की मनोवैज्ञानिक पकड़ इस युग के कवियों में भली-भाँति है। स्वर्ण सहोदर की एक कविता 'मौजी लड़के' इस प्रकार है :

मौजी लड़के निकले घर से
पढ़ने को चल पड़े मदरसे

कंधों से बस्ते लटकाए
चलकर बड़ी सड़क पर आए
वे सब एक पाँति में बनकर
एक एक की कमर पकड़कर
चले एक के एक पिछाड़ी
जैसे पाँतों वाली गाड़ी
× × ×
भागी गाड़ी मचल मचल कर
अगुवा लड़का गिरा फिसलकर
अगुवा फिसला बिगड़ी गाड़ी
गिरे भड़ाभड़ सभी खिलाड़ी
कीचड़ में लड़कों की टोली
लगी खेलने मानो होली ।[1]

सुप्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री रायबर्न ने इस बात पर विशेष बल दिया कि है बालकाव्य का सम्बन्ध सीधा बाल जीवन से होना चाहिए, । जिन बातों का बालकों के सामान्य जीवन से सम्बन्ध नहीं है, बालक उनकी अनुभूति भी नहीं कर सकते ।'[2]

यह विशेषता उपर्युक्त कविता में भी है और अन्य कविताओं में भी ।

खेल बालकों के जीवन का मुख्य अंग है । मेरिया मांटेसरी ने तो खेल को इतना अधिक महत्त्व दिया है कि अपनी बाल-शिक्षा की नींव ही खेल पर रखी । आज उसके शिक्षा शास्त्रीय सिद्धान्तों का ही परिणाम है कि बालकों को खेल द्वारा शिक्षा दी जाने लगी है और पहले की अपेक्षा अब शिक्षा अधिक बालोपयोगी होती जा रही है ।

बाल काव्यकारों ने भी खेल की इस प्रवृत्ति को समझा । 'अक्कड़ बक्कड़ बंबे भो' गीत के साथ किसी ने भी बालकों को खेलते देखा होगा । राम नरेश

---

१. बालसखा : अप्रैल, १६३२ ।

२. द पोएट्री वैट इज टाट इन स्कूल शुड बी रिलेटेड टू लाइफ । वी कैन-नाट एक्सपेक्स रिल्ड्रेन टु फील थिंग्स दैट आर आउट आफ रिलेशन टु देयर आर्डिनरी एक्सरेंपीस । दिस इज स्पेशियली टू विथ यंगर चिल्ड्रेन दो इट इज टू विथ आल ।—द टीचिंग आफ द मर टंग : डब्ल्यू० एम० रायबर्न, पृ० १०५ ।

त्रिपाठी ने इस खेल प्रवृत्ति की सन्तुष्टि के लिए गीत और कविताओं की रचना की। ऐसे खेल और क्रियात्मक गीत (एक्शनसोंग) उनके 'बानर संगीत' में स्वर लिपि के साथ संकलित किए गये हैं। 'बेले का हार' गीत इस प्रकार है—

बेले का हार—बेले का हार
बेले का हार—मेरा बेले का हार
कौन लाई फूल बीन
किसने गूँथी माला
किसने मेरा प्यार किया
हार गले डाला
हारों का हार—हारों का हार
हारों का हार—मेरा हारों का हार
बहन लाई फूल बीन
माँ ने गूँथी माला
बाबू जी ने प्यार किया
मेरे गले डाला
हारों का हार—प्यारों का हार
प्यारों का हार—मेरा बेले का हार।[1]

कभी-कभी कविताएँ दुरूह भी हो जाती थीं जिसकी आलोचना होती थी। हरिऔध जी की एक कविता की आलोचना एक बालपाठक ने की थी।[2]

'बौद्धिक क्लिष्टता से परे तथा बच्चों के कल्पना क्षितिज के' अनुरूप[3] इस युग की कविताएँ और गीतों के विषय मुख्यरूप से बाल जीवन के परिवेश के हैं। इनमें पशु, पक्षी, नदी, झरने, वन, पर्वत, प्रकृति, सौंदर्य, सूर्य, चंद्र, तारे, खेल कूद का जीवन बाल जिज्ञासा, मन की उमंग जीवन के आदर्श और प्रेरणाएँ पर्व त्यौहार, हास्य चरित्र, विनोदपूर्ण कल्पनाएँ राष्ट्रीय चेतना आदि अनेक विषय हैं। नन्हें बच्चों के लिए भी अत्यन्त सरल सुबोध शैली में और उनके मनोविज्ञान के अनुकूल रोचक काव्यरचना हुई है।

---

१. बेले का हार (बानर संगीत) ले० रामनरेश त्रिपाठी।
२. बालसखा, फरवरी : १९२९।
३. हिंदी साहित्य का वृहद इतिहास : दशम भाग, : पृ० ४७१५

पशु-पक्षी और प्रकृति सौंदर्य का काव्य

पशु-पक्षियों में बालकों का मन बहुत लगता है। ये उनके लिये आनन्द-पूर्ण जीवन की दूसरी दुनियाँ का निर्माण करते हैं। इसका कारण बालक के जीवन से भिन्न इनका विचित्र और गतिपूर्ण स्वच्छन्द जीवन है। बालक भी ऐसी ही गतिशीलता और स्वच्छन्दता चाहता है। ऋतुओं के सरस वर्णन और प्राकृतिक सौंदर्य से उसका मानसिक विकास होता है। साथ ही उसकी सौंदर्य आस्वाद की प्रवृति को सन्तोष मिलता है। सुन्दर प्रकृति के आदर्शन से हृदय का भी विस्तार होता है। 'आया बसन्त' इसका उदाहरण है—

आया बसंत
शोभा अनन्त
छाई पग पग न्यारी न्यारी
सरसों फूली
बौरें झूली
कोयल बोली प्यारी प्यारी
बह रही हवा
क्या खूब आहा
लहराती है क्यारी क्यारी।[1]

प्रकृति या ऋतुवर्णन और सूर्यचंद्र, नक्षत्र आदि विश्व के सभी बालकों के काव्य विषय रहे हैं। इनका प्रतिपादन दो रूपों में हुआ है—(१) सामान्य सहज उल्लेख, (२) कतिपय विचारों या निष्कर्षों का आरोप। सामान्य सहज उल्लेख में तथ्य का संवेदनापूर्ण वर्णन रहता है। ऐसी कविताओं में कवि की यथार्थ अथवा परिदर्शन मुख्य है। जैसे—

चमक उठी बिजली बादल में
कड़का-कड़का शोर हुआ
उभर चला फिर मेघ घुमरकर
पानी चारों ओर हुआ
हवा बह रही ठंडी-ठंडी
बूंदं तिरछी गिरती हैं

१. मोदक : सोहन लाल द्विवेदी, पृ० १।

पूरब से जो छुटी घटाएँ
पश्चिम जाकर घिरती हैं।[१]

जब दृश्य वस्तु मन में विचारात्मक अनुभूतियाँ जगाती हैं, उस समय वर्ण्य कतिपय विचारों या निष्कर्षों का प्रतीक बन जाता है। बाल काव्य में यह स्थिति काफी है। अनेक संदेश, प्रेरणाएँ और जीवन को निर्मित करने वाले विचार प्रकृति के माध्यम से सम्प्रेषित किए गए हैं। 'हिमालय' कविता का प्रस्तुत अंश इस प्रकार है—

खड़ा हिमालय बता रहा है
डरो न आँधी पानी में
खड़े रहो अपने पथ पर
सब कठिनाई तूफानों में
डिगो न अपने पथ से तो
सब कुछ पा सकते हो प्यारे
तुम भी ऊँचे हो सकते हो।
छू सकते नभ के तारे।[२]

हास्य और विनोद का काव्य

हास्य और विनोद का जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य के लिए हास्य और विनोद अनिवार्य है। बड़ों की अपेक्षा बालकों के लिए तो और भी अनिवार्य है। हास्य और विनोद से मानसिक तनाव कम होता है और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से मानसिक तनाव जीवन के लिए हानिकर है।

हास्य कई प्रकार से पैदा किया जा सकता है—अतिरंजित वर्णन करके असंतुलित वस्तुओं को एक करके, आश्चर्य पूर्ण स्थिति दिखाकर या ऊलजलूलपन व्यक्त करके।

बच्चों के लिए हास्य और विनोद का काव्य लिखने में इस युग में अनेक कवियों ने सफलता प्राप्त की। 'दादी का कमरा' शीर्षक हास्य कविता का कुछ अंश इस प्रकार है—

निराला आला है बेहद, धुएँ से काला है बेहद
हमारी दादी का कमरा

१. मेघ (युगल) बालसखा जन० : १९४६।
२. हिमालय : (बाँसुरी) : सोहन लाल द्विवेदी : पृ० ४६।

एक कोने में टूटा डोल, टँगा खूँटी पर फूटा ढोल
पड़ी ढीली-ढाली खटिया, भरी गंगाजल की लुटिया
निराला आला है बेहद, धुएँ से काला है बेहद
हमारी दादी का कमरा ।[१]

दादी के कमरे में विचित्र वस्तुओं के संग्रह ने हास्य पैदा कर दिया है। छन्द की लयात्मकता हास्य को बढ़ाने में सहयोग करती है।

नन्हें बच्चों का काव्य

काव्य का एक पक्ष लय और ध्वनि का होता है। लय और ध्वनि शाब्दिक अर्थ से पृथक होती है। वह अपने में पूर्ण है। नन्हें बच्चों के काव्य में इन्हीं तत्त्वों की प्रधानता होती है। अर्थ गाम्भीर्य न बढ़ने देने के लिए नन्हें बच्चों के काव्य में दो बातें विशेष रूप से दिखाई देती हैं—सरलतम शब्दयोजना और शब्दों की पुनरुक्ति। काव्य विषय नन्हें बच्चों की बोध सीमा के अन्तर्गत होता है। अब तो इस काव्य की विधा 'शिशु गीत' (नर्सरी राइम) अलग हो गए हैं। और हाल के वर्षों में अनेक अच्छे शिशु गीत लिखे गए। स्वातन्त्र्य पूर्व काल में आज की अपेक्षा शिशुकाव्य कम लिखा गया, किन्तु फिर भी प्रयास प्रशंसनीय है। नन्हें बच्चों के लिए रामनरेश त्रिपाठी, विद्याभूषण विभु और सोहनलाल द्विवेदी ने अच्छी काव्य रचना की। 'तीनों बिल्ली बड़ी चिबिल्ली' विभु की सुन्दर शिशु कविता है—

तीनों बिल्ली बड़ी चिबिल्ली जाकर पहुँची दिल्ली
वहाँ चाँदनी चौक सड़क पर खेले डण्डा गिल्ली
गिल्ली लगी एक बिल्ली के, आँसू भर-भर रोती
खाती कोई चुहिया मोटी जो कुलिया में होती ।[२]

पशु-पक्षियों को शिशुकाव्य में सर्वत्र स्थान मिला है। बिल्ली नन्हें बच्चों के लिए अति परिचित प्राणी है। इसलिए हिन्दी में और अंग्रेजी में भी इसको आधार बनाया गया है।[३]

---

१. दादी का कमरा (पंकज कुलश्रेष्ठ) बालसखा : जुलाई, १९४५।

२. लाल खिलौना : विद्याभूषण : विभु, पृ० ४।

३. आई लव लिटिल पुसी, हर कोट इज सो वार्म
ऐन्ड इफ आई डोंट हर्ट हर, शी, इल डू मी नो हार्म।
सो आइ, इल नाट फुल हर टेल, नार ड्राइव हर अवे
बट पुसी ऐन्ड आई, वेरी जेन्टली विल प्ले।
—बेड टाइम नर्सरी राइम्स (गोल्डन प्लेजर बुक्स : लन्दन), पृ० १५।

प्रेरणामूलक और राष्ट्रीय काव्य

प्रेरणामूलक और राष्ट्रीय काव्य की रचना सार्वदेशिक है। हिन्दी में भी बालकों को जीवन की निराशा से मुक्त रहने परिस्थितियों से संघर्ष करने और हर बाधा में हँसते खेलते हुए जीवन बिताने का सन्देश प्रायः प्रत्येक कवि ने दिया है। ऐसा काव्य प्रेरणामूलक भी होता है और उपदेशात्मक भी। पर मात्र उपदेशात्मक काव्य बहुत श्रेष्ठ नहीं होता। कारण यह है कि उपदेशों का प्रभाव बुद्धि पर पड़ता है जब कि कविता संवेदना जगाती है। उपदेश संवेदना नहीं जगाते। इसलिए बच्चे भी ज्यादा उपदेश सुनना पसन्द नहीं करते।

किन्तु छन्द और भाषा के लालित्य पर सीमित मात्रा में उपदेश दिया जा सकता है। फिर भी प्रेरणामूलक और उपदेशात्मक काव्य की रचना कठिन है। बल्कि ऐसा विषय पकड़कर कवि शीघ्र ही अपने को रूखा बना लेगा और बाल काव्य में महत्त्व खो बैठेगा।

स्वातन्त्र्य पूर्व काल के प्रेरणाप्रद उपदेश काव्य में प्रयोगशीलता और शैली की सजावट है। ऐसा ही काव्य एक सीमा में ग्राह्य हो सकता है। पर उसमें काव्य का निर्वाह जरूरी है। जैसे—

जागो उठो, सबेरा आया
कितने नये सन्देशे लाया
पक्षी कब से बोल रहे हैं
फूल किवाड़े खोल रहे हैं
किरनें घर-घर घूम रही हैं
सबकी आँखें चूम रही हैं
× × ×
तुम भी जागो आँखें खोलो
खेलो कूदो हँसकर बोलो।[1]

इसी प्रकार राष्ट्रीय चेतना के उद्बोधन के लिये प्रभूत मात्रा में राष्ट्रीय या देशप्रेम का काव्य लिखा गया। देशप्रेम और राष्ट्रीयता हिन्दी बालकाव्य का प्रारम्भ से ही प्रमुख विषय रहा है।

राष्ट्रीयता को उद्बुद्ध करने में तत्कालीन परिस्थितियों ने भी कार्य किया। वह समय विदेशी सत्ता के शासन का था। पूरा देश उस समय अंग्रेजों की सत्ता

---

१. मोहनमाला : रामनरेश त्रिपाठी :

से मुक्त होने के लिये संघर्ष कर रहा था। विदेशियों के प्रति आक्रोश और देश-प्रेम की लहर पूरे देश में आई हुई थी। राष्ट्रीय चेतना और देशप्रेम भी गुलामी से मुक्ति की प्रेरणा प्रदान करते हैं। राष्ट्रीय चेतना के लिए देश का गुण-गान राष्ट्रीय महानता प्राकृतिक संपन्नता और सौन्दर्य आदि का वर्णन किया जाता है।

तत्कालीन परिस्थितियों में बड़ा हृदयग्राही और प्रेरणाप्रद राष्ट्रीय काव्य निर्मित हुआ। 'हमारा देश' सरल और उपदेश प्रधान बाल कविता इस प्रकार है—

अच्छा अच्छा प्यारा प्यारा
देश हमारा राज दुलारा
प्यारा है निज देश हमारा
राज दुलारा सबसे न्यारा
सबसे न्यारा आँख का तारा
प्यारा है निज देश हमारा
चाँदी इसमें सोना इसमें
लोहा इसमें ताँबा इसमें
मसजिद इसमें मन्दिर इसमें
तरह तरह की नदियाँ इसमें
सबसे न्यारा आँख का तारा
प्यारा है निज देश हमारा।[१]

देशप्रेम और राष्ट्रीयता के संदर्भ में ही' खद्दर की प्रशंसा में कविताएँ लिखी गई,[२] गांधी जी की अहिंसात्मक लड़ाई का गुण गाया गया।[३] लोगों को जागृत होने का सन्देश दिया गया और अपने देश के प्रति स्वाभिमान पैदा किया गया।[४]

तात्पर्य यह कि इस युग की काव्य रचना अत्यन्त विस्तृत भूमि पर हुई। मौलिक काव्यरचना में उत्सवों, त्योहारों और ऋतुओं के सुन्दर सरस वर्णन से लेकर महापुरुषों के जीवन तक को काव्य का आधार बनाया गया। महाभारत की अनेक लम्बी कहानियों को काव्य शैली में रूपान्तरित किया गया। मोहनलाल नेहरू इस क्षेत्र में सिद्धहस्त थे जिन्होंने जटासुरवध, दुर्योधन गंधर्वयुद्ध जैसे विषयों पर काव्य कृतियाँ दीं।

और प्राचीन कविता छन्द से लेकर उर्दू काव्य की शैली के छन्दों तक में बालकाव्य रचना हुई। उर्दू के कुछ विशिष्ट कवियों ने भी बाल काव्य रचना में महत्त्वपूर्ण योग दिया। बिस्मिल इलाहाबादी की 'मोटर' कविता द्रष्टव्य है—

मोटर पर आलम शैदा है
लोग जरा समझें तो क्या है
तेज हवा से चलनेवाली

१. हमारा देश : (सैयद कासिम अली) बालसखा : नवम्बर, १६४०।
२. खद्दर : (सोहनलाल द्विवेदी) : बालसखा : अक्टूबर, १६४०।
३. नवीन योधा (सोहनलाल द्विवेदी) : कुमार, नवम्बर, १६३६।
४. अरमान (बीरेंद्र मालवीय) : बानर, अप्रैल, १६३४।

आगे सबसे निकलने वाली
गद्दी नर्म सजीली भारी
जिस पर बैठे चार सवारी
पहियों में भी हवा भरी है
इंजन में पानी की तरी है (आदि)[१]

प्रस्तुत कविता मुहम्मद शफीउद्दीन नैयर की उन तमाम सुन्दर बाल कविताओं जैसी है, जो उनके संग्रह 'बच्चों का तोहफा' में संकलित हैं।

इसके साथ ही वह बालकाव्य है जो या तो अंग्रेजी बालकाव्य का अनुवाद है या अंग्रेजी बालकाव्य की छाया में लिखा गया है। लांगफेलों की कविता, द ऐरो ऐंड द सांग' का अनुवाद तीर और तान से प्रकाशित हुआ था।[२] 'उस पार काव्यानुवाद टेनीसन की 'क्रासिग द बार' का था, [३] शेक्सपीयर के नाटक मैर्चेन्ट आव वैनिस के 'मर्सी' (दया) प्रसंग का अनुवाद 'दया' शीर्षक से प्रकाशित हुआ था[४] तथा रामनरेश त्रिपाठी की 'गौरैया का व्याह' कविता एक अन्य अंग्रेजी शिशु कविता से प्रभावित है।[५]

---

१. मोटर (बिस्मिल इलाहाबादी) बालसखा : जनवरी, १९३९।

२. तीर और तान : अनु० शंभूदयाल सक्सेना : विद्यार्थी : ज्येष्ठ संवत् १९८४।

३. उसपार अनु० व्याकुल : वही : वैशाख संवत् १९८४।

४. दया : अनु० ब्रह्मचारी अभिमन्यु : 'कुमार'' बानर : अप्रैल १९३४।

५. बानर : अगस्त : १९३४।

लगन पत्रिका लिखने आए
सुग्गा पंडित ज्ञानी।
सारस हँस बराती आए
ठहरे आकर पानी

मोर नचनिया बनकर आए
कोयल आई गाने
मैना कथा सुनाने आई
पेंड़की ढोल बजाने (आदि)

अंग्रेजी कविता—

हू किल्ड काक रोबिन ?
'आई' सैड द स्पेरो,
'विद माई वाऊ ऐंड ऐरो
इ किल्ड काक रोबिन'
... ...
हू' इल्ल टाल द बेल ?
'आई' सैड द बुल,
बीकाज आई कैन पुल
आई' इल्ल टाल द बेल'।

गिफ्ट बुक आफ नर्सरी राइम्स : (डीन ऐंड संस) लि० लंदन।

स्वातंत्र्य पूर्व तक की हिन्दी बालकाव्य की यह एक यात्रा है। यह यात्रा बड़ी सुखद और आशाप्रद थी। एक बड़ी विशेषता इस बालकाव्य की यह थी कि उस युग में बिना किसी पूर्व परम्परा के इतना अच्छा बालकाव्य लिखा गया। बाल काव्य के मार्ग की खोज उस युग के कवियों की अपनी थी और सही खोज थी। उसमें यदि कहीं अनगढ़पन और अपरिपक्वता है तो इसी कारण कि बिना परम्परा के पहली बार उस युग के कवियों ने रचना प्रारम्भ की थी। उसका क्षितिज व्यापक नहीं है, विशेष रूप से अंग्रेजी बालकाव्य की तुलना में तो यह काव्य निश्चित रूप से हलका पड़ता है, पर इसने बालकाव्य की आधारभूत पृष्ठभूमि प्रस्तुत की, इसमें सन्देह नहीं है। और बालकों को काव्य का आस्वादन पर्याप्त मात्रा में कराया, इसमें भी सन्देह नहीं है।

कहानी

काव्य और कहानी—बाल साहित्य की ये दो प्रमुख विधाएँ हैं। इन्हीं दोनों विधाओं में बाल साहित्य का अब तक मुख्य रूप से विकास हुआ है।

साहित्य के रूप में कहानी विधा का वस्तुतः बड़ा महत्त्व है। आदि-साहित्य में सबसे पहले कहानी का विकास हुआ या काव्य का, कहना कठिन है। पर किसी बात को मार्मिकता तथा व्यंजना के साथ जब व्यक्ति ने दूसरे को सुनाना प्रारम्भ किया होगा, उसी दिन कहानी का जन्म हो गया होगा।

किसी बात को कल्पना के योग के साथ कहना ही कहानी है। इसे 'कहने' के ढंग का विकास हुआ और कहानी की शैलियाँ अस्तित्व में आईं। शैलियों के रूप में कहने के ढंग बदलते रहे हैं।

शैलियों के साथ ही कथ्य में भी परिवर्तन होता रहा है। मानव जीवन कभी स्थिर नहीं रहा। नई-नई परिस्थितियाँ पैदा होती रही हैं, इसके परिणामस्वरूप कहानी के विषय भी बदलते रहे हैं।

स्वातन्त्र्यपूर्व बाल कहानी को स्वातन्त्र्योत्तर बाल कहानी से अधिक विकसित नहीं माना जा सकता। पर कहानी रचना का उत्साह श्लाघ्य था। कहानी को बाल पत्रिकाओं में प्रमुख विधा के रूप में स्थान मिला।

उस युग की कहानियों को तीन भागों में बाँट सकते हैं--(१) मौलिक (२) लोक कथाएँ और (३) अनूदित कहानियाँ। मौलिक कहानियों में वे सभी बाल कहानियाँ आ जाएँगी जो बालजीवन के परिवेश को दृष्टि में रखकर लिखी गई है। या लोक कथाश्रित हैं। लोककथाओं की अपनी शैली है। पशु-पक्षियों का माध्यम बनना इन कथाओं में प्रायः देखा जाता है। अनेक कहानीकारों ने पशु-पक्षियों को पात्र के रूप में रखकर कहानी की सर्जना की।

आज स्वातन्त्र्योत्तर युग में भी इस शैली पर कहानियाँ निर्मित हो रही हैं।

अनूदित कहानियाँ भी स्वातन्त्र्यपूर्व काल में अनेक प्रस्तुत की गईं। ये अनुवाद मुख्यतः अंग्रेजी और बंगला से हुए थे।

इनके अतिरिक्त लोककथाएँ हैं। ये कथाएँ विश्व में सर्वत्र हैं और साहित्य की अमूल्य निधि हैं। इनकी रचना अतीत में जनमानस ने की थी। इसलिए

अतीत इतिहास की झलक इन कहानियों में पाई जाती है। मानव के स्थान पर पशु-पक्षी, परियाँ और भूत-प्रेत आदि पात्र इन कहानियों में भूमिका अदा करते हैं। लोककथाओं में कई प्रकार की कहानियाँ हैं जहाँ कुछ कहानियाँ केवल बड़ों के उपयोग की हैं वहीं अनेक कहानियाँ यथावत् या परिवर्तित रूप में बालकों के उपयोग की हो जाती हैं। प्रभूत लोककथा साहित्य में बालकों ने अपने उपयोग की कहानियों को पढ़कर सदा आनन्द का अनुभव किया है।

लोककथाओं का निर्माण लोक बोलियों में हुआ है। पर सुविधा के लिए उन्हें सामान्यतया खड़ी बोली में रूपान्तरित करके प्रस्तुत किया गया है। खड़ी बोली में रूपान्तर करने में लोककथा के कुछ तत्त्व नष्ट हो जाते हैं। इस दृष्टि से मूल लोक बोली में भी कथाओं को प्रस्तुत किया जाता रहा है। विवेच्य काल में लक्ष्मीचन्द्र शुक्ल कृत 'एक ठो रहा अहीर' भोजपुरी में[1] प्रकाशित हुई थी। इसी प्रकार अन्य लोक बोलियों में भी बाल कहानियाँ प्रकाशित हुई थीं।

इन तीनों प्रकार की कहानियों का विस्तृत विवेचन निम्नांकित है—

मौलिक कहानियाँ

इस काल में मौलिक कहानियों के लिखने का प्रयास बाल साहित्यकारों द्वारा काफी अधिक हुआ। रायबर्न ने बाल कहानियों के सन्दर्भ में इस बात पर विशेष बल दिया है कि बच्चों की कहानियों का सम्बन्ध बालक के अपने जीवन से होना चाहिए। साथ ही जो बालक के चारों ओर घटित हो रहा है और अपने दैनिक जीवन में बालक जिन वस्तुओं के सम्पर्क में आता है, इसी सबके आधार पर कहानी निर्मित होनी चाहिए। फिर कहानी में कहने का ढंग स्पष्ट, सरल और सीधा होना चाहिए और सबसे बड़ी चीज कहानी में घटना की प्रधानता होनी चाहिए।[2]

कहानी कला के सैद्धांतिक पक्ष का अधिक विकास न होने पर भी तत्कालीन लेखकों में अनायास ये बातें आ गई हैं। वास्तव में उन्होंने इस बात पर ध्यान रखा था कि बाल कहानी रोचक हो, घटना और तथ्य प्रधान हो तथा बालक पसन्द कर सकें; ऐसी उसमें विशेषता हो। लेखकों की सजगता और सावधानी ने ही कहानियों में रोचकता पैदा की।

---

१. बालक : दिसम्बर, १९३५, पृ० २५६।

२. द टीचिंग आव द मदर टंग : (स्टोरी टेलिंग) : डब्ल्यू० एम० रायबर्न पृ० १६५।

फिर भी इन कहानियों की शैली पुरानी ही थी। शान्ति देवी श्रीवास्तव कृत 'बेला रानी' कहानी इस प्रकार है—

प्राचीन समय में एक राजा राज्य करता था। उस राजा के सात लड़के थे छै लड़कों के तो विवाह हो चुके थे मगर सबसे छोटा राजकुमार अभी कुँआरा ही था। छोटे कुमार की यह आदत थी कि वह अपनी सब भावजों के कामों में नुक्स निकाला करता था। एक दिन बड़ी भावज ने रसोई बनाई भावज ने पूछा कहिए कुँवर जी रसोई कैसी बनी ? किन्तु कुँवर जी तो अपनी आदत से लाचार थे। बोले—और तो सब ठीक है। मगर रोटियाँ सिकने में कसर रह गई। इससे भावज को बहुत दुःख हुआ वह बोलीं—तुम बेला रानी को ब्याह लाओ तो अच्छे-अच्छे भोजन खाने को मिलें। राजकुमार बोले—अब मैं बेला रानी को ले आऊँगा तभी मुँह दिखऊँगा। यह कहकर वह चल दिया।[1]

प्रस्तुत कहानी सामन्ती जीवन की दृढ़ प्रतिज्ञता और हठ सूचित करती है। वीर पूजा के देश भारत में ऐसी प्रतिज्ञा की बड़ी प्रशंसा की गई और कहानियों के रूप में बालकों तक को ये आदर्श बताए गए। वीर पूजा के आगे सामन्तों के अनेक दोषों को भी छोड़ दिया गया।

मौलिक कहानियों के अन्तर्गत भी ऐतिहासिक कहानियाँ देशप्रेम विषयक कहानियाँ, हास्य कहानियाँ तथा पौराणिक और सदाचार की या पशु-पक्षियों और कीड़े-मकोड़ों आदि से सम्बन्धित मनोरंजक कहानियाँ आएँगी। सभी कहानियों का उद्देश्य शिक्षात्मक है। अनाचारियों पर विजय पाने की शिक्षा, ईमानदार और सदाचारी बनने की शिक्षा शूरवीर साहसी बनने या देश-प्रेम रखने और देश के लिए प्राण तक न्योछावर करने की शिक्षा दी गई है।

कहानी स्वयं ही संदेशात्मक तत्त्व प्रेषित कर देती है, पर स्वातन्त्र्यपूर्व का उद्देश्यवादी लेखक बालपाठक पर निर्भर नहीं करता। वह अपनी ओर से निष्कर्ष देकर उसके उपदेश तत्त्व को उभार देता है। सुन्दरलाल द्विवेदी कृत 'नेक और बद' कहानी[2] में अच्छे और बुरे का स्वरूप प्रस्तुत करने के बाद लेखक निष्कर्ष रूप में यह दोहा कहता है—

करे बुराई सुख चहै, कैसे पावै कोय
रोपे बिरवा आक को, आम कहाँ ते होय ।।

---

१. बेला रानी : बालसखा : सितम्बर, १६३१।

२—नेक और बद : बालसखा : सितम्बर, १६३३।

सामान्यतया प्रत्येक कहानी में ऐसे निष्कर्ष गद्यांश के रूप में पाए जाते हैं जैसा श्रीमती त्रिवेणी देवी की 'ढपोरशंख की कहानी' में है—मनुष्य को स्वार्थी तथा बेईमान न होना चाहिए।[1]

ऐतिहासिक कहानियों में इतिहासवृत्त लिए गए थे जिनसे या तो कोई उपदेश मिलता था, या देशप्रेम संवर्द्धन में योग होता था। जहूरबख्श को ऐतिहासिक कहानियाँ लिखने में विशेष सफलता प्राप्त हुई थी। इस विषय की उनकी कई पुस्तकें हैं—इतिहास की कहानियाँ,[2] मनोहर ऐतिहासिक कहानियाँ[3] आदि।

देशप्रेम की कहानियाँ बड़ी जोशीली और उत्साहप्रद हैं। देश पर मर मिट की भावना ऐसी कहानियों में भरी हुई है। अशोक कृत 'देशप्रेम की कहानियाँ[4] वीरों की कहानियाँ[5] आदि ऐसे ही कहानी संग्रह हैं।

देशप्रेम की ये कहानियाँ विदेशी कथानकों पर भी हैं और भारतीय घटनाओं पर भी। ऐसे कथानकों को इतिहास से भी लिया गया है और कल्पना का पुट देकर उन्हें मनोरंजक बाल कहानी के रूप में भी प्रस्तुत किया गया है। अशोक कृत देशप्रेम की कहानियों में एक कहानी शिवाजी के साठ वर्षीय वीर सैनिक तानाजी के बलिदान पर है। तानाजी अपने पुत्र रामा का विवाह करने जा रहे थे। बारात द्वार से निकली ही थी कि शिवाजी का युद्ध में जाने का संदेश आ गया। विवाह का कार्य रोक दिया गया। तानाजी युद्ध में चले गए। बूढ़े मराठा सैनिक ने शिवाजी को जिता दिया पर स्वयं अमरगति पाई।

लेखक ने युद्धभूमि का बड़ा मार्मिक और सजीव वर्णन किया है—मुगल सेनापति राजा उदयनभानु सिंह और तानाजी का आमना-सामना था। उदय-भानु एक प्रौढ़ राजपूत और तानाजी साठ बरस का बूढ़ा। लेकिन लड़ने में तो तानाजी जैसे पच्चीस बरस के सिपाही थे। लड़ाई हुई। तानाजी बहुत वीरता के साथ लड़े पर अन्त में उदयभानु की तलवार ने उन्हें अमरगति दी। एक बार मुसलमान सेना खुशी के मारे उछल पड़ी। मराठा सिपाहियों पर वज्र गिरा लेकिन दूसरे ही क्षण हर-हर महादेव के घोष के साथ सूर्याजी बाकी सेना के साथ

---

१. ढपोरशंख की कहानी : बालसखा : जनवरी, १९३९।
२. गंगा पुस्तक माला कार्यालय, लखनऊ।
३. चाँद कार्यालय, इलाहाबाद,।
४. सस्ता साहित्य मंडल, : नई दिल्ली।
५. लेखक कुंवर कन्हैया जू : प्र० नन्हेंलाल मोदी : देवरी सागर।

किले पर चढ़ चुके थे। राजपूत और मुसलमानों की खुशी गायब हो गई। पाँसा पलट गया और थोड़ी ही देर में सूर्याजी ने उदयभानु को तानाजी के पास ही सुला दिया।

हास्य कहानियाँ इस युग में विशेष नहीं लिखी गईं। इसका कारण सम्भवत: यह था कि हास्य साहित्य के सक्षम साहित्यकार नहीं थे। फिर वह युग मानसिक निर्माण का था अर्थात बाल साहित्यकार ऐसा साहित्य देने में अधिक रुचि रखते थे जिससे बच्चों की ज्ञानवृद्धि हो, उनके व्यक्तित्व का निर्माण हो या उनका मानसिक विकास हो। इसलिए जिस हास्य की रचना की गई उसमें भी व्यंग्य को महत्त्व दिया गया है। सुन्दरलाल द्विवेदी कृत हास्य कहानी 'चमड़ी जाय पर दमड़ी न जाय' ऐसी ही है। इसमें एक कंजूस महाजन ईश्वर को एक पैसे के लिए धोखा देता है।[१]

फिर भी शुद्ध हास्य साहित्य का इस युग में अभाव नहीं है 'गज्जू और गंपू की कहानी[२] 'हँसी के चुटकुले'[३] और 'बुढ़िया पुरान'[४] आदि सरस हास्य कृतियाँ हैं।

अपने चारों ओर के जगत का परिचय देने के लिए भी कहानियों की रचना हुई। 'इल और बिल' ऐसी ही कहानी कृति है, जिसमें पाँच-छः वर्षों की अवस्था के बालकों के लिए पाँच रोचक कहानियाँ संकलित हैं।[५] यह बड़ी समझदारी से लिखी गई पुस्तिका है जिसमें छोटे बच्चों के स्तर पर न केवल भाषा का ही व्यवहार हुआ है, बल्कि विषय का भी उसी बोध स्तर पर प्रतिपादन है।

इल एक नन्हा कीड़ा है और बिल बतख का बच्चा। बिल अंडे के अन्दर बंद है, पर वह अंडे के बाहर निकलने लायक हो गया है। बिल के कहने पर इल अंडा खरोंचता है। उधर भीतर बिल चोंच मार देता है। अंडा फट जाता है, यहीं से बिल की बाह्य संसार की यात्रा प्रारम्भ होती है। इधर-उधर अनेक चक्कर मारता हुआ अन्त में वह तालाब में पहुँच जाता है जो उसका वास्तविक स्थान है।

१—बालसखा : अगस्त, १९३३।
२—ले० गणेशराम मिश्र : प्र० मित्रबंधु कार्यालय' जबलपुर।
३—ले० जोतिनप्रसाद : प्र० हिंदी पुस्तकालय मथुरा।
४—ले० महावीरप्रसाद गहमरी : प्र० पुस्तक मंदिर काशी।
५—ले० गणेशराम मिश्र : प्र० मित्रबंधु कार्यालय, जबलपुर।

इस कहानी को पढ़कर रामनरेश त्रिपाठी की 'हेमू की हिम्मत' अन्वेषण परक सरस कविता तथा प्रसिद्ध रूसी बाल साहित्य लेखक व० सुतेयेव की नन्हें बच्चों 'की कहानी कौन बोला म्याऊँ' (हू सेड म्यूँ)[१] की याद आ जाती है।

इल और बिल का कुछ अंश इस प्रकार है—'जब तितली उड़ गई तब बिल वहाँ से चला और आगे बढ़ा। वहाँ क्या देखता है कि एक दूसरी तितली फूल पर बैठना चाहती है। बिल उसे देखते ही पकड़ने के लिए झपटा।

ठीक इसी समय एक लड़के ने जो वहीं छिपा बैठा था, जाल डालकर उस तितली को पकड़ लिया। लड़के को देखकर बिल घबड़ा गया और जान लेकर भागा।[२]

सदाचार सिखाने के लिये या इतिहास भूगोल का परिचय देने के लिये अथवा दूसरों के महान जीवन से परिचय करने के लिए जीवनीपरक बाल कहानियाँ भी अनेक लिखी गईं। 'अच्छी चाल'[३] धर्मवीर हकीकतराय उपदेश की कहानियाँ आज ऐसी प्रभूत कृतियाँ हैं। इनसे बालकों को जीवन निर्माण में सहयोग मिलता है या ज्ञानवृद्धि होती है। इस प्रकार के साहित्य की सदा उपयोगिता है और कहानी के माध्यम से ऐसा साहित्य प्रदान करना कहानी विधा का विस्तार है।

स्वातन्त्र्य पूर्व बाल साहित्य निर्माण में बड़े साहित्यकारों ने भी सहर्ष भाग लिया था। बाल साहित्य का वह मिशनरी युग था। तभी प्रौढ़ साहित्य रचना में अत्यन्त ख्याति प्राप्त साहित्यकार नन्हें मुन्नों के लिए भी खुशी-खुशी साहित्य प्रदान कर रहे थे। इनमें प्रेमचन्द (कुत्ते की कहानी), भगवती प्रसाद वाजपेयी (आकाश पाताल की बातें), लाला भगवानदीन (बाल कथा माला) और सुदर्शन (पारस, फूलवती, सात कहानियाँ आदि) इत्यादि अनेक साहित्यकार हैं

कहानी मूलतः गद्य विधा है। बाल कहानियाँ भी गद्य में ही लिखी गई हैं। पर भारत कविताप्रधान देश रहा है। प्राचीन युग तो काव्य का था ही, जब गद्य में नाटक लिखे गए तो उनमें भी पद्य या काव्य का काफी व्यवहार हुआ। लोक कथाकारों ने भी इस शैली को अपनाया और कहानियों के बीच में काव्य खण्डों का प्रयोग किया। इससे कहानी में विशेष प्रकार की सरसता पैदा हो जाती है।

---

१. स्टोरीज ऐण्ड पिक्चर्स : प्र० प्रगति प्रकाशन, मास्को।

२. इल और बिल : गणेशराम मिश्र' पृ० २२-२३।

३. एक हिन्दी सेवक : प्र० बाल शिक्षा समिति, बांकीपुर, पटना।

कहानी में गद्यात्मक एकरसता नहीं आने पाती। कहानी की संवेदना भी बढ़ जाती है।

विवेच्य युग में थोड़ी सी ऐसी भी कहानियाँ लिखी गईं जिनमें कविता का प्रयोग किया गया है। इससे कहानी की मनोरंजकता बढ़ी ही है। उदाहरण के लिए ककड़ी और लकड़ी की कहानी १ को लिया जा सकता है। ककड़ी और लकड़ी में परस्पर विवाद होता है। दोनों अपना-अपना महत्त्व प्रतिपादित करती हैं। भावावेश में आने पर काव्य का व्यवहार होता है। जैसे ककड़ी कहती है--

दो कौड़ी की इज्जत तेरी मेरे आगे लकड़ी
पास हमारे देख तुझे मालिक ने गर्दन पकड़ी
फेंका ऐसा कसकर तुझको गिरी कहीं तू पट
कमर तुम्हारी चर चर बोली गई खोपड़ी फट।

कहानी में प्रयुक्त काव्यांश सुन्दर है—ये दोनों लकड़ियाँ खेत में पड़ी रहती है। अन्त में एक गरीब लकड़हारा दोनों को उठा ले जाता है और कहानी का अन्त हो जाता है।

यह अंश संवेदना ही नहीं जगाता, बाल पाठक के हृदय को भी उदात्त बनाता है। साथ ही अनजाने में बाल पाठक के मन में यह धारणा भी पैदा हो जाती है कि न कोई छोटा है और न बड़ा। सबकी अपनी-अपनी उपयोगिता है।

पर साधारणतया मौलिक कहानियाँ किसी न किसी प्रकार का उपदेश या सन्देश देने के लिए ही निर्मित हुई हैं 'नेकी का बदला' में यह सन्देश इस प्रकार निष्कर्ष रूप में है—'प्यारे बच्चों! ईमानदारी बड़ी चीज है जो ईमानदार है उसका दुनिया में बड़ा मान है। और बेईमान को न कोई पूछता है, न पास बैठने देता है। इसलिए ईमानदार बनो और पराए सोने को मिट्टी समझो। फिर देखो, दुनिया में तुम्हारी कितनी इज्जत होती है।' २

मौलिक कहानियों की इस रचना ने बाल पाठकों का काफी हद तक मनोरंजन किया। जिस प्रकार उस समय बाल कविताओं को पत्र-पत्रिकाओं में स्थान मिलता था, उसी प्रकार बाल कहानियों को भी। इन कहानियों की रचना भी पर्याप्त मात्रा में हुई। फिर भी यह सत्य है कि बालमन का पूरी तरह उद्घाटन करने वाली कहानियों का अभाव है। इसका कारण भी स्पष्ट है। तत्कालीन

---

१. ककड़ी और लकड़ी की कहानी : राजेन्द्र सिंह गौड़ बालसखा : जून, १६३२।

२. नेकी का बदला : सुदर्शन : बालसखा : जुलाई, १६२८।

साहित्यकारों के सामने कहानी रचना के मॉडल के रूप में लोक साहित्य था। उसी से सामान्यतया वे अनुप्राणित होते थे और उन्हीं कथाओं की शैली परोक्ष या प्रत्यक्ष ग्रहण कर लेते थे।

किन्तु आज की मौलिक सर्जनाशील कहानी को भी उन्हीं कहानियों ने तत्त्व प्रदान किए, यह भी सत्य है।

लोक कथाएँ

लोककथाएँ अतीतकाल की धरोहर हैं जो विश्व के सभी साहित्यों को प्राप्त है। लोक कथाएँ अपने में तो महत्त्वपूर्ण हैं ही, मौलिक साहित्य की सर्जना को भी प्रभावित करती हैं। प्रसिद्ध रूसी बाल साहित्य के रचयिता से० मारशाक के 'छोटा सा घर'[१] काव्य नाटक की कथा एक लोककथा ही है।

बंगला की 'सियार पंडित की पाठशाला'[२] काव्य नाटक भी लोककथा पर आधारित है। बच्चों के पढ़ने या अभिनय करने के लिए यह हास्य काव्य नाटक उपयुक्त हैं। बाल पाठकों के लिए समस्त लोककथाएँ उपयोगी नहीं हो सकतीं। चयन करके उन्हीं लोककथाओं को लिया जा सकता है जो बालमानस का मनोरंजन कर सकें या बाल पाठकों को प्रभावित कर सकें। इस सम्बन्ध में पराग के सम्पादक आनन्द प्रकाश जैन का मत है—'समाधान एक ही है फिल-हाल, कि परीकथाएँ (लोककथाएँ) जहाँ तक देशी विदेशी साहित्य में मौजूद हैं, उन्हें नमूनों के रूप में रखा जाए, नये-नये ढंग से चित्रित करके और रूपान्तर करके उन्हें आज के बच्चों का अधिक से अधिक मनोरंजन व ज्ञानवर्द्धन करने योग्य बनाया जाए—।'[३]

इस काल में बाल पत्र पत्रिकाओं में लोककथाओं का बहुत प्रकाशन हुआ। मौलिक कहानियाँ भी लोक कथा की शैली में लिखी गई। इन लोककथाओं में इस बात का पूरा ध्यान रखा गया है कि बालकों का उनसे मनोरंजन हो। खड़ी बोली में रूपान्तर किए बिना मूल भोजपुरी या बुन्देलखण्डी या किसी अन्य लोक

---

१. छोटा सा घर (ए लिटिल हाउस स्टुड आन ए हिल का रूपान्तर) से० मारशाक : प्र० वि० भा० प्रकाशन, मास्को : अनु० श्रीप्रसाद।
२. सन्देश : (बंगला बाल मासिक) मार्च-अप्रैल, १९६९।
३. बच्चों का साहित्य कैसा हो? : आनन्द प्रकाश जैन : धर्मयुग : १४ जून, १९६४।

बोली में कहानी देने का उद्देश्य भी यही प्रतीत होता है कि कहानी की अधिकतम सरसता बाल पाठक तक पहुँच जाय।

बाल पाठकों में साहस का संचार करने वाली एक मनोरंजक लोक कहानी का कुछ अंश इस प्रकार है—कुम्हार ने बाघ को लाकर घर के बाहर खूँटे से बाँध दिया और वह घर में आकर सो गया। सबेरा हुआ। कुम्हार ने बाहर आकर देखा तो गधे के बदले बाघ बँधा हुआ है। वह राजा के पास गया और बोला कि मैंने जीता बाघ पकड़कर बाँध रखा है। राजा उसे देखने आये। गाँव के बहुत से लोग भी तमाशा देखने आए। राजा ने बाघ से पूछा—मेरे बड़े-बड़े बहादुर सिपाही भी तुमको न पकड़ सके, इस कुम्हार ने तुम्हें कैसे पकड़ लिया।[१]

लोक कथाओं का फलक बड़ा विस्तृत है। एक ओर जहाँ सन्देशवाही लोक कथाएँ हैं, वही अतीत संस्कृति का परिचय देने वाली लोक कथाएँ भी हैं, साथ ही पशु-पक्षियों का आधार लेकर हास्य प्रधान लोक कथाएँ भी निर्मित हुई हैं। ऐसी एक लोक कथा 'सत्ता चूहे की कहानी' है। इस कहानी की भाषा बालकों के स्तर की है और उसमें व्यंजना की सहजता है—

'एक चूहा था। उसके सात पूँछें थीं। इससे उसका नाम सत्ता चूहा पड़ गया था।

जब वह बड़ा हुआ, उसकी माँ ने उसे स्कूल भेजा। स्कूल के लड़के उसकी सात पूँछें देखकर खूब हँसने लगे और—

सात पूँछ का सत्ता
कैसे पहने लत्ता

कह कर उसे खूब चिढ़ाने लगे।

चूहा बेचारा रोते-रोते घर आया और बोला—माँ मुझे स्कूल में सब सात पूँछ का सत्ता कहकर चिढ़ाते हैं। माँ ने कहा बेटा, नाई के पास जाकर एक पूँछ कटा डाल।

चूहा नाई के पास जाकर एक पूँछ कटा आया।

दूसरे दिन वह स्कूल में गया। उसकी छै पूँछे देखकर उसके साथी ताली बचा बचाकर कहने लगे—

छै पूँछ का छंगा
पढ़ने आया नंगा

---

१. शिशु : मार्च, १९२७।

सत्ता रोते-रोते फिर घर आया। माँ ने कहा—नाई से एक पूँछ और कटा ले।

अगले दिन व फिर। साथियों ने बड़े जोर से कहकहा लगाया और कहा—

पाँच पूँछ का पाँचो
आओ पोथी बाँचो।[१]

बच्चों के हँसने का यह क्रम आगे तक चलता है। कहानी बच्चों के स्कूली जीवन का अंग बन जाने से और आकर्षित हो गई है। फिर विस्तार से बात कहने की लोक कथा की शैली का भी इसमें व्यवहार हुआ है, जिससे सुबोधता आ गई है।

लोक कथाओं के ही अन्तर्गत परीकथाएँ और भूत प्रेतों तथा राक्षसों की कहानियाँ आ जाती हैं। रचनाकारों ने मौलिक परीकथाएँ और भूत-प्रेतों की कहानियों की भी सर्जना की है। परीकथाएँ आदिमानव की कल्पना की उड़ान है। यह कल्पना, सजीव कोमल और इतनी अधिक यथार्थ होती है कि बाल पाठक परियों में विश्वास तक करने लग जाते हैं। जीवन, सौन्दर्य और कल्पना, तीनों बातें इनमें पूर्णतया ओत-प्रोत रहती हैं।[२]

विवेच्य काल में परियों की कहानियों की भी रचना हुई, पर कम। इसका कारण यह है कि परियों की कल्पना अंग्रेजी साहित्य की देन है। भारतीय साहित्य में परियों की कल्पना नहीं है। अंग्रेजी बाल साहित्य की देखा-देखी ही यहाँ के बाल साहित्य में परियों का प्रवेश हुआ।

परी साहित्य की प्रमुख कृतियाँ हैं 'परियों की कहानियाँ'[३] 'परियों का दरबार'[४] 'परीदेश[५]' 'सोने की परी'[६] आदि।

परियों की ही भाँति मानव की कल्पना भूत-प्रेतों राक्षसों और बैतालों की है। मानव के कुत्सित और ऊलजलूल स्वरूप की यह कल्पना हो सकती है। इस कल्पना में भय का भी समावेश रहता है। इसलिए प्रौढ़ों के पठनार्थ इन

१. बानर : सितम्बर, १६३१।
२. द अनरिलक्टेंट इयर्स, पृ० ५६।
३. परियों की कहानियाँ : आनन्द कुमार : प्र० हिंदी मन्दिर, प्रयाग।
४. परियों का दरबार : बाबूलाल भार्गव : गंगा पुस्तक माला कार्यालय, लखनऊ।
५. परीदेश : रामचन्द्र द्विवेदी : आदर्श ग्रन्थ माला, दारागंज, प्रयाग।
६. सोने की परी : ले० व्यथित हृदय : हिंदी भवन, लाहौर।

कहानियों का चाहे जितना उपयोग हो, बालकों के पढ़ने के लिए ये कहानियाँ उपयुक्त नहीं हैं। इनके भयावह अमानवी पात्र और भयप्रद घटनाएँ बाल-पाठक पर अच्छा प्रभाव नहीं डालतीं—इसके विपरीत मानसिक आतंक पैदा करती हैं। यही कारण है कि शिक्षा शास्त्रीय दृष्टि से ऐसी कहानियों का विरोध हुआ है। रायबर्न ने लिखा है—'हम कभी-कभी यह अनुभव नहीं कर पाते कि जो कहानियाँ बच्चों को सुनाई जाती हैं उनको वे कितनी गम्भीरता से ग्रहण करते हैं और न यही अनुभव कर पाते हैं कि —उन सुनाई गई कहानियों के द्वारा कैसे वे अपना जीवन ढालते हैं। जब किसी व्यक्ति की हत्या हो जाती है अथवा वह दु:ख सहन करता है, तो बालक भी दु:ख सहन करने लगता है।[१]

ऐसी कहानियों से बच्चे कई-कई दिनों तक भयभीत रहते हैं। बाल मनोविज्ञान की दृष्टि से भूत-प्रेतों और राक्षसों की कहानियाँ आतंककारी प्रभाव उत्पन्न करती हैं जिससे बालक में मानसिक अस्वस्थता उत्पन्न होती है।

विवेच्यकाल में लिखी गई इस प्रकार की बाल कहानियाँ प्रशंसा का विषय नहीं। उस युग के बाल साहित्यकारों ने इस बाल मनोवैज्ञानिक तथ्य को कदाचित नहीं समझा था। 'खून की नदी' नामक कहानी का आतंककारी कुछ अंश प्रस्तुत है—'दो दिन में वे पहाड़ी पर जा पहुँचे। वहाँ का दृश्य विचित्र था। चारों ओर बड़ा घना जंगल था। वहाँ कोई जीव नहीं दिखाई पड़ता था। कहीं कहीं छोटी-छोटी झोपड़ियाँ बनी थीं। बीच में एक बड़ा भारी तालाब था। वह खून से लबालब भरा था। उसमें मनुष्यों की और जानवरों की असंख्य लाशें तैर रही थीं। तालाब के किनारे ढेर की ढेर हड्डियाँ पड़ी थीं।'[२]

यद्यपि इस कहानी में अन्त में अत्याचारी राक्षस पर विजय प्राप्त की गई है, पर अबोध और कोमल-मति बालपाठक पर इसका अनुरंजनकारी प्रभाव न पड़ेगा। प्रसन्नता की बात यही है कि ऐसी कहानियों की संख्या अधिक नहीं है। आनन्द कुमार कृत 'भूतों का किला' और विद्या भास्कर शुक्ल कृत 'खून का तालाब' जैसी इनी-गिनी कृतियाँ हैं।

हिन्दी बाल साहित्य में ऐसी कहानियों का अधिक प्रचलन कभी नहीं हुआ। पर यह धारा सूखी भी नहीं। किसी-न-किसी रूप में आज भी यह अस्वस्थ साहित्य धारा प्रवाहमान है।

---

१. द टीचिंग आफ द मदर टंग : डब्ल्यू० एम० रायबर्न, पृ० १६६।
२. राक्षसों की कहानियाँ : आनन्द कुमार : हिंदी मन्दिर प्रयाग।

अनूदित कहानियाँ

बालकों के लिए एक ओर जहाँ मौलिक कहानियों की रचना हुई, वहीं भारतीय और विदेशी भाषाओं से अनूदित कहानियाँ भी प्रकाशित की गईं। वास्तव में आधुनिक शैली की कहानियों के निर्माण में अनूदित कहानियों का विशेष योग है। भारत में तो बालकों के लिए लोककथाएँ या दादी नानी के किस्से ही थे। इन किस्सों का साहित्यिक मूल्य कम नहीं है। पर इनकी अर्थवत्ता सांकेतिक है और मानव जीवन पर घटाने पर व्यक्त होती है।

प्रारम्भ की बाल कहानियाँ भी इसी शैली पर लिखी गईं। अनन्तर अनुवाद हुए। इन अनुवादों में लोक कथाएँ भी थीं साथ ही बालक के वर्तमान जीवन से सम्बन्धित समस्याओं पर भी कहानियाँ थीं। इन्हीं कहानियों ने हिन्दी में नई मौलिक बाल कहानी को जन्म दिया। फिर भी कथानक की सशक्तता के कारण पुरानी लोक कथात्मक कहानियाँ अब भी निर्मित होती हैं तथा पढ़ी और सराही जाती हैं।

अनूदित बाल कहानियों की सामान्यतया तीन स्थितियाँ दिखाई देती हैं—

१. ज्यों-का-त्यों अनुवाद प्रस्तुत कर देना

२. कहानी का भारतीयकरण कर देना

३. कहानी को संक्षिप्त कर देना।

अंग्रेजी तथा भारतीय भाषाओं से अनेक बालोपयोगी कहानियों के अनुवाद हुए। इन अनुवादों में परिवेश के अनुकूल समानांतर भाषा देने का स्तुत्य प्रयास है। अनूदित होने पर भी कहानियाँ अनूदित नहीं प्रतीत होतीं, उनमें मौलिक कहानी का आस्वाद है। इसका कारण अनुवादक की सजगता है। यशस्वी साहित्यकार श्रीनाथ सिंह द्वारा अनूदित 'जादू का कंकड़' द्रष्टव्य है। मूलतः यह अंग्रेजी की कहानी है—

घोंघे ने दुबरी माली के साथ चाल की थी। बात यह थी कि वह बूढ़े जादूगर की दीवाल तक जाना चाहता था। इसलिए उसने दुबरी माली से ऐसी बात कही थी। लेकिन दुबरी माली इतना सीधा था कि घोंघे ने सोचा कि इसको बेवकूफ बनाना ठीक नहीं है। उसको दुबरी माली पर कुछ दया भी आई, इसलिए उसने कहा—मुझे अफसोस है कि मैं अपनी खुदगर्जी की वजह से तुमको यहाँ तक लिवा लाया। असल में मुझे जादू के कंकड़ के बारे में कुछ मालूम नहीं है, लेकिन मैं तुमको एक फायदे की बात बताऊँगा।[1]

---

१. जादू का कंकड़ : श्रीनाथ सिंह : बाल सखा : जनवरी, १६३६।

अंग्रेजी के अतिरिक्त गुजराती और बंगला की कहानियों के भी अनुवाद प्रस्तुत किये गये। उस समय के गुजराती के ख्यातनाम बाल साहित्यकार गिजू भाई की अनेक शिक्षाप्रद बाल कहानियाँ हिन्दी बाल पाठकों को पढ़ने को मिली। काशी नाथ त्रिवेदी गिजूभाई के प्रमुख अनुवादक थे।[1]

किसी विदेशी कहानी का भारतीयकरण करने में या आधार लेने में मूल कथानक को ही ग्रहण किया गया— स्थान, पात्रों के नाम आदि भारतीय कृत किए गये। 'आशा और सर्पराज की कहानी' में यही दृष्टि है।

उदाहरणार्थ—

'प्राचीन काल में हिमालय पर्वत की ओर एक पहाड़ी थी। इस पहाड़ी का नाम नाग पर्वत था। यह चारों ओर पर्वतों से घिरी हुई थी। इसके बीच में थोड़ी सी नीची जगह थी। यहीं पर एक बड़ा सुन्दर महल था जो पंचचूड़ के नाम से प्रसिद्ध था। वहीं पहाड़ों पर हजारों नाग रहा करते थे।'[2]

संक्षेपीकरण उन कहानियों का किया गया जो अधिक बड़ी थीं और संक्षिप्त करने में जिनके संदेश में किसी प्रकार की कमी नहीं आती थी। स्वातन्त्र्य पूर्व की बाल पत्रिकाओं में हेंस क्रिश्चियन ऐंडरसन याग्रिम की ऐसी संक्षिप्त की गई कहानियाँ प्राप्त हो जाएँगी।

अनूदित कहानियों के कतिपय संग्रह भी प्रकाशित हुए थे जिनमें शंकरदेव द्वारा अनूदित गिजूभाई का 'अन्तिम पाठ'[3] लल्ली प्रसाद द्वारा अनूदित मोहन लाल शोभन लाल गंगोपाध्याय का सोने का झरना[4] तथा जनार्दन झा द्वारा अनूदित ज्ञानेन्द्र मोहन दास कृत 'अद्‌भुत कहानियाँ'[5] मुख्यतया प्रसिद्ध हैं।

इस प्रकार तत्कालीन अनुवादों ने बाल कहानी को उपयुक्त दिशा प्रदान की।

उपन्यास

उपन्यास साहित्य की ऐसी विधा है जिसमें मानव जीवन यथार्थ रूप में अभि-

---

१. बाँसुरी वाला : गिजूभाई : अनु० काशीनाथ त्रिवेदी : बालसखा : अप्रैल, १६३४।

२. सोने का झरना : इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद।

३. अंतिम पाठ : पुस्तक भण्डार लहेरिया सराय, पटना।

४. सोने का झरना : इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद।

५. अद्‌भुत कहानियाँ : हिन्दी पुस्तक ऐजेंसी, कलकत्ता।

व्यक्ति पाता है। उसमें कविता की कल्पना ही नहीं जीवन के कठोर सत्य के भी दर्शन होते हैं।

जीवन का कठोर सत्य पुरुषों के साथ अधिक है। बालक का जीवन हँसी-खुशी उल्लास, उमंग और खेल-कूद का होता है। साहित्य की प्रायः सभी विधाओं में बालक के इसी जीवन को महत्त्व मिला है। बाल साहित्य के क्षेत्र में घोड़े कई प्रकार के दौड़ाए गये पर सफल वही हुए जिनका बालकों के रोजमर्रा के जीवन से सम्बन्ध था।

यथार्थ या वास्तविक सत्य के आग्रह के कारण ही खेलकूदी बालक का जीवन प्रारम्भ में उपन्यास का विशेष रूप न ले सका। लोक कथाएँ मौलिक कहानियाँ या अनूदित कहानियाँ ही बालक का विशेष रूप से मनोरंजन करती रहीं। इसका परिणाम यह हुआ कि स्वातंत्र्यपूर्व काल में बालकों के लिये उपन्यासों की विशेष रचना नहीं हुई।

इसका एक कारण बाल उपन्यास विधा से अपरिचय भी था। धीरे-धीरे हेडी केटी ने क्या किया (ह्वाट केटी डिड) आश्चर्य लोक में ऐलिस (ऐलिस इन द वंडर लैंड) जैसी कृतियों का बाल साहित्यकारों ने अध्ययन किया और बाल उपन्यास लिखने की ओर रुचि जगी।

फिर भी लिखे गये उपन्यासों की संख्या अधिक नहीं हैं। वैसे यह भी सत्य है कि स्वातंत्र्योत्तर काल में भी मौलिक श्रेष्ठ उपन्यास बहुत ही थोड़े हैं। बाल साहित्य रचना का काल आधुनिक साहित्य के विकास का काल है। इस कालखण्ड में प्रौढ़ों के लिए बहुत बड़ी संख्या में गम्भीरता के साथ उपन्यास रचना हुई। पर जैसा पहले कहा गया है बाल जीवन को उपन्यास का रूप देने की ओर कृतिकार अधिक प्रवृत्त न हो सके। इसका प्रमुख कारण बाल जीवन की सही जानकारी का अभाव ही रहा है और इस अभाव के रहते बाल उपन्यास नहीं लिखा जा सकता।

दूसरा कारण बाल साहित्य जगत द्वारा प्रोत्साहन न मिल पाना होगा। फिर भी विवेच्यकाल में छिट-पुट प्रयास हुए। इनमें धर्मवीर भारती कृत 'बालक प्रेम और परिया' उच्चकोटि की औपन्यासिक कृति है। इसका प्रकाशन बाल सखा में धारावाहिक हुआ था।

भारती साहित्य जगत में प्रयोगों के लिए प्रसिद्ध है। यह उपन्यास भी प्रयोग ही है, पर सफल प्रयोग। लेखक ने बाल मनोविज्ञान का पूरा आधार लिया है। बालक के सहज विश्वासों को उपन्यास में बड़ी सफलता के साथ प्रस्तुत किया गया है।

परियों का बालकों से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। योरोपीय बालकों के जीवन में परियाँ अधिक आईं। फिर भारतीय बाल साहित्य में भी परियों को स्थान मिला। परियाँ प्रेम प्रधान होती हैं। बालकों के पास वे उनकी निद्रावस्था में आती हैं। उपन्यास में बाल जीवन की भोली जिज्ञासाओं को बड़ी मनोरंजक शैली में प्रस्तुत किया गया है। भाषा और संवादों की शैली में बाल पाठकों के अनुकूल आकर्षण है। प्रस्तुत अंश द्रष्टव्य है—

'अच्छा, तो सुनो बेंदी।' प्रेम को एक नई बात सूझी—'तुम्हीं मेरे साथ चलो। वहाँ चलकर तुम हम सब लड़कों को कहानियाँ सुनाना। हमारी जुरावें भी सी देना। रात को लड़कों को बिस्तरों पर लिटाकर सुला भी देना। हममें से किसी को कभी बिस्तर पर लिटाकर सुलाया नहीं गया। सभी लड़के चाहते हैं कि हमारी एक माँ हो। चलो न बेंदी, तुम मेरे साथ चलो।[1]

धारावाहिक रूप में ही प्रकाशित एक अन्य औपन्यासिक कृति इस बाल मनोविज्ञान पर आधारित है कि बालकों में खोज की प्रवृत्ति होती है। विस्तृत आकाश और अनन्त सागर बालक की खोजीवृत्ति को जगाते रहते हैं। इससे प्रभावित होकर बालक अनजान गुफाओं में कुछ पाने की आशा से घुसने का साहस करते हैं समुद्र में गहरे जाकर मोती बटोरते हैं।

अनजान क्षितिजों की ओर दृष्टि ले जाने के लिए बालक वस्तुतः जिज्ञासु होते हैं। इसी आधार पर उन्हें साहस पूर्ण कृतियाँ प्रदान की गईं। 'हीरों का द्वीप' एक ऐसा ही साहस पूर्ण खोजवृत्ति का बाल उपन्यास है। इसमें इस बात को भी महत्त्व दिया गया कि तंत्रादि से व्यक्ति अपने को छोटा कर सकता है। वैज्ञानिक दृष्टि से यह बात भले ही सिद्ध न हो सके, पर बालकों के भावात्मक जगत में यह सही माना जाता है।

उपन्यास का कथानक सुरेश और रतन की प्रशांत महासागर में हीरों के टापू की खोज की प्रवृत्ति पर आधारित है। हीरे लाने के लिए रतन लामाओं के देश में जाकर मंत्र सीखता है और फिर उद्देश्य पूर्ति के लिए मंत्रबल से छोटा हो जाता है। एक उदाहरण है—

'जिन पहाड़ी लोगों ने सिंह से मेरे प्राण बचाए थे, उनके अड्डे पर से विदा होने के बाद एक पखवारा में बराबर चलता रहा। उसके बाद हिमालय पर्वत पर पहुँच गया। वहाँ पहुँच कर मैंने पर्वतराज की बड़ी स्तुति की। हाथ

---

१. बालसखा : फरवरी, १६४६।

जोड़कर भक्ति से भरे हुए स्वर में मैंने कहा—हे महाराज, पर्वतों के राजा, सब प्रकार के विघ्नों को नाश करने वाले। गणेश जी की माता गौरी तुम्हारी ही कन्या हैं। कितने देवता और मुनि तुम्हारे आश्रय में रह चुके हैं। हमारी मातृ-भूमि भारतवर्ष को तुमने सदा से अपने चरणों के समीप स्थान दे रखा है। उसी मातृभूमि की एक अधम संतान में भी हूँ। अपनी गोद में मुझे भी स्थान देने की कृपा करो।'[1]

उपन्यास रचना के क्षेत्र में थोड़े बहुत और भी प्रयास हुए जिनकी सीमा बाल पत्रिकाओं में धारावाहिक प्रकाशन तक ही रही। इन समस्त प्रयासों में भारती की कृति को सर्वोच्च स्थान दिया जा सकता है।

नाटक

नाटक साहित्य की ऐसी विधा है जिसका एक ओर साहित्य से सम्बन्ध है तो दूसरी ओर रंगमंच से। नाटक की सफलता की कसौटी रंगमंच ही है। रंगमंच यद्यपि नाटक का व्यावहारिक और वाह्य रूप है, पर एक अर्थ में रंग-मंच के ही अन्तर्गत नाटक के आभ्यांतर गुण संनिविष्ट हैं। अर्थात् नाटक शुद्ध साहित्य न होकर रंगमंचीय विधा भी है।

केवल पढ़ने के लिए लिखे गये नाटक नाट्य शैली की कहानियाँ या नाट्य रूप में प्रस्तुत किए गये विचार हैं। हिंदी में इस शैली का भी विकास हुआ और बालकों के लिए भी ऐसे नाटक लिखे गये जो खेलने के लिए कम और पढ़ने के लिए अधिक थे।

पर लेखकों का प्रयास फिर भी अभिनेय नाटकों की रचना के लिए ही था। यद्यपि ये नाटक उच्चकोटि के नहीं बन पड़े हैं। जिस मात्रा में काव्य और कहानियाँ लिखी गईं तथा जिस मात्रा में शैलीगत सफलता प्राप्त हुई, विशेष रूप से बाल काव्य के क्षेत्र में, वह नाटक में नहीं है। इसका मुख्य कारण बाल-रंगमंच का अभाव था। रंगमंच का स्वरूप समझे बिना नाट्य रचना करना संभव नहीं है। लेखक का रंगमंच से परिचित होना अनिवार्य है।

बाल नाटक रचना के लिए दूसरी आवश्यकता बालकों के जीवन से परिचित होना है। इसके अभाव में बालोपयोगी कथानक की कल्पना करना कठिन है। बालकों द्वारा नाटक के आदर्शन की विशिष्टता पृथक है। वे किन बातों को

---

१. हीरों का द्वीप : ठाकुरदत्त मिश्र : बालसखा, जनवरी, १९४५।

पसन्द करेंगे, नाटक में उन्हें क्या देखना रुचेगा--यह वही समझ सकता है जो बाल मनोविज्ञान या बाल जीवन की प्रकृति से परिचित हैं।

हिंदी बाल नाटक इन्हीं अभावों में लिखा गया। उसमें बाल जीवन की अभिव्यक्ति कम, बालकों के लिए बड़ों के द्वारा उपयोगी माने गए विचारों की अभिव्यक्ति अधिक है। बाल साहित्य रचना का यह ऐसा जटिल और कमजोर पक्ष है जो बाल साहित्य की सभी विधाओं में दिखाई देता है। इसी का परिणाम है कि जहाँ बाल साहित्य में बालक का व्यक्तित्व उभरना चाहिए था, वहाँ लेखक का व्यक्तित्व उभरता है।

स्वातन्त्र्यपूर्व नाटकों पर उपदेशात्मक मुख्य रूप से हावी है। लेखकों ने नाटक के द्वारा बालकों को शिक्षा देने का प्रयत्न किया है। इसके लिए इतिहास से ऐसे कथानक चुने गए या कथानक की कल्पना की गई जो बालकों को कोई सीख दे सकें। नरेन्द्र कृत 'राजपूत बालक' नाटक का ऐसा ही कथानक है जिसमें फत्ता नाम के एक वीर बालक की वीरता का वर्णन किया गया है। वीर बालक के साथ उसकी माँ, बहन और पत्नी सभी काम आ जाते हैं। नाटक का कुछ अंश इस प्रकार है—

फत्ता : माँ दुखी मत हो।—मैं इस समय अपनी जन्मभूमि जननी की गोद में खेलने के लिए जा रहा हूँ। देश की हजारों बहनों की लाज बचाने जा रहा हूँ। मैं मरने नहीं जा रहा हूँ। मरकर अकबर को जीतने जा रहा हूँ

× × × ×

माँ : बिना तिलक लिए हुए जा रहे हो। ठहरो मैं तुम्हारी स्त्री को भेजती हूँ। वह तुम्हें तिलक देगी यह हमारे कुल का नियम है।

× × × ×

बहन : आदमी एक दूसरे को प्यार क्यों नहीं करते। लड़ने से उन्हें...... ।

× × × ×

अकबर : (लाश की ओर देखकर) राजपूतों के बराबर क्या संसार में और भी कहीं वीर हैं? (आँखों में आँसू भरे हुए) इस वीर राजपूत बालक की मूर्ती दिल्ली के किले की फाटक पर रखी जाएगी। यही इसकी वीरता का पुरस्कार है।[1]

प्रस्तुत बाल एकांकी ऐतिहासिक कल्पना पर आधारित है। राजपूतों की शौर्य गाथा दिखाना नाटक का मुख्य लक्ष्य है। पर बहन के कथन—आदमी एक दूसरे को—में बालमनोविज्ञान अनजाने ही आ गया है।

१–राजपूत बालक : नरेंद्र : बानर, मार्च, १९३२।

नाटक के माध्यम से वीर, त्यागी, परिश्रमी या उत्साही बालकों का परिचय कराना नाटक के पाठकों या दर्शकों को उसी प्रकार का बनने के लिए संदेश देने के उद्देश्य से है। महाभारत कालीन भील बालक एकलव्य का जीवनवृत्त, उत्साह से ओतप्रोत है। वह पांडवों के साथ धनुर्विद्या सीखना चाहता था। पर द्रोणाचार्य ने उसे इसलिए शिक्षा नहीं दी, क्योंकि वह क्षत्रियकुमार न था। एकलव्य ने एकांत साधना की ओर सच्ची लगन तथा श्रम से अर्जुन से भी बढ़कर धनुर्विद्या का ज्ञान प्राप्त कर लिया। उसकी एकांत साधना और श्रम बालकों के लिए अनुकरणीय हैं। इसी उद्देश्य से एकलव्य के जीवन पर कविताएँ और नाटक लिखे गए। रामनरेश त्रिपाठी ने पाँच दृश्यों में ऐसा ही एकलव्य एकांकी लिखा। इसका प्रस्तुत अंश द्रष्टव्य है—

एकलव्य : (आप ही आप) हे भगवान्, तुमने मुझे शूद्र के घर में क्यों पैदा किया? मुझमें और उन राजपुत्रों के शरीर में क्या अन्तर है। और फिर गुरु द्रोण ऐसा ज्ञानवान भी भेदभाव रखे तो मेरे जैसे विद्या के पिपासुओं को दृढ़ तृप्ति किसके पास होगी? हाय, अब क्या करूँ। पिता जी को मैं बड़ा भरोसा देकर आया था। मेरा निष्फल लौटना सुनकर वे बहुत निराश होंगे।[१]

लेखन ने बालक के मुँह से सामाजिक व्यवस्था की बखिया उधिड़वा दी है। एक ओर एकांकी में मार्मिकता है तो साथ ही सामाजिक व्यवस्था के बदलने का संकेत भी है।

श्रीराम अग्रवाल कृत 'पुत्रोत्सर्ग'[२] नाटक में राजा मोरध्वज की साधु भक्ति की परीक्षा ली गई है। कृष्ण और अर्जुन क्रमशः साधु तथा सिंह रूप में परीक्षा लेने जाते हैं। साधु के कहने पर मोरध्वज जीवित पुत्र को सिंह को काटकर खिला देता है। अन्त में ईश्वरीय प्रभाव से बालक जी उठता है।

भक्ति के महत्व का प्रतिपादन करने वाले इस नाटक में भक्ति भाव जगाने की बात छोड़कर कुछ विशेष नहीं है।

मेलजोल की भावना पर आधारित सादिक अली का नाटक 'हमें मिलजुल

२–एकलव्य : रामनरेश त्रिपाठी, बानर, अगस्त, १९३५।

३–पुत्रोत्सर्ग : श्रीराम अग्रवाल : विद्यार्थी : ज्येष्ठ, १९८१ वि०।

कर रहना चाहिए[1] प्रकाशित हुआ था।

ये सभी बाल एकांकी कमोवेश एक ही तथ्य के सूचक हैं कि इनकी रचना बालकों के जीवन निर्माण के लिए हुई है। यह एक ऐसे पुराने दृष्टिकोण का परिचायक है जिसका बालकों के आभ्यान्तर—जीवन से सम्बन्ध नहीं है। इसे ऊपर से थोपे हुए आदर्श के रूप में ही लिया जा सकता है।

शिवनन्दन कपूर का 'राजकुमारी का हौवा'[2] महत्त्वपूर्ण एकांकी माना जा सकता है, क्योंकि यह काव्य नाटक है। पर ऐसे नाटकों की रचना की ओर तत्कालीन साहित्यकारों का ध्यान प्रायः नहीं गया। अस्तु इक्के-दुक्के ऐसे प्रयोगात्मक प्रयास सीमित होकर रह गए।

वस्तुतः नाटक का बालकों के लिए अत्यधिक उपयोग है। यह लोकानुकृति या अनुकरण पर आधारित है और मानव जीवन में सबसे अधिक अनुकरण की प्रवृत्ति बालक में होती है। ऐसी स्थिति में यह बालकों के मनोरंजन का सशक्त माध्यम है। साथ ही इसका शैक्षिक उपयोग भी है। इसे निम्नांकित रूपों में देखा जा सकता है—

(१) अवसर के अनुकूल आचरण करना सिखाना
(२) मानव स्वभाव और मानवचरित्र का अध्ययन कराना
(३) सम्यक् रीति से उच्चारण करने, बोलने, अभिनय करने तथा भावों को व्यक्त करने की कला का ज्ञान कराना[3]

स्वातन्त्र्यपूर्व नाटकों का इस अर्थ में फिर भी महत्त्व है कि इनके द्वारा नाटक की विधा आगे बढ़ी और भविष्य में लिखे जाने वाले अच्छे बाल एकांकियों के लिए भूमि तैयार हुई।

ज्ञानविकास और जीवन निर्माण का साहित्य

बाल्यावस्था ज्ञानविकास और जीवन निर्माण का काल है, इस तथ्य को सभी शिक्षाशास्त्री स्वीकार करते हैं। एक दृष्टि से इसमें किसी प्रकार की असंगति भी नहीं है। परंपरया स्वीकृत जीवन की चार अवस्थाओं में प्रथम अवस्था का सम्बन्ध ज्ञान, शिक्षा और जीवनपथ के सम्बन्ध में सही विचार बनाने से है। इस काल खण्ड के स्पष्ट दो भेद हो जाते हैं—ज्ञान प्राप्त करना और प्राप्त ज्ञान तथा अनुभव के आधार पर निर्णय कर सकने की योग्यता पैदा करना।

---

१. हमें मिलकर रहना चाहिए : सादिक अली : विद्यार्थी, जनवरी १६४१
२. राजकुमारी और हौवा : शिवनंदन कपूर : बालसखा, मार्च, १६३६।
३. भाषा की शिक्षा : सीताराम चतुर्वेदी : पृ० १८३।

बाल साहित्य में जहाँ काव्य, कहानी आदि की रचना हुई, वहीं ऐसे साहित्य की भी पर्याप्त रचना हुई, जिससे ये दो माँगें पूरी होती थीं। बालकों के ज्ञान-विस्तार के लिए पत्र-पत्रिकाओं में अधिकारी विद्वानों ने विभिन्न विषयों पर निबन्ध रचना की और अनुभव बढ़ाने तथा जीवतत्त्व ग्रहण करने के लिए बाल स्तर पर जीवनियाँ लिखी गईं।

साहित्य के द्वारा बालक के ज्ञान क्षितिज को विस्तृत करने का कार्य बड़े महत्त्व का है। बालक एक कोरे कागज की भाँति होता है। सबसे पहले उसकी चाक्षुष इन्द्रिय का विकास होता है। फिर ध्वनि और स्पर्शेन्दिय आदि का। इन इन्द्रियों के माध्यम से यद्यपि सीखने का क्रम प्रारंभ हो जाता है और पुस्तकीय ज्ञान के पहले बालक बहुत कुछ प्राप्त कर लेता है, पर सम्पूर्णज्ञान की तुलना में इसकी बड़ी इयत्ता नहीं है। इसी दृष्टि से बालक कोरा कागज या अत्यल्पज्ञ होता है जिसको ज्ञान प्रदान करने की कोई सीमा नहीं है। किसी भी विषय पर जिसकी ज्ञानकारी बालक को होनी चाहिए, ज्ञान प्रदान किया जा सकता है।

बालक को ज्ञान साहित्य प्रदान करने के तीन रूप हो सकते हैं—'पहला, लेखक का मुख्य उद्देश्य सूचना देना मात्र हो। दूसरा सूचना देने के साथ-साथ अपनी पुस्तक के विषय की व्याख्या भी करे। तीसरा, लेखक ऐसी पुस्तक लिखे जो सूचना और व्याख्या ही न दे (यद्यपि यह मुश्किल है) बल्कि साथ ही कृति साहित्य भी हो। [1]

हिन्दी में पहली और दूसरी किस्म का बाल साहित्य अधिक है, पर तीसरी किस्म का, जो वस्तुतः साहित्य है, कम है। वस्तुतः तीसरी पद्धति ही उपयुक्त पद्धति है।

'कंगारू का प्रस्तुत अंश दूसरी पद्धति के निकट है— कंगारू आस्ट्रेलिया में पाए जाते हैं। इनके अगले पैर बहुत छोटे होते हैं और पिछले बहुत बड़े और बहुत ही मजबूत। पंजों में बन्दरों की तरह नाखून नहीं होते। ये दौड़ते नहीं, बल्कि उछलते हुऐ भागते हैं। एक उछल में ये सात से दस गज तक चले जाते हैं। ये ऊँचाई में सात आठ फीट तक के और वजन में ढाई-ढाई मन के पाए जाते हैं। इनकी बालदार खाल बड़ी कीमती बिकती है। ये खाते तो हैं घास हीं फूस, पर इतने मजबूत होते हैं कि दो पैर टूट जाने पर भी जिन्दा रहते हैं। छाती में गोली लग जाने पर भी नहीं गिरते।'[2]

---

१. द अनरिलक्टेट इयरर्स : पृ० १६१।
२. कंगारू : बानर : दिसम्बर, १६३१।

उपर्युक्त अंश में यद्यपि मनोरंजकता है, पर तथ्यपरक अधिक है, साहित्यिक कम। पर निम्नांकित अंश ऐसा है जिसमें गया तीर्थ का वर्णन ही नहीं साहित्यिकता भी है। उपर्युक्त विवेचन के अनुसार यह तीसरी पद्धति की रचना है—

जब दादा जाने लगे तो मैंने कहा कि मैं भी पिंडा देखने चलूँगा। तो याद नहीं कि किसने कहा—बुचुन भैया को न जाना चाहिए, वहाँ केवल वे ही जाते हैं जिन्हें पिण्ड दान देना होता है। 'न दादा ने मना किया, न मैं माना। वहां गया और जिस तरह अम्मा पैसा लुटा लटाकर बाँट रही थीं देखकर जी खुश हो गया। उधर एक तरफ बाबा रामसुमेरण अपने कमण्डलु से बालू हटा रहे थे जिसमें अपने निकाले हुए पानी से नहाएँ—पानी जब निकला तो वे पसीने से नहा गए थे।[१]

मुन्शी कन्हैयालाल ने यात्रा सम्बन्धी अन्य वृत्त भी लिखे हैं।

गाँधी जी के विषय में रामनरेश त्रिपाठी द्वारा दिया गया परिचय साहित्यिक दृष्टि से सुन्दर उदाहरण है—गाँधी जी ने लाखों की दौलत छोड़ दी, अमीरों की सी रहन-सहन से हाथ खींच लिया। अपनी खुशी से उन्होंने गरीबी का बाना धारण किया। यह सब किसके लिये, अपने गरीब देश के करोड़ों भाइयों और बहनों के लिए। वे गरीब की तरह रहते हैं। गरीबी ही उनका भूषण है।[२]

उपर्युक्त अंश गाँधी जी का ही परिचय नहीं देता, उनके जीवन की सादगी की छाप भी मन पर छोड़ता है। साथ ही देश प्रेम और देश के लिए कार्य करने की प्रेरणा भी प्रदान करता है। यही निबन्ध की साहित्यिकता है।

तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में धरती, अन्तरिक्ष और धरती के भीतरी गर्भ की अनेक बातों पर जानकारी पूर्ण लेख प्रकाशित हुए।

अनन्त ज्ञान के विविध विषयों पर अनेक पुस्तकें भी प्रकाशित हुईं जिनमें अयोध्याप्रसाद झा कृत 'हवाई जहाज' चन्द्रशेखर शास्त्री कृत 'पृथ्वी और आकाश जगपति चतुर्वेदी कृत 'ज्ञान की पिटारी' रामदहिन मिश्र कृत 'भूकम्प' और लक्ष्मीनाथ शर्मा कृत 'जीव-जन्तु' आदि उल्लेखनीय कृतियाँ हैं।

ज्ञान विकास के लिए ही यात्रा और देश दर्शन विषयक अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुईं। ऐसी पुस्तकों की उपयोगिता बालकों के लिए निर्विवाद है। अयोध्याप्रसाद कृत 'विचित्र दुनिया' कृपानाथ मिश्र कृत बालकों का योरोप आदि के साथ रामनारायण मिश्र ने लंका, ईराक, बर्मा, फिनलैंड, न्यूजीलैंड, कश्मीर

१—गया तीर्थ : मुंशी कन्हैयालाल : बालसखा : अगस्त, १९३२।

२—गाँधी जयंती : बानर, अक्टूबर, १९३९।

ग्वालियर आदि देश विदेश के परिचय की अनेक पुस्तकें लिखकर बालकों को देश विदेश का परिचय दिया ।

जीवन निर्माण

यह पहले ही बताया जा चुका है कि बाल्यावस्था को जीवन निर्माण के लिए भी उपयोगी माना गया है। वैसे यह सत्य है कि यदि बालक को ऐसी पुस्तकें न मिलें, तब भी उसके जीवन का निर्माण होगा ही, पर बाल साहित्य की पुस्तकें निर्माण में बौद्धिक रूप से सहायक होती हैं । ऐसी पुस्तकें मनोरंजन भी प्रदान करती हैं और जानकारी भी बढ़ाती है। कभी-कभी कोई कृति किसी पाठक के जीवन में आमूल परिवर्तन कर देती है।

जीवनी मूलक साहित्य इसके लिए अधिक उपयोगी माना गया है। जीवनी मूलक साहित्य जीवन चरित्र, जीवनी संग्रह और आत्म चरित तीनों रूपों में मिलता है।

विवेच्यकाल में इस ओर लेखकों का विशेष ध्यान रहा है। देवताओं ऋषि महर्षियों महापुरुषों और महान् नेताओं के विषय में ऐसी अनेक पुस्तकें बाल पाठकों को मिलीं। इनमें कुछ हैं—रामनरेश त्रिपाठी कृत 'अशोक' सैयद कासिम अली कृत 'हजरत उमर' प्रेमचन्द कृत 'दुर्गादास' प्रतापनारायण चतुर्वेदी कृत 'गुरुगोविंद सिंह' दिनकर गंगाधर गोरे कृत 'छत्रपति शिवाजी और महाराणा प्रताप' बेचू नारायण कृत 'राजा राम मोहन राय, रामनारायण मिश्र कृत 'देश निर्माता' व्यथित हृदय कृत 'नेताओं की कहानियाँ, मन्नन द्विवेदी कृत 'भारत के प्रसिद्ध पुरुष' जगन्नाथ प्रसाद कृत 'विहार के रत्न' कृष्णदेव उपाध्याय कृत 'चारु चरितावली' इत्यादि ।

जीवनीमूलक पुस्तकें कितनी काम की होती हैं। इस विषय में प्रेमचन्द कृत 'दुर्गादास की भूमिका' 'महत्वपूर्ण है—'बालकों के लिए राष्ट्र के सपूतों के चरित्र से बढ़कर उपयोगी साहित्य का कोई दूसरा अंग नहीं है। इनसे उनका चरित्र ही बलवान नहीं होता, उनमें राष्ट्रप्रेम और साहस का संचार भी होता है।'

जीवनी मूलक पुस्तक किसी भी महापुरुष की हो वह प्रभावित किए बिना नहीं रहती। अच्छे व्यक्तियों की जीवनियाँ बालकों में अच्छे गुणों का स्वभावतः संचार करती हैं। उदाहरण के लिए दुर्गादास का यह अंश दुर्गादास तथा अन्य राष्ट्रप्रेम की वीरता से बालकों को भी प्रभावित करेगा और वे राष्ट्रप्रेम तथा देशप्रेम के भाव सीखेंगे—

'दिन लगभग दोपहर बाकी था। एक भेदिए ने मुगल सेना के आने के सामचार कहे। दुर्गादास ने प्रसन्न होकर राजपूत वीरों को सजग कर दिया। थोड़ी ही देर में सामने से बादशाही झण्डा फहराते हुए मुगल सरदार मुहम्मद खाँ के साथ एक भारी मुसलमानी दल आता दिखाई पड़ा। ज्यों ही यह सेना पहाड़ी दर्रे में आई, दुर्गादास ने डंके पर चोट मारी, इधर वीर राजपूत जयघोष करते हुए अपने शत्रुओं पर टूट पड़े। उधर साहसी वीर गम्भीर सिंह और तेजकरण दोनों ने झपट कर बादशाही झण्डा नीचे गिराया। एक ने मोहम्मद खाँ को पकड़ा और दूसरे ने राजपूती झण्डा खड़ा किया।'[1]

उपसंहार

स्वातन्त्र्यपूर्व हिन्दी बाल साहित्य की यह यात्रा बड़ी सुखद और उत्साहप्रद है। यद्यपि इसके विकास की सीमाएँ रही हैं, फिर भी प्रारम्भ और निर्वाह की दृष्टि से इसका बड़ा महत्त्व है। वास्तव में बाल साहित्य का विकास इसी क्रम में होता तो आगे चलकर आनेवाला गतिरोध बाल साहित्य में न दिखाई देता और न कुछ व्यक्तियों का इस पर एकाधिकार होने पाता।

इस यात्रा की सीमा यह थी कि जितना काव्य के विकास पर इसका बल था, उतना और किसी विधा पर नहीं। कहानियाँ यद्यपि काफी लिखी गईं पर वे लोक कथाओं की परम्परा से प्राप्त अधिक थीं। मौलिक कहानियाँ भी अधिकशांत लोक कहानी की शैली के दायरे में रहीं। आगे चलकर बालकों के यथार्थ जीवन से लेकर अनेक सुन्दर कहानियाँ लिखी गईं, पर ऐसी कहानियों का विकास स्वातन्त्र्यपूर्व युग में सामान्यतः नहीं हुआ।

नाट्य और उपन्यास विधा भी इस युग में अधिक विकसित नहीं हुई। परिचयात्मक निबन्ध अच्छे लिखे गए जिनका स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी बाल साहित्य में अभाव दिखाई देता है। इन विविध निबन्धों ने तत्कालीन बाल पाठकों के ज्ञान का पर्याप्त विस्तार किया होगा। सम्भवतः इन निबन्धों के कारण स्वातन्त्र्यपूर्व बाल पाठक का ज्ञान स्वातन्त्र्योत्तर बाल पाठक के ज्ञान से अधिक रहा होगा।

बाल साहित्य के योग में बाल पत्रिकाओं का भी बहुत अधिक योग रहा। लगभग चालीस पत्रिकाओं ने बाल साहित्य का भण्डार भरा। आज उस युग की एक मात्र 'बालक' पत्रिका रह गई है।

अपनी सीमा में यह यात्रा पूर्ण है।

---

१. दुर्गादास : पृ० ४४।

स्वातन्त्र्योत्तर बालसाहित्य :
विश्लेषण और विवेचन

पृष्ठिभूमि—स्वातन्त्र्यपूर्व और स्वातन्त्र्योतर—हिंदी बाल साहित्य की दो इकाइयाँ या दो ऐतिहासिक खण्ड से बनने लगते हैं। बीसवीं शती के प्रारम्भ से हिन्दी बाल साहित्य का विकास होता है इसके पूर्व की कड़ियों में समय की दूरियाँ हैं। साथ ही स्पष्ट प्रमाणों का अभाव है।

बीसवीं शती का प्रारम्भ आधुनिक युग के रूप में सामन आता है। आज का बाल साहित्य आधुनिक युग की ही देन है।

उपलब्ध बाल साहित्य भी दो खंडों में विवेच्य हो सकता है। प्रारम्भ से सन् १९४७ या स्वातन्त्र्य काल तक एक खंड और स्वातन्त्र्योतर दूसरा खंड। इन दो काव्य खंडों के बाल साहित्य में कुछ निश्चित पार्थक्य है। दूसरे शब्दों में बाल साहित्य की एक ही धारा दो रूपों में विकसित होती है। यदि हिन्दी बाल साहित्य के आगे के किसी काल खंड की कल्पना की जाय तो वह सन् ७०-७१ के आस-पास विकसित होता प्रतीत होगा। लगभग इसी समय से बाल साहित्य के विषय में मूल्यांकन और चिंतन की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है। चिंतन को प्रेरणा देनेवाले दो अनुसन्धान प्रबन्ध[१] इस समय तक प्रस्तुत हो चुके हैं। कुछ अनुसन्धानपूर्ण विस्तृत निबन्ध भी इस समय तक आ जाते हैं[२] और राजस्थान एकादमी से 'मधुमती'[३] मासिक का हिंदी बाल साहित्य विशेषांक प्रकाशित हो जाता है तथा

---

१. 'हिन्दी बाल साहित्य : एक अध्ययन' : डॉ० हरिकृष्ण देवसरे : तथा 'हिन्दी बाल साहित्य का विवेचनात्मक अध्ययन डॉ० मस्तराम कपूर 'उर्मिल'।

२. 'स्वातन्त्र्योत्तर बाल साहित्य' : आलोचना त्रैमासिक का स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य अंक : जनवरी ६६ तथा 'बालकाव्य' हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास : भाग १० : पृ० ४५५ : डॉ० रत्नाकर पाण्डेय।

३. मधुमती : जुलाई अगस्त : १९६७।

केन्द्रीय सरकार की ओर से राइटिंग फार चिल्ड्रेन[1] पुस्तिका भी आ जाती है। छिटपुट लेखन होता है सो अलग।

सर्जना के साथ-साथ चिंतन का प्रारम्भ बाल साहित्य के विकास की स्वस्थ दिशा है।

बाल साहित्य रचना की दृष्टि में भी अन्तर आता है। बाल साहित्य सर्जकों की जो मिशनरी दृष्टि स्वातन्त्र्यपूर्व काल में बनी थी, स्वातन्त्र्योत्तर काल में क्रमशः खंडित होती जाती है। बाल काव्य की रचना प्रक्रिया में तो धीरे-धीरे हलकापन भी आ जाता है। अनेक अकुशल हाथों के द्वारा बाल काव्य विधा का दुरुपयोग होता है। फलस्वरूप बाल पाठकों का बाल काव्य के प्रति आकर्षण भी कम हो जाता है। आगे चलकर तो स्थिति यहाँ तक बदलती है कि बाल पत्रिकाएँ बिना कविता के भी अंक निकालने लगती हैं और एक कविता विरोधी धारणा का सूत्रपात सा होने लगता है।

दूसरा विधागत परिवर्तन यह भी लक्षित होता है कि पूर्वकाल में काव्य रचना की अधिकता थी स्वातन्त्र्योत्तर काल में बाल काव्य सीमित होता चला जाता हैं, यद्यपि बाल कहानी में परिष्कार होता है। इस प्रकार कहानी भूतप्रेतों, परियो तथा सामन्ती जीवन से कटकर समाज और बालकों मे जुड़ती है। बाल कहानी को नवीन और सही मार्ग मिल जाता है।

बाल नाटक स्वातन्त्र्यपूर्व काल में निर्मित हुए थे, पर वे अत्यन्त साधारण कोटि के थे। स्वातन्त्र्योत्तर काल में बाल नाटक का भी, प्रशंसनीय विकास हुआ पराग ने बाल नाटक प्रतियोगिता द्वारा इस विकास में चार चाँद लगा दिए। प्रतियोगिता के माध्यम से उसने तीन श्रेष्ठ नाटकों को पुरस्कार दिए और अनेक अच्छे नाटक प्रस्तुत किए। अच्छे नाटकों की रचना की पृष्ठभूमि भी तैयार हुई।

किन्तु कुछ समय बाद इस विधा में शिथिलता आई और श्रेष्ठ नाटकों का अभाव होने लगा।

बाल पाठकों को जानकारी प्रदान करने वाले निबन्धों की रचना भी क्षीण होती गई। पर बाल उपन्यास का तीव्रता के साथ विकास हुआ। अनुवाद, भावान्तर और अच्छे मौलिक उपन्यासों की भी रचना हुई।

इस बाल में मुख्यतः बाल कथा साहित्य की वृद्धि अधिक हुई—कहानियों की और उपन्यासों की। पर बाल साहित्य की समग्र रचना भावना का जोश खरोश कम होता गया। पूर्वकाल में जहाँ बड़ों ने भी बाल साहित्य के विकास में योग दिया था, इस समय आकर वे अलग हो गए। उनके विचार से बाल साहित्य

---

1. **राइटिंग फार चिल्ड्रेन : बाल भवन ऐन्ड नेशनल चिल्ड्रेन्स म्यूजियम, नई दिल्ली।**

रचना के साथ उनका नाम जुड़ने पर उनकी लोकप्रियता पर प्रभाव पड़ता था।[1]

बाल काव्य के अन्तर्गत शिशु गीतों की इस युग में प्रशंसनीय रचना हुई। इसका श्रेय भी पराग को ही देना होगा। नन्हें बच्चों के लिए उसने शिशु गीतों का स्तम्भ ही प्रारम्भ कर दिया। फिर तो अन्य बाल पत्रिकाओं ने भी शिशु गीतों को महत्त्व दिया।

बाल कविता के क्षेत्र में भी कुछ सही प्रयोग सामने आए। फिर भी काव्य के क्षेत्र में रचना के लिए अधिक प्रोत्साहन न मिल सका।

विज्ञान के यान्त्रिक विकास ने भी बाल साहित्य को प्रभावित किया। बढ़िया छपाई और सुन्दर रंग-बिरंगे आधुनिक शैली के चित्रों के प्रति बाल पाठक इतने अधिक आकर्षित हुए कि इसकी व्यवस्था करने में असमर्थ पत्रिकाओं की क्रमशः उपेक्षा होती गई। पूर्व काल में लगभग चालीस पत्रिकाएँ थीं बाद में एक बालक को छोड़कर धीरे-धीरे वे सभी बन्द हो गईं। बाल भारती, पराग नन्दन और चंपक जैसी स्पर्धा में टिकने वाली बाल पत्रिकाओं का उदय हुआ। मिलिंद तथा अन्य पत्रिकाएँ सीमित साधनों के कारण अधिक लोकप्रिय नहीं हुई हैं।

संक्षेप में स्वातन्त्र्योत्तर बाल साहित्य का यही अपेक्षित विवेचन है। इस काल खण्ड की अपनी दिशा है। पूर्व के काल खण्ड से जुड़े होने पर भी यह भावी बाल साहित्य की दिशा निर्धारित कर रहा है।

विधागत अध्ययन आगे प्रस्तुत है।

बाल काव्य

काव्य की अनेक प्रकार से विवेचना और परिभाषा की गई है। बड़ों के लिए लिखे गए काव्य के विवेचन से तो अनके मत-मतान्त जुड़े हैं।

परिभाषा की दृष्टि से बाल काव्य भी परिभाष्य है और इस सम्बन्ध में मतमतान्तर भी उपस्थित किए जा सकते हैं, किन्तु बड़ों के काव्य की भाँति नहीं। दूसरीम हत्त्वपूर्ण•बात बाल काव्य के सम्बन्ध में यह है कि यह प्रायः छन्द-बद्ध रहा है। मुक्त छन्द में भी बालकों के लिए काव्य रचना के प्रयास हुए हैं, पर अत्यन्त•विरल। कारण यह है कि बाल काव्य का तत्त्व गेयता है। मुक्त छन्द में भावना या विचारों के स्तर पर निर्मित काव्य का आभोग संगीतप्रिय बालकों के लिए सहज नहीं।

---

१. दिनमान : १६ नवम्बर, १९६९, बाल साहित्य, चमकदार अस्तबल - कमजोर घोड़े।

पर छन्द काव्य का बाह्य पक्ष है। स्वातन्त्र्य पूर्व और स्वातन्त्र्योत्तर बाल काव्य में छन्द का विशेष परिवर्तन नहीं है। कुछ छन्दगत प्रयोग अवश्य हुए हैं जिसका विवेचन आगे होगा।

काव्य के आभ्यन्तर पक्ष में वे विचार या भावनाएँ और अनुभूतियाँ विवेच्य होती हैं, जिनसे काव्य या साहित्य की विधा में ऐतिहासिक परिवर्तन आता है। बाल काव्य का इतिहास निर्माण इन्हीं तथ्यों के आधार पर क्रमशः हुआ है। समयानुसार इनमें परिवर्तन भी होता रहा है जो साहित्य रचना का स्वस्थ लक्षण है।

भारत सन् १९४७ ई० में एक नवीन ऐतिहासिक काल में प्रवेश करता है। लम्बी परतन्त्रता के बाद देश को स्वतन्त्रता प्राप्त होती है। स्वातन्त्र्य पूर्व के बाल काव्यकारों ने स्वतन्त्रता की आकांक्षा व्यक्त की थी, देश के भावी कर्णधार बालकों को स्वतन्त्रता की ऐतिहासिक माँग से परिचित कराया था और इस माँग को पूरा करने की भावना बालकों के मन में उत्पन्न की थी—

जिस जन्मभूमि में जन्म लिया
उसके गौरव का ध्यान रहे
जो खान गुणों की कहलाती
उसकी महिमा का मान रहे
वह मातृभूमि है आज दुखी
हम सब को इसका ज्ञान रहे
उसको आजाद बनाना है
बस मन में यह अरमान रहे।[1]

और देश के सामूहिक प्रयास से इस अरमान की पूर्ति हुई। भारत स्वतन्त्र हुआ। जन-जन प्रसन्न हो उठा। राष्ट्रीय चेतना देश के कण-कण में व्याप्त हो गई। बाल काव्य भी इस चेतना को गा उठा। इस प्रकार स्वातन्त्र्योत्तर बाल काव्य का प्रारम्भ राष्ट्रीयता की अनुभूति स्वातन्त्र्य प्राप्ति का उल्लास अथवा समष्टि में राष्ट्रीय चेतना से ओतप्रोत है। अतः राष्ट्रीय चेतना इस युग के बाल काव्य का प्रमुख तत्त्व है।

राष्ट्रीय चेतना

हिन्दी बाल काव्य में राष्ट्रीय चेतना का स्वर प्रारम्भ से ही प्राप्त होने

---

१. अरमान (वीरेंद्र मालवीय) : वानर, अप्रैल, १९३४।

लगता है। स्वातन्त्र्य पूर्व की राष्ट्रीय चेतना विदेशी शासकों के प्रति आक्रोश और विरोध के रूप में थी, स्वातन्त्र्योत्तर काल में इसका विकास देश प्रेम, भारत गुणगान अथवा राष्ट्रीय पर्वों के सन्दर्भ में हुआ। स्वतन्त्रता दिवस और गणतन्त्र दिवस देश में राष्ट्रीय पर्व के रूप में मनाए जाते हैं। इस पर राष्ट्रीय भावनाओं से ओत प्रोत प्रभूत काव्य सृजित होता है।

यदि प्रारम्भ से विवेच्य काल तक के समस्त राष्ट्रीय बाल काव्य को एकत्र किया जाय तो महत्त्व पूर्ण संग्रह प्रस्तुत हो जाय।

भावना के स्तर पर राष्ट्र की रक्षा एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। राष्ट्र के प्रति भावनात्मक सम्बन्ध होने से ही राष्ट्र रक्षा सम्भव है। अतः यह भावना बालकों में प्रारम्भ से ही पैदा की गई। रामचन्द्र वर्मा की निम्नांकित कविता में यह स्वर मुखर है—

आजाद देश के हम वासी
भारत माता हमको प्यारी
हम बच्चे हैं हम सैनिक हैं
हमको स्वतन्त्रता है प्यारी
हम अपना सब कुछ तन मन धन
भारत के हित अर्पित करते
हम अपना यह सारा जीवन
माता की गोदी में धरते। [१]

राष्ट्रीय चेतना के रूप में स्वतन्त्रता के संघर्ष की स्मृतियाँ भी जगाने की चेष्टा की गई और उसको पाने के लिए किए गए संघर्ष की गाथा बताई गई। बाल पाठक स्वतन्त्रता के पहले के युग में पहुँच गया, जहाँ विदेशियों के प्रति आक्रोश था और कुछ कर गुजरने की तीव्र आकांक्षा थी—

जब देश न था आजाद
विदेशी शासक थे आबाद
देश को करते थे बरबाद
आग जल उट्ठी
आया आँखों में क्रोध
हुआ जिस दिन भारत को बोध

१. बालसखा : जुलाई, १६४८।

किया निश्चय लेंगे प्रतिशोध
बँध गई मुट्ठी। [१]

पन्द्रह अगस्त का राष्ट्रीय पर्व सोल्लास सर्वत्र मनाया जाता है। बालकों की संस्थाओं में इसका विशेष महत्त्व रहता है। इसको मनाया जाता देखकर बालक प्रसन्नता का अनुभव करते हैं। विनोदचन्द्र पाण्डेय स्वतन्त्रता दिवस के उल्लास में लिखते हैं —

स्वतन्त्रता का दिवस हर्ष से
हम सब आज मनाएँ
मिली देश को मुक्ति इसी दिन
एक नया युग आया
उठी उमंगें हृदय-हृदय में
सब में मोद समाया
पुण्य पर्व पर पुलकित होकर
गीत विजय के गाएँ
स्वतन्त्रता का दिवस हर्ष से
हम सब आज मनाएँ। [२]

गत एक सहस्र वर्षों की दासता के बाद प्राप्त स्वतन्त्रता इतनी प्रिय और महत्त्वपूर्ण रही है कि इस राष्ट्रीय चेतना ने प्रायः प्रत्येक कवि को प्रभावित किया फलस्वरूप बाल बोध के स्तर पर सुन्दर और प्रमुख राष्ट्रीय काव्य निर्मित हुआ। इस सन्दर्भ में प्रसिद्ध गीतकार श्री वीरेन्द्र मिश्र का निम्नांकित अभियान गीत उल्लेख्य है—

एक कदम, दो कदम, चार कदम !
आगे बढ़ते जाएँ हिम्मतदार कदम !
हमसे जो टकराने आए इतना नहीं किसी में दम !
आँधी आए पूरब से या
पश्चिम से तूफान उठे
पाँच बढ़े तो पूजे सागर

---

१. बालसखा : अगस्त, १९६७।

२. स्वतन्त्रता दिवस (विनोदचन्द्र पाण्डेय : विनोद) बाल सखा : अगस्त, १९६६।

पर्वत लोहा मान उठे
जो भी दुश्मन हाथ उठाए हारे हमसे जनम-जनम ![1]

बालकाव्य के रूप में राष्ट्रीय चेतना मूलक काव्य की अधिकता रही है। आज भी बाल पत्रिकाएँ गणतन्त्रदिवस अंक या स्वतन्त्रता और स्वाधीनता दिवस अंक उत्साह पूर्वक प्रकाशित करती हैं। इसका प्रमुख कारण यह दृष्टिकोण है कि बालकों में राष्ट्रीयता की भावना प्रारम्भ से ही पैदा कर देनी चाहिए। राष्ट्रीयता की सर्वोच्च भावना का विकास होने पर भावात्मक एकता भी पैदा हो जाती है। इस दृष्टि से राष्ट्रीय भावनाओं से पूर्ण बालकाव्य की उपयोगिता स्वयं सिद्ध है।

बालकाव्य में प्रकृति सौन्दर्य

प्रकृति मानव को सदा से प्रभावित करती आई है। जीवन के चारों ओर फैली हुई प्रकृति से मानव ने अत्यधिक आनन्द का अनुभव किया है। बच्चे भी चेतना के विकास के साथ-साथ प्रकृति का आस्वाद ग्रहण करते हैं। खिले हुए फूलों को देखकर वे हर्ष विभोर हो जाते हैं। आँधी, वर्षा, बिजली या मेघ के विविध रूपों में भी उन्हें कम आनन्द नहीं मिलता। वास्तव में बालक जैसे-जैसे बड़ा होता जाता है वह प्रकृति से भी दूर हटता जाता है और उसी क्रम में जीवन के आनन्द को भी कम करता जाता है। अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध कवि वर्ड्स वर्थ ने मानव की इसी स्थिति पर दुःख व्यक्त किया था जब उसने कहा था कि हम सासांरिक अधिक हो गए हैं, दुनियावी कार्यों में अपनी शक्ति क्षीण करते हैं और उस प्रकृति में कुछ भी देखने की चेष्टा नहीं करते, जो हमारे लिए है।[2]

बालकों का प्रकृति से सहज सम्बन्ध सा दिखाई देता है। पर प्रकृति के प्रति यह आग्रह देशगत भी है। योरोपीय बालकाव्य में प्रकृति का उतना विस्तार नहीं है जितना भारतीय और विशेषतः हिंदी बाल काव्य में बँगला बालकाव्य में रवीन्द्रनाथ टैगोर ने अनेक प्रकृति विषयक बाल कविताओं की रचना की है। पर इसके अतिरिक्त भी उसके सजीव प्रकृति के विविध रूपों का परिदर्शन करानेवाली उनकी अनेक कविताएँ हैं।[3]

राष्ट्रीय बाल काव्य की ही भाँति प्रकृति विषयक बालकाव्य भी प्रभूत मात्रा

---

१. प्रयाण गीत : वीरेन्द्र मिश्र : पराग, अगस्त, १९६५।

२. द वर्ल्ड इज टू मच विद अस (कविता) : वर्ड्स वर्थ।

३. विष्टि पोड़े टापुर टुपुर। शिशु) तालगाछ (शिशु भोलनाथ), आमादेर छोटी नदी (सहज पाठ, भार १), मेघेरा कोले राद हेशेछे (गीतवितान) आदि।

में है। इसमें संदेह नहीं कि प्राप्त काव्य में जहाँ स्वाभाविकता और प्रकृति का सहज वर्णन है, वही परम्परा पालन मात्र भी है। ऐसा काव्य सहज स्वाभाविक नहीं है।

प्रकृति विषयक काव्य को दो वर्गों में बाँट सकते हैं—(१) स्थिर प्रकृति का काव्य और (२) परिवर्तनशील प्रकृति का काव्य। स्थिर प्रकृति से तात्पर्य उन विषयों से है जो सदा एक से रहते हैं। प्रातः, संध्या, रात, सूर्य, चन्द्र, तारे पेड़, पौधे, फूल, घास आदि बाल काव्य के सदा एक स्थिति में रहनेवाले विषय हैं।

इसके विपरीत विभिन्न ऋतुओं से सम्बन्धित बालकाव्य हैं। ऋतुएँ अपने विविध स्वरूपों के साथ आती हैं। वे परिवर्तनशील हैं। उनके प्रारम्भ विकास और समाप्ति का एक क्रम रहता है। एक ऋतु दूसरी ऋतु को जन्म देकर चली जाती है। प्रमुख ऋतुएँ तीन हैं, पर इनमें तीन और एक ही क्रम में आती हैं। इस प्रकार छः ऋतुएँ हो जाती हैं। हर ऋतु का अपना स्वरूप और सौन्दर्य होता है। किन्तु वर्षा और शीतकाल विविध परिवर्तनों के वाहक होते हैं। इसलिए ऋतु सौन्दर्य में इन दो का बालकाव्य में अधिक वर्णन हुआ है।

जैसा पहले उल्लेख किया गया है, हिंदी बालकाव्य में स्थिर प्रकृति के अनेक सजीव दृश्य अंकित हैं। किन्तु गतिशील प्रकृति ने बाल कवियों को अधिक प्रभावित किया है। स्थिर दृश्यों में 'सितारों की पाठशाला' कविता का कुछ अंश द्रष्टव्य है—

आसमान में नन्हें तारे
सदा जागते हैं बेचारे
इनमें कोई कल्लू होगा
कोई छोटा लल्लू होगा
अम्बर है इनकी चटशाला
हर तारा है पढ़ने वाला

× × ×

जब कोई तारा उच्छृंखल
करता है कक्षा में हलचल
उसका कान पकड़कर गुरुवर

कर देते कक्षा से बाहर ।[1]

तारों का यह मानवीय कृत रूप बाल मनोभावना के अनुरूप है । इस माने में रोचक बन गया है । प्रातःकाल विषयक निम्नांकित गीत में प्रातःकाल का अत्यन्त सजीव स्फूर्तिदायक और प्रसन्न चित्र अंकित हुआ है । प्रातः-कालीन प्रकृति का एक दृश्य उद्घाटित होता है । अन्त में प्रातः का कर्मवादी सन्देश है जो हल्की सी उपदेशात्मकता पैदा कर देता है । किन्तु इस कविता का ढाँचा ही उपदेशवादी है जब कि पूर्ण सौन्दर्य में उपदेश का होना अनिवार्य नहीं । कविता इस प्रकार है —

गली रात मोम सी
सूरज की खोज में
उठ, भैया,
याद कर पाठ नया आज का ।
धूप चढ़ी छज्जे तक
धूल भरे गलियारे
चिहुक गए बच्चे दो
गौरैया के प्यारे । [2]

प्रातः की ही एक मधुर काव्यानुभूति कल्पना प्यास की है, जिसमें प्राची में सूर्य के आगमन का यथार्थ और कल्पनापूर्ण चित्र आया है । प्रातः का सौन्दर्य इसमें एक भिन्न कोण से है—

दूर गगन में बादल के परदे खिसकाकर
सूरज ने झाँका थोड़ा सा मुँह लटकाकर !
नन्हीं-नन्हीं चिड़ियों ने तब गाने गाए
झूम झूम कर पत्तों ने भी ढोल बजाए
दूर मुँडेरे पर आकर काले कौए ने
काँव-काँव की पीट मुनादी
सब लोगों को खबर सुना दी
उठो-उठो, भई मिटा अँधेरा ।' [3]

---

१. सितारों की पाठशाला : ओमप्रकाश मो 'आदित्य' पराग : दिसम्बर, १६६५ ।

२. एक सुबह : दो गीत : रमेश कुमार तैलंग : पराग, सितम्बर, १६६५ ।

३. हुआ सवेरा : कल्पना व्यास : पराग नवंबर, १६७० ।

सबेरे का दृश्य इतना अधिक आकर्षक होता है कि रमापति शुक्ल ने 'हुआ सवेरा'[1] काव्य पुस्तिका की ही रचना कर दी, जिसमें प्रातःकाल के विभिन्न कार्यों और गतिविधियों का उल्लेख है।

और अब ऋतुओं तथा मौसम का काव्य, जिसमें बालकों तथा बाल काव्य-कारों की विशेष रुचि रही है। गरमी वर्षा या जाड़ा तीनों ऋतुओं और इन ऋतुओं से सम्बद्ध बालकों की विभिन्न प्रतिक्रियाओं का बाल काव्य में व्यापक उल्लेख हुआ है। इस प्रकार के काव्य की अधिकता में पिष्टपेषण भी कम नहीं है, पर सहज काव्य भी है। प्रस्तुत कविता में गरमी का सुन्दर वर्णन हुआ है—

जब से गरमी की बात चली
लगती पीपल की छाँह भली
होठों पर छाने लगी प्यास
लग गया लुभाने शीतल जल
पनघट पर बढ़ने लगी भीड़
पर बूँद-बूँद रोते हैं नल
जल से डरने वाली गुड्डी
अब बनी हुई जल की मछली।
जब से गरमी की बात चली।[2]

प्रकृति विषयक कविताएँ एक ओर प्रकृति की वास्तविकता से परिचय कराती हैं, दूसरी ओर प्रकृति की मनोरंजन अनुभूति प्रदान करती हैं। इस प्रकार बाल पाठक कल्पनामात्र से प्रकृति की वास्तविकता का ज्ञान प्राप्त कर लेता है। साथ ही प्रकृति की सजीवता से आनंदित होता है। प्रकृति जो मानव जीवन का ही एक अंग है, जीवन धारणा कर गुंजित हो उठती है। वर्षा इसी प्रकृति की देन है जो समस्त बालजगत को उल्लसित कर देती है। जगदीश चन्द्र शर्मा नृत्यशील वर्षा का इस प्रकार वर्णन करते हैं :—

अम्बर में गूँज उठी
मेघों की किलकारी
धरती पर उग आई
छवियों की फुलवारी

१, हुआ सवेरा : रमापति शुक्ल : नंदकिशोर एण्ड ब्रदर्स : वाराणसी।
२. गरमी : सीताराम गुप्त : मनमोहन, मई, १९६४।

घिरी घटाएँ झम-झम
वर्षा आई छम-छम !
बच्चों की टोली में
नया हर्ष छाया है
भीगने नहाने का
मौसम जो आया है
बच्चे दौड़े घम-घम ।
वर्षा आई छम-छम ।

वर्षा विषयक अनेक कविताओं की ही भाँति शीतकाल विषयक कविताओं की भी रचना हुई । ये कविताएं कहीं अपने जीवनमात्र के साथ हैं और कहीं बालकों के जीवन को सम्बद्ध किए हुए । काव्य की दोनों ही स्थितियाँ हो सकती हैं। जहाँ बालकों का जीवन सम्बद्ध हो जाता है, वहाँ प्रकृति और बालक एक-दूसरे में लीन हो जाते हैं । बालक की प्रतिक्रियाएँ प्रकृति पर प्रक्षेपित होती हैं और प्रकृति बालक की इच्छा के अनुसार कार्य करने लगती है ।

सुबोधकुमार द्विवेदी की 'चाँदी सी धूप' कविता में कल्पना का आश्रय अधिक लिया गया है । पर बाल पाठक कविता से ताजगी की अनुभूति करेंगे—

आओ हम गोद में समेट ले
चाँदी सी यह उजली धूप
बगुलें के पंखों सी स्वच्छ
और श्वेत नरम नरम धूप !

× × × ×

यहाँ वहाँ सभी जगह—
आँगन दालानों में
गलियों में कूँचों में
खेतों खलिहानों में
हिरनी सी चौकड़ियाँ भरती है धूप । [1]

प्रकृति विषयक उपर्युक्त काव्य के विवेचन से स्पष्ट है कि बाल काव्य रचयिताओं ने प्रकृति के विविध सुन्दर दृश्य रेखांकित किए हैं। इन दृश्यों मे बाल जगत के परिवेश को महत्त्व दिया गया है ।

दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह कि स्वातन्त्र्योत्तर प्रकृति—काव्य में पूर्वापेक्षा

१. चाँदी सी धूप : सुबोध कुमार द्विवेदी : पराग, दिसम्बर, १९७० ।

व्यंजकता अधिक है। पूर्व के काव्य में सरलता अधिक थी। किन्तु यह व्यंजकता विशेषरूप से पराग, नंदन या चंपक जैसी पत्रिकाओं में ही है, बालसखा या मनमोहन अपनी पुरानी परम्परा की ही रक्षा करते रहे।

किन्तु स्वातन्त्र्यपूर्व की अपेक्षा स्वातन्त्र्योत्तर काल में बाल काव्य की रचना कम हुई, फलतः प्रकृति विषयक बाल काव्य भी सीमित ही रहा।

पर्व त्यौहार और उत्सवदिवस

बाल जीवन में पर्वों और त्यौहारों का भी विशेष महत्त्व है। यद्यपि पर्वों और त्यौहारों के पीछे ऐतिहासिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि भी रहती है, पर आज मनोरंजन के स्तर पर ही इन्हें अधिक मनाया जाता है। इस मनोरंजन में बालकों का मुख्य भाग रहता है। किसी न किसी स्तर पर बालक इनसे संवेदना ग्रहण करते हैं। इसी दृष्टि से पर्वों और त्यौहारों से संबद्ध बाल काव्य की काफी रचना हुई है।

यह स्थिति हिन्दी में ही नहीं, बंगला और अंग्रेजी काल काव्य में भी है। दुर्गापूजा के अवसर पर प्रत्येक बंगला बाल पत्रिका वृहद् विशेषांक प्रकाशित करती है और अंग्रेजी में बड़े दिन से संबद्ध अनेक मनोरंजक बाल कविताओं की रचना हुई है।

बच्चे जिन पर्वों या त्यौहारों पर विशेष आनन्द की अनुभूति करते हैं वे हैं होली, दिवाली और दशहरा। बड़ा दिन भी बच्चों के आनन्द का दिन है और एक अन्य महत्त्वपूर्ण उत्सव दिवस है बाल दिवस जो प्रतिवर्ष चौदह नवम्बर को मनाया जाता है। नेहरू जी का बालकों के प्रति विशेष स्नेह था। वे उनके कार्यक्रमों में भाग लेते थे, उनसे भेंट करते थे और उनके साथ स्वयं बच्चे बन जाते थे। अपने निबन्ध 'मेरे प्यारे बच्चों' में उन्होंने लिखा है—'मेरी इच्छा होती है कि मै बच्चों के साथ रहूँ, उनसे बातें करूँ और इससे भी ज्यादा कि मैं उनके साथ खेलूं। क्षण भर के लिए मैं यह भूल जाता हूँ कि मैं बहुत बुड्डा हो गया हूँ और जब मैं बच्चा था उस समय को गुजरे हुए एक जमाना बीत गया'। [1]

नेहरू जी के बच्चों के प्रति इसी अगाध प्रेम के कारण उनका जन्मदिन चौदह नवम्बर देशभर में बालदिवस के रूप में मनाया जाने लगा। बच्चों के चाचा बनकर वे सदा-सदा के लिए बच्चों के हो गए और देश के बच्चों को अपना एक उत्सवदिवस प्राप्त हो गया।

---

१. मेरे प्यारे बच्चों : जवाहरलाल नेहरू : अनु० श्री प्रसाद : आज दैनिक १३, नम्वबर, १९६९।

बाल जीवन की अनुभूतियाँ ही बाल काव्य का आधार हैं। पर्वों त्यौहारों और उत्सवदिवस पर बालकों की मनोभावनाओं की कल्पना सभी बाल कवियों ने की है। होली जैसा रंग बिरंगा उत्सव आने पर बच्चों की प्रसन्नता का बाँध टूट पड़ता है। रंग और अबीर की धूम मच जाती है। होली पर बच्चों की विभिन्न क्रियाओं का सजीव दृश्यांकन निम्नांकित कविता में हुआ है :—

कोई मचा रहा है हुल्लड़
कोई फोड़ रहा है कुल्हड़
कोई लाता महा चुकन्दर
कोई लगता शहरी बन्दर
काम सभी इनके बेढंगे
होली है भई हर-हर गंगे
मुन्नी खड़ी हुई ज्यों गुड़िया
पर यह है आफत की पुड़िया
सोच रही कब मौका पाऊँ
डालूँ रंग और भग जाऊँ।
कर दूँ सबको रंग विरंगे
होली है भई हर-हर गंगे।[1]

होली विषयक अब तक अनेक सुन्दर कविताएँ निर्मित हुई है जिसमें गेयता लयात्मकता और छन्द लालित्य है, यद्यपि अनेक कविताएँ रूढ़िपोषक मात्र भी हैं।

दीवाली भी होली की भाँति मनोरंजक त्योहार है जो बड़ों को लिए सांस्कृतिक हैं और बालकों के लिए आनन्दपूर्ण। आनन्द बड़ों को भी मिलता है पर वह भिन्न प्रकार का होता है।

उत्सव के अतिरिक्त दीवाली का एक रूप प्रतिकात्मक भी है। वह अन्धकार पर ज्योति की विजय के रूप में हमारे जीवन में आती हैं। उससे जीवन को सतत ज्योतिर्मय बनाए रखने की प्रेरणा मिलती है। 'सौ चाँद उगाएँगे' में बाल स्तर पर इसी प्रतीक की व्यंजना है—

घनघोर घटाओं में, दमघोंट अँधेरे में
हम हार न मानेंगे, तुफानी घेरे में

---

१. होली है, भई हर-हर गंगे : मंगरूराम मिश्र : पराग मार्च, १९६७।

हर बार अँधेरे में, हम दीप जलाएँगे
हर बार अमावस में सौ चांद उगाएँगे ।[1]

प्रस्तुत कविता में अन्धेरे से—जीवन की विषमताओं और संकीर्णताओं से लड़ने की मानव की अदम्य आकांक्षा व्यक्त हुई है। किसी भी उत्सव पर यथार्थ और प्रतीकात्मक, दोनों रूपों में व्यजंना की जा सकती है। इन्हीं दोनों शैलियों में पर्वमूलक काव्य को स्वीकृति मिलनी चाहिए—रूढ़ि की अनुयायी कविताओं को नहीं।

और अब दशहरा जिसमें यथार्थता के साथ हास्य व्यंग्य का भी पक्ष है। इस विषय की कविताएँ कम हुईं। सम्भवतः इसलिए कि दशहरा की हास्यात्मकता की ओर कवियों का ध्यान कम गया और प्रतीकात्मकता बच्चों के लिए दुरूह है। पर रावण का व्यक्तित्व इतना अधिक हास्यपूर्ण है कि उसके स्वरूप पर ही एक सीमा में काफी काव्य रचना हो सकती है। ऐसी ही एक कविता का कुछ अंश है—

सब कहते हैं, रावण था दस शीशों वाला
दस सिर क्या पाए, उसने आफत को पाला
कर भी क्या सकता था, उसको दुख ढोना था
क्या सिर एक बुरा था, मगर वही होना था ।[2]

बड़ा दिन या बालदिवस पर अधिक कविताएँ नहीं हैं। फिर भी बालदिवस विशेषांक प्रकाशन की प्रेरणा देता रहता है। कभी-कभी बालदिवस को लक्ष्य करके भी लिखा गया है। जगदीश चन्द्र शर्मा बालदिवस को महत्त्व देते हुए कहते हैं—

धूम मची हर गाँव-नगर में बच्चों का हुड़दंग है
केवम भारत नहीं, विश्व में बालदिवस का रंग है
यही अनोखा बालदिवस है
बच्चों के उल्लास का
खोल रहा है द्वारा सभी के
लिए नवीन विकास का
घर-घर में छा गई बहारें जागी नयी उमंग है ।[3]

---

१. सौ चाँद उगाएँगे : सीताराम गुप्त : पराग : नवम्बर, १९६६।

२. रावण की हजामत : धर्मयुग : बालजगत : २३ अक्टूबर, १९६६।

३. बालदिवस का रंग : जगदीश चन्द्र शर्मा : साप्ताहिक हिन्दुतान १५ नवम्बर, १९७०

इस प्रकार के काव्य की रक्षा के लिए अब अधिक भावात्मकता, वैचारिकता और छन्द सौन्दर्य की आवश्यकता है।

प्रयोगशीलता

बालकाव्य यद्यपि नन्हें बाल पाठकों से लेकर किशोरवय तक के पाठकों के लिए सृजित होता है अर्थात् तीन वर्ष के पाठक से लेकर सोलह-सत्रह वर्ष तक के ही पाठक बालकाव्य के आभोक्ता होते हैं, किन्तु इसी आयु सीमा के काव्य में भी प्रयोग की अनेक सम्भावनाएँ हैं। हिन्दी बालकाव्य में जब तब बराबर प्रयोग होते रहे हैं और आज भी प्रयोगसिद्ध रचनाएँ सामने आ जाती हैं, किन्तु प्रयोग-वाद जैसा कोई वाद कभी प्रवर्तित नहीं हुआ। बहुत पहले निमित रामनरेश त्रिपाठी की यह रचना एक प्रयोग ही है—

आई एक छींक नन्दू को एक रोज वह इतना छींका
इतना छींका, इतना छींका, इतना छींका इतना छींका
सब पत्ते गिर गए पेड़ के, धोखा उन्हें हुआ आँधी का।

प्रयोग वस्तुतः काव्य का रूपतत्त्व है। इसका उद्देश्य काव्य को अधिकाधिक संवेद्य बनाकर पाठक तक संप्रेषित करना है। परंपरित काव्य रुढ़िबद्ध होकर, अपनी संवेदना खो बैठता है। तब उसे नये स्वरूप या शैली में प्रस्तुत करने की आवश्यकता प्रतीत होने लगती हैं। यहीं काव्य प्रयोगगत होने लगता है।

बालकाव्य की अधिकांश रूप में सहज सर्जना हुई है। उसमें चमत्कार या वक्रता का अभाव रहा है। किसी दृश्य, तथ्य या कथ्य का स्वाभाविक रूप से वर्णन कर दिया गया। कथ्य को किसी छन्द का रूप दे दिया गया। ऐसा सहज बालकाव्य बालकों को सदा अग्राह्य नहीं रहा है। पर प्रयोगधर्मी बालकाव्य भी काफी प्रशंसित हुआ।

बालकाव्य में प्रयोगों की सम्भावना छन्दों के संदर्भ में अधिक हो सकती है। छन्द* काव्य का अभिन्न अंग है, विशेषतः बालकाव्य का। हलके-फुलके अथवा हास्योत्पादक भावों का बालकाव्य छन्द के वैशिष्ट्य से उच्च कोटि का हो सकता है। हिन्दी की छन्द सम्पदा अतुल है। कवित्त, सवैया, दोहा, सोरठा, चौपाई आदि पुराने और गीत शैली के नये छन्द तथा मुक्त लयात्मक छन्द---ऐसे ही विभिन्न छन्दों का बालकाव्य में व्यवहार किया जा सकता है। छन्द काव्य के भावों पर निर्भर करता है।

इन छन्दों को खण्डित करके नवीन छन्दों की भी रचना की जा सकती है। एक दोहे के आधार पर तीन चार छन्द निर्मित हो सकते हैं या एक सवैया अनेक

लयात्मक छन्दों को जन्म दे सकता है। बाल काव्यकारों का इस ओर कम ही ध्यान गया है।

बालकाव्य में ऐसे छन्दों का भी व्यवहार सम्भव है जो बोल चाल की भाषा में हों। कविता नामक छन्द में परिवर्तन करके यह काम लिया जा सकता है। निम्नांकित कविता 'नदी की कहानी' का छन्द बोला चाल के स्तर पर है जो एक प्रयोग है—

नदी अपनी राह बहती जा रही थी
बड़ी लम्बी कथा कहती जा रही थी
बहुत दूरी पार करके आ सकी थी
राह का हर दुःख श्रम से ढा सकी थी
एक छोटी धार बन करके चली थी
पत्थरों में पा गई पतली गली थी
मगर तब तक एक पत्थर ने बिचारा
क्योंन रोकूँ रास्ता ही अभी सारा।[१]

बालकाव्य के कथ्य और बालकों के बोधस्तर या बालवय के आधार पर विविध छन्दों का उपयोग किया जा सकता है। जैसे तीन से छः वर्ष की वय के शिशु के लिए निर्मित शिशुगीत का छन्द, सरल, अन्वय-सहज और पिंगल की जटिलताओं से मुक्त होता है, उसी प्रकार बालवय, विशेषतः किशोर वय के पाठकों के लिए मुक्त छन्द (फ्रीवर्स) का भी व्यवहार किया जा सकता है।

मुक्त छन्द में भावों की विकृति नहीं रहती है, यद्यपि यह विशेषता उच्च-कोटि की छंद बद्ध कविता में भी रहती है।

निम्नांकित कविता आराम कुर्सी में छंद की मुक्तता है, पर लयात्मकता अवश्य है। बाल जीवन की भावनाओं की सरस व्यंजना कविता का उद्देश्य है—

फिर हमने सोचा
कुछ सिर को नोचा
आज के जमाने में काम नहीं सोने का
समय नहीं खोने का।
काम बने अपना, कुछ काम करें ऐसा
नहले पर दहला हो—जैसे को तैसा

---

१. नदी की कहानी : श्री प्रसाद : बालक, अक्टूबर, १९६५।

कल से बिछाएँगे कुर्सी पर मलमल
नीचे छिपाएँगे रोज कई खटमल
मास्टर जी आएँगे
पान चबाएँगे
बैठेंगे, लेटेंगे
हम सब मुस्कराएँगे
नाक बजी, खटमल ने काटा, चिल्लाएँगे
टूटेगी नींद, भाई फिर तो पढ़ाएँगे
क्यों भइया ?......अई अई, आ......।[१]

यह हास्यमूलक कविता और भी लम्बी है, जिसमें कक्षा में सोने वाले एक अध्यापक के प्रति बाल प्रतिक्रिया और बाल भावनाओं की अभिव्यक्ति है। पर मुक्त छंद की शैली में जिस सहज ढंग से बात कही गई है, वह एक प्रयोग है।

वस्तुतः किसी भी वर्ग के काव्य के लिए छंद का बन्धन अनुपयुक्त है। काव्यव्यंजना या भाव स्वयं अपना छंद ग्रहण कर लेता है। छंद सर्जना का अंग है जो सर्जना में से ही उभरता है।

बालकों के लिए गीतों की रचना भी एक प्रयोग है। ऐसे गीत प्रेरणामूलक हो सकते हैं। इन्हें अकेले समूह में गेय या नाटकीय पद्धति से गाया जा सकता है। वीरेन्द्र मिश्र प्रौढ़ों के लिए गीत रचना में ख्याति प्राप्त रहे हैं। बच्चों के लिए भी विभिन्न अवसरों पर उन्होंने सुन्दर गीतों की रचना की है। 'आवाज हमें देना' यद्यपि बड़ों की बालकों के प्रति दृष्टि लिए हुए है, पर बालक भी इसे अपने गीत के रूप में अपनाएँगे।

चाहे अँधियारा हो, या दूर किनारा हो,
आवाज हमें देना, हम दौड़े आएँगे।
ये नन्हें हाथ उठे, दो दीप जलाने को,
बुझने के लिए नहीं, सूरज बन जाने को,
राकेट बनाएँगे, तूफान उठाएँगे,
आकाश दीप से भी, हम ऊँचे जाएँगे।[२]

'गुड़िया रानी रूठ गई' एक अन्य प्रयोगपूर्ण कविता है। जिसमें बाल मनोभावनाओं का यथार्थ रूप व्यक्त हुआ है। चिढ़ना बालकों का स्वभाव है।

१. आरामकुर्सी : सुधाकर दीक्षित : पराग, सितम्बर, १९६४।
२. आवाज हमें देना : पराग : नवम्बर, १९६५।

बड़ों के लिए यह मनोरंजन का विषय है पर बालकों के लिए एक अप्रिय तथ्य। किन्तु इस चिढ़न की विशेषता यह है कि यह कभी स्थायी नहीं होता। बालक किसी भी मनोभाव को अपने हृदय में अधिक समय तक नहीं टिकने देते। बाल प्रकृति को गुड़िया पर इस प्रकार आरोपित किया गया है, गुड़िया एक सजीव चिढ़नी बालिका बन गई है—

जरा चिढ़या, मुँह बिचकाया,
एक सयानी रूठ गई,
गुड़िया रानी रूठ गई।
हाँ हाँ, सब गलती मेरी है,
सिर्फ जरा सा यही कहा था—
अब तू काफी बड़ी हो गई
मुझको चिन्ता,
कहीं मिले अच्छा सा गुड्डा
ना हो बुड्ढा।

× × × ×

दबे स्वरों से बोली गुड़िया
सच ही तो है,
अब कौन तुम्हें अच्छी लगती हूँ ?[१]

कविता में नाटकीय संयोजना के साथ-साथ भाषा की सहजता भी प्रशंसनीय है। सम्पूर्ण कविता वार्तालाप की शैली में है।

इसी प्रकार कुछ प्रयोग उन कविताओं में भी है जिनकी रचना वैज्ञानिक मान्यताओं के आधार पर हुई है। आकाश, धरती पानी, लोहा, कोयला, आदि ऐसे बालकाव्य विषय हैं जिनके मूल में भूगर्भीय और भौगोलिक या वैज्ञानिक तथ्य हैं। उन्हीं वैज्ञानिक तथ्यों का उद्घाटन करते हुए काव्य रचना करना काव्य को वैज्ञानिक आधार प्रदान करना है।

किन्तु ऐसी कविताओं में इस बात का महत्त्व है कि वे काव्यत्व प्रधान हों, अन्यथा उनमें नीरसता उत्पन्न हो जाएगी और वे काव्यत्व पूर्ण न होकर कतिपय वैज्ञानिक सिद्धान्तों का पथ रूप होकर रह जाएँगी। इन कविताओं का अन्य कविताओं की भाँति ही आस्वाद्य होना आवश्यक है। बादल विषयक प्रस्तुत वैज्ञानिक कविता इसी प्रकार की है—

१. गुड़िया रानी रूठ गई : कल्पना व्यास : पराग, अप्रैल, १६७०।

काले काले, पानी वाले
आसमान में बादल आये
कैसे बादल आकर छाए ?
हवा पकड़कर, लाती सरसर
छाये जैसे काले कंबल
लगते कितने सुन्दर बादल[1]

लोक कथाओं का काव्य रूपांतर

लोक कथाएँ एक स्तर पर बालकों को कथात्मक आनन्द प्रदान करती रही हैं। आधुनिक कहानियों के विकास के पूर्व तक यही कथाएँ बालकों का कथा साहित्य रही हैं। न केवल हिन्दी, वरन् भारत की अन्य भाषाओं तथा विदेशी भाषाओं में भी लोक कथाओं की अपार राशि है।

बालकों का लोक कथाओं के प्रति आकर्षण देखकर कुछ कृतिकारों ने उनका काव्य रूपांतर भी किया। इस काव्य रूपांतर से काव्य के उद्देश्य की पूर्ति की गई और बाल पाठकों से यह आशा की गई कि इन काव्य रूपांतरों के प्रति उनका वही आकर्षण होगा जो काव्य या बाल साहित्य की किसी विधा के प्रति होना चाहिए।

लोककथा या किसी भी कथा का काव्य रूपांतर असंगति नहीं है। स्वयं रवीन्द्रनाथ टैगोर ने कुछ कहानियों के काव्य रूपांतर किए हैं जैसे 'मस्तक विक्रय' या 'पुजारिनी' कविताएँ। इनके पीछे कोई प्रचलित कहानी नहीं है पर कहानी के तत्वों का इनमें समावेश है। अंग्रेजी की हेंमस की कविता कैसाविएंका 'तथा रावर्ट ब्राउनिंग की हैमिलिन का बासुरी वादक' (पाइड पाइपर आफ हैमिलिन) कथात्मक कविताएँ हैं।

और बाल्मीकि की रामायण या तुलसीदास का रामचरितमानस भी राम कथा के काव्य रूपांतर हैं। अतः कहानी या कथा के काव्यांतर में किसी प्रकार की असंगति नहीं है।

हिंदी में समय-समय पर अनेक कहानियों या कथाओं के रूपांतर हुए हैं। ईसप की अनेक कहानियाँ काव्यान्तरित हुई हैं। इधर निरंकारदेव सेवक ने रूस और जर्मन आदि की लोक कथाओं के काव्य रूपांतर प्रस्तुत किये हैं।

कथा या लोक कथा और काव्य की शैली में विधागत अंतर होता है। है। लोक कथा में अनेक ऐसे तत्व होते हैं, जिनका काव्यांतर नहीं हो सकता।

१. बादल : बालभारती, अगस्त, १६७०।

ये तत्व लोक कथा सुनाते समय व्यक्त होते हैं और लोक कथा में सरसता पैदा करते हैं इसके विपरीत काव्य विधा के तत्व हैं, जो काव्य को प्रेय बनाते हैं।

लोक कथा में घटना की प्रधानता होती है, काव्य में व्यंजना की। फिर लोक कथा में स्फीति अधिक होती है जब कि अपनी व्यंजकता के कारण काव्य सांकेतिक और संक्षिप्त बन जाता है। ऐसी स्थिति में यदि लोक कथा का यथावत छंदानुवाद कर दिया गया तो वह लोक कथा का अपना रस तो खो ही देगी, काव्यत्त्व भी न प्राप्त कर सकेगी। पर यदि लोक कथा में काव्यान्तर के साथ काव्यत्त्व भी है तो निश्चित रूप से यह रूपान्तर श्रेष्ठ होगा।

किसी लोक कथा को काव्यरूप प्रदान करने में कृतिकार को कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। लोककथा के कथातत्त्व का निर्वाह सन्देह को रक्षा, छंद का प्रवाह और काव्यत्व का समावेश—इन सभी शर्तों के पूर्ण होने पर ही लोक कथा काव्य के साँचे में ढल पाती है। सेवक जी ने काफी सीमा तक इन शर्तों के निर्वाह का प्रयास किया है। पर छंद रचना में व्यवस्था बनाए रखना फिर भी सम्भव नहीं हो सका है। तुकपूर्ति में भाषा विशृङ्खलित हो गई है जैसे—

रूस देश में किसी समय थे
बुड्ढा बुढ़िया रहते एक
वे थे बहुत गरीब, मगर थे
शुद्ध सरल आदत के नेक
उनके केवल दो बच्चे थे
लड़की एक बड़ी सुन्दर
और दूसरा नन्हा मुन्ना
पड़ा पालने के अन्दर[1]

यह बहिन भाई नामक लोक कथा के काव्यान्तर का प्रारम्भिक अंश है। कवि कहता है—किसी समय इस देश में एक बुड्ढा बुढ़िया रहते थे। वस्तुतः बुड्ढा बुढ़िया दो होने चाहिए एक नहीं। नेक के तुक के लिए इस प्रकार का भाषा प्रयोग खटकता है। इसी प्रकार प्रस्तुत रचना में दूरान्वय की जटिल समस्या है जो बालकों के लिए कविता को दुर्बोध्य बना देती है। आगे चलकर, दो बच्चों के होने की बात कही गई है। पर सुन्दर लड़की का होना सामान्य शाश्वत सत्य के रूप में कहा गया है जब कि नन्हें-मुन्ने का प्रत्यय तात्कालिक है। कवि को

---

१. रूस की लोककथाएँ : निरंकार देव सेवक : प्रकाशन विभाग :पृ० ७।

सम्भवतः इस प्रकार कहना था—और दूसरा नन्हा-मुन्ना था जो पालने में पड़ा रहता था। पर दोनों तथ्यों को जोड़कर संक्षिप्त कर देने से काव्यगत बाधित हो गया और शैली में अन्तर आ गया।

लोक कथा इतनी लम्बी है कि छंद का निर्वाह करने में कवि को स्थान-स्थान पर कठिनाई का अनुभव हुआ है। कठिनाई आने पर कवि ने पराजय मान ली है और बिना किसी संगत्ति के छंद में परिवर्तन कर दिया है।

छंद काव्य का अंग है जिसमें चयन और परिवर्तन के पीछे योजना होनी चाहिए। कवि ने पुस्तक की प्रस्तावना (ये गीत कथाएँ) में छंद की जिस सहजता का परिचय दिया है, यदि वह काव्यान्तर में भी होती तो निःसंदेह कविता श्रेष्ठ बनती। प्रस्तावना में काव्य विषय का परिचय देते हुए कवि कहता है—

इन गीतों में मेंढ़क, मछली
हीरे, मोती, मूँगे असली
मोर, पपीहे मैना, तीतर
बर्रे, ततैया, साँप, छछूँन्दर
हँस-हँस खिलने वाली कलियाँ
इतराती रंगीन तितलियाँ
इन गीतों में पर्वत सागर
निर्झर नदियाँ, झील सरोवर
मीलों घने-घने जंगल है
रेगिस्तान और दलदल है।[१]

भाषा की यही सहजता लोक कथाओं के रूपान्तर में भी आनी चाहिए थी। प्रस्तावना में कवि यह भी उल्लेख करता है—

जो गाए ये गीत कथाएँ
उनके ज्ञानचक्षु खुल जाएँ
ज्ञान और विज्ञान इन्हीं में
आनबान है शान इन्हीं में

लोक कथाएँ जितना मनोरंजन प्रदान करती हैं, उतना ज्ञान नहीं। नन्हें बच्चे आह्लादित होने के लिए ही लोक कथाएँ सुनते हैं। वे कथा की घटनावली

१. रूस की लोक कथाएँ : निरंकार देव सेवक : प्रकाशन विभाग,

ये तत्व लोक कथा सुनाते समय व्यक्त होते हैं और लोक कथा में सरसता पैदा करते हैं इसके विपरीत काव्य विधा के तत्त्व हैं, जो काव्य को प्रेय बनाते हैं।

लोक कथा में घटना की प्रधानता होती है, काव्य में व्यंजना की। फिर लोक कथा में स्फीति अधिक होती है जब कि अपनी व्यंजकता के कारण काव्य सांकेतिक और संक्षिप्त बन जाता है। ऐसी स्थिति में यदि लोक कथा का यथावत छंदानुवाद कर दिया गया तो वह लोक कथा का अपना रस तो खो ही देगी, काव्यत्त्व भी न प्राप्त कर सकेगी। पर यदि लोक कथा में काव्यान्तर के साथ काव्यत्त्व भी है तो निश्चित रूप से यह रूपान्तर श्रेष्ठ होगा।

किसी लोक कथा को काव्यरूप प्रदान करने में कृतिकार को कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। लोककथा के कथातत्त्व का निर्वाह सन्देह को रक्षा, छंद का प्रवाह और काव्यत्व का समावेश—इन सभी शर्तों के पूर्ण होने पर ही लोक कथा काव्य के साँचे में ढल पाती है। सेवक जी ने काफी सीमा तक इन शर्तों के निर्वाह का प्रयास किया है। पर छंद रचना में व्यवस्था बनाए रखना फिर भी सम्भव नहीं हो सका है। तुकपूर्ति में भाषा विश्रृङ्खलित हो गई है जैसे—

रूस देश में किसी समय थे
बुड्ढा बुढ़िया रहते एक
वे थे बहुत गरीब, मगर थे
शुद्ध सरल आदत के नेक
उनके केवल दो बच्चे थे
लड़की एक बड़ी सुन्दर
और दूसरा नन्हा मुन्ना
पड़ा पालने के अन्दर[1]

यह बहिन भाई नामक लोक कथा के काव्यान्तर का प्रारम्भिक अंश है। कवि कहता है—किसी समय इस देश में एक बुड्ढा बुढ़िया रहते थे। वस्तुतः बुड्ढा बुढ़िया दो होने चाहिए एक नहीं। नेक के तुक के लिए इस प्रकार का भाषा प्रयोग खटकता है। इसी प्रकार प्रस्तुत रचना में दूरान्वय की जटिल समस्या है जो बालकों के लिए कविता को दुर्बोध्य बना देती है। आगे चलकर, दो बच्चों के होने की बात कही गई है। पर सुन्दर लड़की का होना सामान्य शाश्वत सत्य के रूप में कहा गया है जब कि नन्हें-मुन्ने का प्रत्यय तात्कालिक है। कवि को

१. रूस की लोककथाएँ : निरंकार देव सेवक : प्रकाशन विभाग :पृ० ७ ।

सम्भवतः इस प्रकार कहना था—और दूसरा नन्हा-मुन्ना था जो पालने में पड़ा रहता था। पर दोनों तथ्यों को जोड़कर संक्षिप्त कर देने से काव्यगत बाधित हो गया और शैली में अन्तर आ गया।

लोक कथा इतनी लम्बी है कि छंद का निर्वाह करने में कवि को स्थान-स्थान पर कठिनाई का अनुभव हुआ है। कठिनाई आने पर कवि ने पराजय मान ली है और बिना किसी संगति के छंद में परिवर्तन कर दिया है।

छंद काव्य का अंग है जिसमें चयन और परिवर्तन के पीछे योजना होनी चाहिए। कवि ने पुस्तक की प्रस्तावना (ये गीत कथाएँ) में छंद की जिस सहजता का परिचय दिया है, यदि वह काव्यान्तर में भी होती तो निःसंदेह कविता श्रेष्ठ बनती। प्रस्तावना में काव्य विषय का परिचय देते हुए कवि कहता है—

इन गीतों में मेंढ़क, मछली
हीरे, मोती, मूँगे असली
मोर, पपीहे मैना, तीतर
बर्रे, ततैया, साँप, छछूँन्दर
हँस-हँस खिलने वाली कलियाँ
इतराती रंगीन तितलियाँ
इन गीतों में पर्वत सागर
निर्झर नदियाँ, झील सरोवर
मीलों घने-घने जंगल है
रेगिस्तान और दलदल है।[१]

भाषा की यही सहजता लोक कथाओं के रूपान्तर में भी आनी चाहिए थी। प्रस्तावना में कवि यह भी उल्लेख करता है—

जो गाए ये गीत कथाएँ
उनके ज्ञानचक्षु खुल जाएँ
ज्ञान और विज्ञान इन्हीं में
आनबान है शान इन्हीं में

लोक कथाएँ जितना मनोरंजन प्रदान करती हैं, उतना ज्ञान नहीं। नन्हें बच्चे आह्लादित होने के लिए ही लोक कथाएँ सुनते हैं। वे कथा की घटनावली

---

१. रूस की लोक कथाएँ : निरंकार देव सेवक : प्रकाशन विभाग,

से प्रभावित होते हैं और अपने हृदय को नायक अथवा नायिका के साथ तादात्म्य कर देते हैं। ऐसी स्थिति में लोककथा के द्वारा उनका हृदय का परिवर्तन होता है। उत्साह, उमंग और उदात्तता तथा शत्रु पर विजय पाने के दुर्दम्य भाव सीखते हैं। पर ज्ञानचक्षु खुलने जैसा कोई कार्य नहीं होता और न लोक कथाओं में विज्ञान होता है। विज्ञान का स्पष्ट प्रत्यय है जो वैज्ञानिक कृतियों में ही हो सकता है।

लोक कथाओं के काव्यान्तर का प्रयास महत्त्वपूर्ण है, पर इसमें काव्यत्व की रक्षा प्रथम दृष्टि होनी चाहिए।

शिशु गीतों का प्रारम्भ

शिशुगीत बालकाव्य का बड़ा महत्त्वपूर्ण अंग है। बाल जीवन में इसको कब स्वीकृति मिली, कहना कठिन है। सम्भवतः इनका जन्म बालकों के खेलों के साथ हुआ होगा। खेल के समय बालक कुछ शब्द समूहों या वाक्यों का भी उच्चारण करते हैं, जो एकाकी या सामूहिक होता है। इस शब्द या वाक्योच्चारण की विशेषता यह होती है कि उच्चरित ध्वनियाँ प्रायः अर्थविहीन (नानसेन्स) होती हैं। अनुरणनात्मकता भी इन ध्वनियों की विशेषता होती है। फिर ये क्रीड़ापूर्ण ध्वनियाँ प्रायः बच्चों के खेलों की लय में होती हैं। अर्थात खेलों की लय ही इनका छंद होता है। निम्नांकित ध्वन्योच्चारण इसी प्रकार है—

अक्कड़ बक्कड़ बंबे भौ
अस्सी, नब्बे, पूरे सौ
सौ में लगा, धागा
चोर निकल कर भागा।

इस निरर्थक (नानसेंस) गीत में बच्चों की प्रकृति की अभिव्यक्ति है। अपनी कल्पना से बच्चे असंगत और विपरीत में भी संगति ही देखते हैं। लौकिक प्रत्ययों का उसके ऊपर प्रभाव नहीं रहता। फलतः उनके जागतिक पदार्थों के संबंध अत्यन्त व्यापक होते हैं। जगत् के यथार्थ और संकीर्णता से वे मुक्त होते हैं। तभी उन्हें असंगति में भी संगति और प्रतिकूल में भी अनुकूलता परिलक्षित होती है।

शिशु गीतों में काफी हद तक ऊलजलूल काव्य के भी तत्त्व आ जाते हैं जिसके विषय में एडनाजान्सन का कहना है कि "ऊलजलूलपन के संसार में नन्हें बच्चे आनन्द का अनुभव करते हैं। यह एक ऐसा संसार है जिसको वे भलीभाँति

समझते हैं, क्योंकि इसमें उनके अपने मन में अव्यवस्थित वास्तविक और असंभव के मध्य की गतिशील सीमाओं की प्रतिच्छाया रहती है ।[१]

भावभूमि की इस व्यापकता और भाषा की क्रीड़ाशीलता को जिसने पहचाना होगा उसी ने सबसे पहले शिशुगीतों की रचना की होगी। संभवतः बालकों ने ही सबसे पहले अपने लिए शिशुगीतों की रचना की हो ।

बालप्रकृति संसार में सर्वत्र एक ही प्रकार की होती है। अतः श्रेष्ठ शिशुगीतों की प्रकृति भी संसार की सभी भाषाओं में समान ही मिलेगी। लगभग एक शताब्दी पूर्व लिखे गए क्रिस्टिना रोजेटी के शिशुगीत का भाव यह है—शहर के चूहे के पास रोटी और पनीर होता है। बाग का चूहा भी जो पाता है, खा लेता है; वह बीज और डंठल खा जाता है—'पर इस विषय में हमें कोई शिकायत नहीं है। बेचारा बड़ा ठरपोक नन्हा प्राणी होता है।[२]

अंग्रेजी बालकाव्य में क्रिस्टिना रोजेटी का ऐतहासिक स्थान है।

इसी प्रकार बंगला के एक शिशुगीत का तात्पर्य है—"फूली हुई पूड़ी, फूली हुई पूड़ी, तुम्हारा पेट ढोलक की तरह फूला हुआ है। फूली हुई पूड़ी, फूली हुई पूड़ी (तुम्हारे) पेट में एक फाँक है। एक फूली हुई पूड़ी सूजी की है, एक में आलूदम है। (पर) इसके साथ यदि चमचम मिल जाय तो कितनी बड़ी बात हो।[३]

---

१. इन दिस वर्ल्ड आफ नानसेंस, यंग चिल्ड्रेन फाइन्ड देमसेल्वज हैपी ऐट होम। इट इज ए वर्ल्ड दे अण्डरस्टैंड बिकाज इट मिरर्स द सिफ्टिंग बाउंड्रीज बिटविन द रियल ऐंड द इंपासिबुल ह्विच ऐक्सिस्ट इन देयर ओन माइंड्स।
—एंथालाजी आफ चिल्ड्रेन्स लिटरेचर : एडना जानसन इत्यादि, पृ० ४४।

२. द सिटी माउस हैज ब्रेड ऐंड चीज़
द गार्डन माउस इट्स ह्वाट ही केन
वी विल नाट ग्रज हिम सीड्स ऐंड स्टाक्स
पूअर लिटिल टिमिड फरी मैन—सिंग सांग (क्रिस्टिना रोजेटी)

३. फूल्को लूची, फूल्को लूची,
पेट्टा फूले ढाक
फूल्को लूची, फूल्को लूची,
पेटेर मेतर फाँक
फूल्को लूची, एक्टू सूजी,
एक्टू आलूर दम,
केल्ला फते तार सनेते,
पाइ जदि चमचम। —फूल्को लूची : मोहित घोष : टापुर टुपुर कविता संग्रह : पृ० ३८।

हिन्दी में शिशुगीतों की रचना प्रारंभिक काल से ही होती आई है। शिशुगीतों की मनोरंजन क्षमता को बालकाव्यकारों ने पहचानकर बालकों के लिए बड़ी कविताओं के साथ-साथ छोटे गीतों की भी रचना की। निरंकारदेव सेवक ने शिशुगीतों की रचना की कठिनाई बताते हुए लिखा है–"बहुत छोटे बच्चों के लिए मनोरंजक कविता लिख लेना बड़े बच्चों के लिए कविता लिखने की अपेक्षा कहीं अधिक कठिन है। छोटे बच्चों का स्वभाव इतना चंचल और मनोभावनाएँ इतनी उलझी हुई होती हैं कि बड़े उन्हें प्रायः आसानी से समझ भी नहीं पाते।"[1]

किन्तु कवियों ने इस कठिनाई पर विजय पाने को चेष्टा की है और थोड़ी मात्रा में पर अच्छे शिशुगीत निर्मित हुए हैं। बिल्लो बाई शीर्षक से एक पुराना शिशुगीत है—

बिल्लो बाई, बिल्लो बाई
हम तुमको दें दूध मलाई
चूहे पकड़ पकड़ कर लाना
और हमें सब देती जाना
हम उनसे खेलेंगे खेल
आपस में रक्खेंगे मेल
चूँ चूँ का गावेंगे गीत
सब सखियों में होगी जीत।[2]

शिशुगीत कर्त्री ने बालप्रकृति को भलीभाँति समझा है। वह बिल्ली से चूहे पकड़कर लाने को कहती है। बिल्ली की प्रकृति चूहे पकड़ने की है। चूहे पकड़ना सात्विक भाव है, जब कि चूहों की हत्या करना असात्विक भाव। चूहों के साथ चूँ चूँ का ही खेल खेला जा सकता है। यह बाल मनोभावों की पकड़ है। आपस में मेल रखने में बड़ों की दृष्टि का प्रक्षेपण है, किन्तु आरोपित नहीं है।

ऐसा ही एक अन्य शिशुगीत प्रसिद्ध बालकाव्यकार सोहनलाल द्विवेदी का है—

नटखट पांड़े आए, आए
पकड़ किसी का घोड़ा लाए,
घोड़े पर हो गए सवार

---

१. बालगीत साहित्य : निरंकारदेव सेवक, पृ० ३० ।

२. बिल्लो बाई : प्रेमादेवी खरे : बालसखा : अगस्त, १९३३ ।

घोड़ा चला कदम दो चार
नटखट थे पूरे शैतान
जमा दिए दो कोड़े तान
घोड़ा भागा देख मैदान।
नटखट पांड़े गिरे उतान।[1]

पर अब तक शिशुगीतों की रचना का यह प्रयास विरल था। 'पराग' ने स्वातन्त्र्योत्तर काल में शिशुगीत रचना को प्रमुख स्थान दे दिया। बाल काव्य के साथ-साथ शिशुगीत रचना की ओर उसने कवियों को आकृष्ट किया। पराग के शिशुगीत स्तंभ में केवल नन्हें मुन्नों के लिए शिशुगीत प्रकाशित हुए और इसे एक सशक्त विधा के रूप में स्थान प्राप्त हो गया। किसी शिशुगीत कार ने पुराती शैली में नवीनता उत्पन्न की, तो किसी ने पूर्णतः नवीन परिवेश में शिशुगीतों की सर्जना की। नये शिशुगीतकारों में कई नाम उल्लेख्य हैं जैसे— आचार्य अज्ञात, गंगासहाय प्रेमी, निरंकरदेव सेवक, चन्द्रपालसिंह यादव मयंक, शम्भुप्रसाद श्रीवास्तव, सरस्वतीकुमार, 'दीपक', विष्णुकान्त पाण्डेय, सुधाकर दीक्षित, राष्ट्रबन्धु, श्रीप्रसाद, धीरेन्द्र कश्यप, मगरूराम मिश्र, सीताराम गुप्त, विनोद रस्तोगी आदि।

बालकों ने इन शिशुगीतों को अपनाया है और पराग के माध्यम से शिशुगीत-कारों का एक वर्ग तैयार हो गया है

शिशुगीतों पर जितना बल हिन्दी में दिया गया, उतना किसी अन्य भाषा में नहीं। पराग में शिशुगीत स्तंभ प्रारम्भ करते हुए इसका उद्देश्य स्पष्ट किया— "हिन्दी में शिशुगीतों (नरसरी राइम्स) का चलन बहुत पुराना है। ये बड़े दिलचस्प और चटपटे होते हैं। फिर भी इन्हें जैसा प्रचार प्रसार मिलना चाहिए था, वह नहीं मिल सका।......चार से छः साल तक के बच्चे इन्हें जबानी याद कर सकते हैं। अन्य भाषा-भाषी बड़े बच्चे भी इन्हें मजे में याद कर सकेंगे। इनसे मुहावरेदार हिन्दी सरलता से उनकी जबान पर चढ़ जाएगी।'[2]

उपर्युक्त कथन में शिशुगीत का अस्तित्व पहले से स्वीकृत है। नये शिशुगीत देने का उद्देश्य बड़ा व्यापक रखा गया है—न केवल हिन्दी भाषी शिशुओं, बल्कि अन्य भाषा के बड़े बच्चों के लिए भी इन्हें उपयोगी बताया गया है। वास्तव में शिशुगीत के क्षेत्र और उद्देश्य के विषय में यहाँ कुछ भ्रम भी उत्पन्न होता है।

१. शिशुभारती : सोहनलाल द्विवेदी : पृ० २४।
२. पराग : जून, १९६४ : शिशुगीत स्तंभ।

शिशुगीत केवल शिशुओं के लिए होते हैं, चाहे वे हिन्दी भाषी हों या हिन्दीतर भाषी। बड़े बच्चे मनोवैज्ञानिक रूप से शिशु गीतों से आनन्द नहीं ग्रहण कर सकते।

इसी प्रकार शिशुगीतों के लिए मुहावरेदार भाषा का समर्थन शिशुओं के बोधस्तर पर उपयुक्त नहीं है। भाषिक उपलब्धि प्रत्येक बाल वर्ग की भिन्न-भिन्न हुआ करती है। शिशु की आयु तीन से छः वर्ष है और यह वर्ग जिस भाषा के तात्पर्य को हृदयंगम कर सके, वही भाषा शिशुगीतों की होनी चाहिए। पर इस तथ्य को न समझने के कारण हिन्दी के कुछ शिशुगीतकारों ने मुहावरेदार भाषा का व्यवहार किया। मुहावरे भाषा की व्यंजक शक्ति को बढ़ाते हैं। वे भाषा की स्फीति को कम करके सूक्ष्मता पैदा कर देते हैं। पर साथ ही भाषा को दुरूह भी बना देते हैं—विशेष रूप से शिशुओं के लिए निम्नांकित शिशुगीत में व्यवहृत मुहावरा विचारणीय है :—

खड़ी द्वार पर बिल्ली बोली
चूहे को दे झाँसा
बिल के बाहर आ जा बेटा
दूँगी तुझे बताशा।
चूहे ने तब मुँह बिचकाया
चीं-चीं कर वह बोला
चाची, अभी खा रहा लड्डू
भरा हुआ है झोला। [१]।

'झाँसा देना' मुहावरा में टवर्गीय झ के प्रयोग के कारण मुहावरा न केवल कर्ण कटु है बल्कि दुरूह भी है। शिशुगीत का भाषिक रूप ऐसा होना चाहिए कि शिशु पढ़ते ही या सुनते ही सम्वेदना ग्रहण कर सकें। काव्य भाषा सिखाने के लिए नहीं है, वह मनोरंजन करने के लिए भी है

यह तथ्य अंग्रेजी के लोकप्रिय शिशुगीतों को देखने से भी सिद्ध होता है। जैक ऐन्ड जिल बाबा ब्लैकशीप, हंप्टी-डंप्टी या ओल्ड किंग कोल, आदि शिशु गीत अपनी भाषिक सरलता, बाल मनोभावनाएँ, ऊलजलूलपन तथा ध्वन्यात्मकता आदि के कारण ही बालकों में प्रचलित हैं। शिशुगीतों में अर्थतत्त्व सदा महत्त्वहीन रहा है। महत्त्व शब्द और ध्वनियोजना का है। जैसे शिशु के निकट दुनिया

---

१. दूँगी तूझे बताशा : मंगरुराम मिश्र : बालबुक अंक, दिल्ली।

सरलतम रूप में रहती है और उसकी दुनिया कल्पनापूर्ण, क्रीड़ापूर्ण होती है, उसी प्रकार शिशुगीत अत्यन्त सरल और कल्पनाप्रधान होता है, तथा उसकी भाषा सहज बाल भावनाओं के अनुरूप क्रीड़ापूर्ण अथवा गतिशील होती है। ध्वनि सौन्दर्य के लिए वाक्य खण्डों की पुनरुक्ति भी हुआ करती है। 'ओल्ड किंग कोल' में ये विशेषताएँ देखी जा सकती हैं—

ओल्ड किंग कोल वाज ए मेरी ओल्ड सोल,
ऐन्ड ए मेरी ओल्ड सोल वाज ही
ही काल्ड फार हिज पाइप ऐन्ड ही काल्ड फार हिज बाउल
ऐन्ड ही काल्ड फार हिज फिडलर्स थ्री।[1]

शिशुगीत रचना के मूल में इन तथ्यों की अवहेलना ही रचनागत कठिनाई पैदा करती है, जिसकी ओर निरंकार देव सेवक ने संकेत किया है[2] और पराग में भी आगे चलकर इस तथ्य की ओर संकेत किया—'शुद्ध शिशुगीत लिखना उतना आसान नहीं है, जितना समझा जाता है, इसलिए अच्छे गीत बहुत कम लिखे जाते हैं।[3]

पराग ने शिशुगीति विधा पर बल देकर प्रभूत मात्रा में शिशुगीत प्रस्तुत करा दिए। जाने या अनजाने अनेक रचयिताओं ने ऐसे शिशुगीतों की रचना की जिनका स्थान ऐतिहासिक है और हिंदी बाल काव्य में मील के पत्थर हैं। आचार्य अज्ञात के ऐसे दो श्रेष्ठ गीत हैं—

(१) हरी मिर्च का किला बनाया
धनिये का दरवाजा
अंगन की झट टोप बनाई
लड़े नकलची राजा

(२) कतवाने को ऊन कमर की
गया चाँद पर ऊँट
चन्दा की माँ लगी पीटने
कैसे आए ठूँठ

हास्य शिशुगीतों का प्राण है। इसके साथ ही लौकिक यथार्थ का विपर्यय,

---

१. गिफ्ट बुक आव नर्सरी राइम्स : डीन ऐंड सन लि० लन्दन।
२, बालगीत साहित्य : निरंकार देव सेवक, पृ० ३१।
३. पराग : अक्टूबर, १९७०, पृ० ५६।

शिशुगीत केवल शिशुओं के लिए होते हैं, चाहे वे हिन्दी भाषी हों या हिन्दीतर भाषी। बड़े बच्चे मनोवैज्ञानिक रूप से शिशु गीतों से आनन्द नहीं ग्रहण कर सकते।

इसी प्रकार शिशुगीतों के लिए मुहावरेदार भाषा का समर्थन शिशुओं के बोधस्तर पर उपयुक्त नहीं है। भाषिक उपलब्धि प्रत्येक बाल वर्ग की भिन्न-भिन्न हुआ करती है। शिशु की आयु तीन से छः वर्ष है और यह वर्ग जिस भाषा के तात्पर्य को हृदयंगम कर सके, वही भाषा शिशुगीतों की होनी चाहिए। पर इस तथ्य को न समझने के कारण हिन्दी के कुछ शिशुगीतकारों ने मुहावरेदार भाषा का व्यवहार किया। मुहावरे भाषा की व्यंजक शक्ति को बढ़ाते हैं। वे भाषा की स्फीति को कम करके सूक्ष्मता पैदा कर देते हैं। पर साथ ही भाषा को दुरूह भी बना देते हैं—विशेष रूप से शिशुओं के लिए निम्नांकित शिशुगीत में व्यवहृत मुहावरा विचारणीय है :—

खड़ी द्वार पर बिल्ली बोली
चूहे को दे झाँसा
बिल के बाहर आ जा बेटा
दूँगी तुझे बताशा।
चूहे ने तब मुँह बिचकाया
ची-चीं कर वह बोला
चाची, अभी खा रहा लड्डू
भरा हुआ है झोला। [१]।

'झाँसा देना' मुहावरा में टवर्गीय झ के प्रयोग के कारण मुहावरा न केवल कर्ण कटु है बल्कि दुरूह भी है। शिशुगीत का भाषिक रूप ऐसा होना चाहिए कि शिशु पढ़ते ही या सुनते ही सम्वेदना ग्रहण कर सकें। काव्य भाषा सिखाने के लिए नहीं है, वह मनोरंजन करने के लिए भी है

यह तथ्य अंग्रेजी के लोकप्रिय शिशुगीतों का देखने से भी सिद्ध होता है। जैक ऐन्ड जिल बाबा ब्लैकशीप, हम्प्टी-डम्प्टी या ओल्ड किंग कोल, आदि शिशु गीत अपनी भाषिक सरलता, बाल मनोभावनाएँ, ऊलजलूलपन तथा ध्वन्यात्मकता आदि के कारण ही बालकों में प्रचलित हैं। शिशुगीतों में अर्थतत्त्व सदा महत्त्वहीन रहा है। महत्त्व शब्द और ध्वनियोजना का है। जैसे शिशु के निकट दुनिया

१. दूँगी तुझे बताशा : मंगरुराम मिश्र : बालबुक अंक, दिल्ली।

सरलतम रूप में रहती है और उसकी दुनिया कल्पनापूर्ण, क्रीड़ापूर्ण होती है, उसी प्रकार शिशुगीत अत्यन्त सरल और कल्पनाप्रधान होता है, तथा उसकी भाषा सहज बाल भावनाओं के अनुरूप क्रीड़ापूर्ण अथवा गतिशील होती है। ध्वनि सौन्दर्य के लिए वाक्य खण्डों की पुनरुक्ति भी हुआ करती है। 'ओल्ड किंग कोल' में ये विशेषताएँ देखी जा सकती हैं—

ओल्ड किंग कोल वाज ए मेरी ओल्ड सोल,
ऐन्ड ए मेरी ओल्ड सोल वाज ही
ही काल्ड फार हिज पाइप ऐन्ड ही काल्ड फार हिज बाउल
ऐन्ड ही काल्ड फार हिज फिडलर्स थ्री।[1]

शिशुगीत रचना के मूल में इन तथ्यों की अवहेलना ही रचनागत कठिनाई पैदा करती है, जिसकी ओर निरंकार देव सेवक ने संकेत किया है[2] और पराग में भी आगे चलकर इस तथ्य की ओर संकेत किया—'शुद्ध शिशुगीत लिखना उतना आसान नहीं है, जितना समझा जाता है, इसलिए अच्छे गीत बहुत कम लिखे जाते हैं।[3]

पराग ने शिशुगीति विधा पर बल देकर प्रभूत मात्रा में शिशुगीत प्रस्तुत करा दिए। जाने या अनजाने अनेक रचयिताओं ने ऐसे शिशुगीतों की रचना की जिनका स्थान ऐतिहासिक है और हिंदी बाल काव्य में मील के पत्थर हैं। आचार्य अज्ञात के ऐसे दो श्रेष्ठ गीत हैं—

(१)
हरी मिर्च का किला बनाया
धनिये का दरवाजा
अंगन की झट टोप बनाई
लड़े नकलची राजा

(२)
कतवाने को ऊन कमर की
गया चाँद पर ऊँट
चन्दा की माँ लगी पीटने
कैसे आए ठूंठ

हास्य शिशुगीतों का प्राण है। इसके साथ ही लौकिक यथार्थ का विपर्यय,

---

१. गिफ्ट बुक आव नर्सरी राइम्स : डीन ऐंड सन लि० लन्दन।
२, बालगीत साहित्य : निरंकार देव सेवक, पृ० ३१।
३. पराग : अक्टूबर, १९७०, पृ० ५६।

जो ऊलजलूलपन उत्पन करता है, शिशुगीत को सरस बनाता है। सुधाकर दीक्षित का शिशुगीत द्रष्टव्य है—

बिल्ली ने खोला स्कूल
बैठ गई लेकर इक रूल
माफ करी जब पूरी फीस
आए चूहे बीस पच्चीस
उल्टा सीधा पाठ पढ़ाया
चुपके से एक चूहा खाया
जाने किसने खोली पोल
शोर किया और पीटा ढोल
दरवाजे में ताला डाल
चूहों ने कर दी हड़ताल।[1]

विष्णुकान्त पाण्डेय के निम्नांकित शिशुगीत में भाव सौन्दर्य के साथ भाषा पर भी नियन्त्रण है। जबकि उपर्युक्त शिशुगीत में भाषा कवि के नियन्त्रण में नहीं रह सकी है। पाण्डेय जी का कुत्ता और थानेदार शिशुगीत इस प्रकार है—

फोन उठा कर कुत्ता बोला
सुनिए थानेदार
घर में चोर घुसे हैं, बाहर
सोया पहरेदार
घरवाले सब डर के मारे
पड़े हुए चुपचाप
मुझको भी अब डर लगता है
जल्दी आएँ आप।[2]

शिशुगीत विधा हिंदी बालकाव्य में यद्यपि अब काफी लोकप्रिय हो चुकी है पर विषय और छंद वैविध्य समाप्त होता जा रहा है। सैकड़ों शिशुगीत एक ही छंद पर निर्मित हुए हैं। पशु-पक्षियों तक ही शिशुगीतों को सीमित कर देने से नवीनता भी कम आ सकी है।

इस विधा को आगे बढ़ाने के लिए नये विषयों की उद्भावना, छंद विस्तार और अत्यधिक फैलाव की आवश्यकता है। भाषा प्रयोग पर विशेष दृष्टि अपेक्षित

१. दूँगी तुझे बताशा : प्र० बालबुक बैंक, दिल्ली।

२. दूँगी तुझे बताशा : बालबुक बैंक, दिल्ली।

है। फिलहाल शिशुगीत रूढ़िबद्ध होता जा रहा है जो इसकी सहज धारा को अवरुद्ध कर रहा है। शुद्ध और मुक्त भाषा से ही कोई शिशुगीत श्रेष्ठ बन सकता है। ऐसा एक शिशुगीत इस प्रकार है—

नीली घोड़ी लाल लगाम
बोलो जी क्या दोगे दाम ?
एक इकन्नी
एक दुअन्नी
या चाँदी की एक चुअन्नी।
ना......ना......ना......
यह हीरों की घोड़ी है
यह वीरों की घोड़ी है
करती है यह सबको मात
सबसे ऊँची इसकी जात
बादल जैसी उड़ती है
पार समन्दर करती है
बड़े निराले इसके काम
नीली घोड़ी लाल लगाम।[1]

शिशुगीत से बालकाव्य तक का उपर्युक्त विवेचन स्वातन्त्र्योत्तर काल की काव्यगत प्रगति और प्रवृत्तियों का सूचक है। निश्चित रूप से पूर्वकालीन बाल काव्य से इसकी दिशाएँ कुछ भिन्न रही हैं। इधर आकर यह भी अनुभव किया जा रहा है कि बाककाव्य विधा की उपेक्षा उचित नहीं है। बालकाव्य बाल साहित्य की आवश्यक और महत्त्वपूर्ण विधा है। पर इसकी उपेक्षा केवल सम्पादकों द्वारा ही नहीं, रचनाकारों द्वारा भी हुई है और ऐसी रचनाएँ प्रस्तुत की गईं, जिन्हें बालक कभी बालकाव्य के रूप में ग्रहण न कर सकेंगे।

पर इस क्षेत्र में कुछ रचनाशील साहित्यकारों ने लगन से भी काम किया और कतिपय महत्त्वपूर्ण बाल काव्य कृतियाँ प्रकाशित हुईं। प्रकाशित कृतियों में आओ गाएँ (शम्भुनाथ शेष), प्रतिनिधि बाल सामूहिक गान (सं० योगेन्द्र कुमार बल्ला, श्रीकृष्ण), अलबेली बछिया (कुदसिया जैदी), चुन्नूमुन्नू, (सरस्वती कुमार

१. नीली घोड़ी लाल लगाम : वीरेन्द्र काश्यप : पराग : अगस्त, १९६५।

दीपक), बालगीत (शीला गुजराल), मामा जी दिल्ली से आए (ललित गोस्वामी,) रचना के क्षेत्र में कुशल साहित्यकार हैं जो कहानी विधा के विकास के लिए तत्पर हैं। आज दादी नानी की भूमिका कुशल कहानीकारों के हाथ में आ गई है। श्रव्य कहानी ने लिखित कहानी का रूप ले लिया है। माध्यम बदलने से पद्धति भी बदल गई है।

हमारे पक्षी (रुद्रदास मिश्र), दूँगी तुझे बताशा (शिशुगीत संग्रह), जय जवाहर (वीरेन्द्र मिश्र), सुनो राम की कथा (वीरेन्द्र मिश्र), रूस, जर्मनी आदि की लोक कथाओं के काव्य रूपान्तर (निरंकार देव सेवक), पढ़ो, हँसो और गाओ, (उर्मिला वर्मा), हुआ सबेरा, (रमापति शुक्ल) आदि विशेष महत्त्व की हैं।

स्वातन्त्र्योत्तर काल के गत वर्षों में थोड़ी शिथिलता भी आई है। अतः आज बालकाव्य को समुन्नत करने और उसकी गति को तीव्रता प्रदान करने की आवश्यकता है।

कहानी

पृष्ठभूमि

कहानी बाल साहित्य की प्रमुख विधा है। अब तक की बाल साहित्य की रचना पर दृष्टि ले जाने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि बाल साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा कहानी की रचना अधिक हुई। कहानी है भी ऐसी विधा जिसमें बालक सर्वाधिक रुचि लेते हैं। बौद्धिक विकास के प्रत्येक स्तर पर... शिशु अवस्था से लेकर किशोर अवस्था तक बालक कहानी में आनन्दानुभूति करते हैं।

हिन्दी में शिशु अवस्था की कहानियों की रचना अत्यल्प है। शिशुओं के लिए जिस प्रकार काव्य या शिशुगीतों की रचना की गई, उस प्रकार शिशु कहानियों की नहीं। इसका कारण हिन्दी में शिशु पत्रिकाओं का अभाव है। बड़ों की पत्रिकाओं में भी शिशुओं के लिए कहानी स्तंभ नहीं है।

बालकों को कहानी इतनी अधिक रोचक लगती है कि अनेक बालक तो बिना कहानी सुने सोते ही नहीं। बड़ी-बूढ़ी स्त्रियाँ, दादी, नानी या माँ, इन कहानियों से बच्चों की मानसिक तृप्ति करती हैं। कहानी सुनते समय बच्चे उसके साथ तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं। वे उस कहानी के हर्ष और शोक का अंग बन जाते हैं। कहानी के सद्पात्रों के प्रति उनके मन में सहानुभूति पैदा होती है और दुष्ट पात्रों के प्रति रोष। इस प्रकार वे सामजिक रूप से सत् के ग्रहण

और असत के त्याग का संस्कार ग्रहण करते हैं। समाज शास्त्रीय दृष्टि से कहानी या साहित्य की यह बड़ी महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है।

पर दादी, नानी या माँ की कहानियों का दायरा सीमित है। इसमें कहानी की मूल प्रवृत्ति जिज्ञासा (ससपेन्स) के होते हुए भी इस पद्धति का विकास तब हुआ था जब मुद्रित पुस्तकों का अभाव था आज के मुद्रण के युग में कहानी रचना के क्षेत्र से कुशल साहित्यकार हैं जो कहानी विधा के विकास के लिए तत्पर हैं। आज दादी नानी की भूमिका कुशल कहाकरों के हाथ में आ गई है। श्रव्य कहानी ने लिखित कहानी रूप ले लिया है। माध्यम बदलछ से पद्धति भो बदल गई है।

आज की कहानी का पाठक लेखक से काफी दूर रहता है। लेखक और पाठक के बीच सम्पादक मध्यस्थता करता है। एक ओर वह सामान्य पाठक की रुचि जानने की चेष्टा करता है, दूसरी ओर कहानी की भविष्य की दिशा और पाठक की रुचि में परिवर्तन भी करता है। इसके साथ ही वह लेखक का भी मार्ग निर्देश करता है।

लेखक भी पाठक की रुचि और कहानी के स्वरूप तथा लक्ष्य का चिन्तन करता है। आज बाल साहित्य के निर्माण में लेखक और सम्पादक का संयुक्त दायित्व है।

कहानी के माध्यम से बालक अपने जीवन के अनुभवों को और समृद्ध कर लेता है अंततः कहानी बहिर्जगत की घटनाओं पर ही आधारित होती है। बालक का जीवन स्वयं में अधिक व्यापक नहीं होता। कहानी के माध्यम से वह अज्ञात तथ्यों और अनुभूत भावों का साक्षात्कार करता है। बालक की बाल्यावस्था के वर्ष आश्चर्य, जिज्ञासा और अनुमान के वर्ष होते हैं। बालक का क्रियाशील और विकासमान मन इन वर्णों के अनुभवों को समृद्ध करने की जितनी सामग्री अच्छी पुस्तकों में प्राप्त कर सकता है, उतनी अन्यत्र नहीं।' [१]

बाल कहानी का पक्ष केवल मनोरंजन ही नहीं होता। वह बड़ी अनुरंजक शैली में ज्ञान भी प्रदान करती है। कहानी की शैली में भूगोल, इतिहास जैसे नीरस विषयों की भी जानकारी कराई जाती है। कभी-कभी तो कहानी मानव को ऐसी चेतना प्रदान करती है कि उसका सम्पूर्ण व्यक्तित्व ही बदल जाता है। कहानी के ऐसे प्रभाव में आकर लोग दुराचारी से सदाचारी और हिंसक से अहिंसक बन जाते हैं। इतिहास के अर्द्धसत्य पर आधारित निम्नांकित कहानी में इसी तथ्य का उद्‌घाटन हुआ है :—

---

१. द अनरिलक्टेन्ट ईयर्स , पृ० १३३।

'कहते हैं नादिरशाह जब दिल्ली को पूर्णतः ध्वस्त कर चुका और भारी लूटपाट तथा हत्याकाण्ड कर लिया तो एक दिन वह अपने मन्त्री के साथ घूमने निकला। रास्ते में उसने एक पेड़ पर दो उल्लू बैठे देखे। लगता था जैसे वे बातें कर रहे हैं।

नादिरशाह ने अपने मन्त्री से पूछा—'तुम इनकी बोली समझते हो। बताओ ये क्या कह रहे हैं?'

मन्त्री चतुर था। उसने तुरन्त एक कहानी गढ़ ली और कहा--'हुजूर ये नर उल्लू और उसकी स्त्री मादा उल्लू हैं। मादा उल्लू दहेज के लिए चिंतित है। उल्लू खण्डहरों में रहते हैं दहेज में भी ये खण्डहर ही देते हैं।

नर उल्लू अपनी स्त्री मादा उल्लू को समझाते हुए कहता है—नादिरशाह ने बहुत से घर लूटपाट और हत्या के द्वारा खण्डहर बना दिए हैं। इसलिए दहेज की चिन्ता बिलकुल मत करो।

राजा मन्त्री की चतुराई नहीं समझ सका। मन्त्री पशु-पक्षियों की बोली समझने में चतुर समझा जाता था। राजा को उसकी बात पर विश्वास हो गया। अपनी करनी पर उसे पश्चाताप हुआ। उसने अत्याचार बन्द कर दिये।

मानसिक क्रांति की ऐसी कहानियाँ हिन्दी तथा अन्य भाषाओं में अनेक लिखी गई हैं, जिनमें कोई न कोई उद्देश्य या संकेत प्रकारान्तर से निहित है।

इस प्रकार की सोद्देश्य कहानियों का अपना महत्त्व है। उपर्युक्त कहानी से क्रूर राजा के मानसिक परिवर्तन की कल्पना की गयी है, हिन्दी में ऐसी कहानियाँ प्रभूत मात्रा में निर्मित हुई हैं। ऐसी कहानियों की रचना में कहानी का उद्देश्य पूर्व कल्पित रहता है और पात्रों का स्वरूप तथा घटनावैचित्र्य उसी के अनुसार चलता है।

पर ऐसी कहानियों में कहानीपन के अभाव की भी आशंका रहती है। कहानी के मूल तत्त्वों का निर्वाह ही कहानी की उत्तमता प्रदान करता है और बाल पाठक उसके प्रति आकर्षित होता है। अन्यथा कहानी कृत्रिम होकर रह जाती है। लिलियन हेलेना स्मिथ ने इसी खतरे की ओर संकेत करते हुए लिखा है—'कुछ ऐसे लेखक होते हैं जो बालक को आनन्द प्रदान करने वाली कहानी कहने की अपेक्षा ऐसी कहानी लिखने के लिए अधिक उत्सकु रहते हैं, जिसमें किसी

प्रौढ़ रुचि के उद्देश्य का समर्थन किया गया हो।' [1]

बालबोध के स्तर पर ऐसी कहानियों का यदि वे कहानी हैं तो मनोवैज्ञानिक महत्त्व कम नहीं। बाल्यावस्था चरित्र गठन की भी अवस्था होती है। चरित्र गठन मनोतत्त्वों से होता है। ऐसी स्थिति में ये कहानियाँ बालक के व्यक्तित्व को सही दिशा में विकसित होने में सहयोग प्रदान करती हैं।

स्वातन्त्र्योत्तर कहानी

कहानी विधा की उपर्युक्त प्रभावशीलता और वैविध्य को स्वातन्त्र्योत्तर बाल साहित्यकारों ने पहचाना। इस काल की कहानियों को काफी विस्तृत करने का प्रयत्न हुआ लोक कथा के रूप में विकसित हिन्दी की बाल कहानी इसी समय आधुनीक स्वरूप ग्रहण करती है।

अध्ययन की दृष्टि से हिन्दी बाल कहानी को वर्गीकृत भी किया जा सकता है। हरिकृष्ण देवसरे ने बाल कहानी का वर्गीकरण इस प्रकार किया है—

(१) उपदेशात्मक कहानियाँ
(२) पशु-पक्षी सम्बन्धी कहानियाँ
(३) ऐतिहासिक कहानियाँ
(४) साहसिक कहानियाँ
(५) वैज्ञानिक कहानियाँ
(६) मनोवैज्ञानिक कहानियाँ
(७) मुहावरों की कहानियाँ
(८) गीत कथाएँ
(९) परी कथाएँ [2]

उपर्युक्त वर्गीकरण में विषय और शैली, दोनों का मिश्रण हो गया है। जैसे उपदेशात्मक कहानियाँ गीत कथाएँ भी हो सकती हैं और पशु पक्षी सम्बन्धी कहानियाँ उपदेशात्मक भी हो सकती हैं तथा साहसिक भी। अस्तु इन सभी को

---

१. देयर आर ऑथर्स हू आर मोर एंक्सस टू राइट ए स्टोरी दैट बिल सपोर्ट ए काज इन ह्विच दे, एज एडल्ट्स, आर इंट्रेस्टेड रादर देन टू टेल ए स्टोरी फार द सेक आफ द प्लेजर इट विल गिम टू ए चाइल्ड—द अनरिलेक्टेंट ईयर्स, एल० एच० स्मिथ, पेज ३८।

२. हिंदी बाल साहित्य : एक अध्ययन : हरिकृष्ण देवसरे, पृ० २७०।

'कहते हैं नादिरशाह जब दिल्ली को पूर्णतः ध्वस्त कर चुका और भारी लूटपाट तथा हत्याकाण्ड कर लिया तो एक दिन वह अपने मन्त्री के साथ घूमने निकला। रास्ते में उसने एक पेड़ पर दो उल्लू बैठे देखे। लगता था जैसे वे बातें कर रहे हैं।

नादिरशाह ने अपने मन्त्री से पूछा–'तुम इनकी बोली समझते हो। बताओ ये क्या कह रहे हैं?'

मन्त्री चतुर था। उसने तुरन्त एक कहानी गढ़ ली और कहा--'हुजूर ये नर उल्लू और उसकी स्त्री मादा उल्लू हैं। मादा उल्लू दहेज के लिए चिंतित है। उल्लू खण्डहरों में रहते हैं दहेज में भी ये खण्डहर ही देते हैं।

नर उल्लू अपनी स्त्री मादा उल्लू को समझाते हुए कहता है—नादिरशाह ने बहुत से घर लूटपाट और हत्या के द्वारा खण्डहर बना दिए हैं। इसलिए दहेज की चिन्ता बिलकुल मत करो।

राजा मन्त्री की चतुराई नहीं समझ सका। मन्त्री पशु-पक्षियों की बोली समझने में चतुर समझा जाता था। राजा को उसकी बात पर विश्वास हो गया। अपनी करनी पर उसे पश्चाताप हुआ। उसने अत्याचार बन्द कर दिये।

मानसिक क्रांति की ऐसी कहानियाँ हिन्दी तथा अन्य भाषाओं में अनेक लिखी गई हैं, जिनमें कोई न कोई उद्देश्य या संकेत प्रकारान्तर से निहित है। इस प्रकार की सोद्देश्य कहानियों का अपना महत्व है। उपर्युक्त कहानी से क्रूर राजा के मानसिक परिवर्तन की कल्पना की गयी है, हिन्दी में ऐसी कहानियाँ प्रभूत मात्रा में निर्मित हुई हैं। ऐसी कहानियों की रचना में कहानी का उद्देश्य पूर्व कल्पित रहता है और पात्रों का स्वरूप तथा घटनावैचित्र्य उसी के अनुसार चलता है।

पर ऐसी कहानियों में कहानीपन के अभाव की भी आशंका रहती है। कहानी के मूल तत्वों का निर्वाह ही कहानी की उत्तमता प्रदान करता है और बाल पाठक उसके प्रति आकर्षित होता है। अन्यथा कहानी कृत्रिम होकर रह जाती है। लिलियन हेलेना स्मिथ ने इसी खतरे की ओर संकेत करते हुए लिखा है—'कुछ ऐसे लेखक होते हैं जो बालक को आनन्द प्रदान करने वाली कहानी कहने की अपेक्षा ऐसी कहानी लिखने के लिए अधिक उत्सकु रहते हैं, जिसमें किसी

प्रौढ़ रुचि के उद्देश्य का समर्थन किया गया हो।' १

बालबोध के स्तर पर ऐसी कहानियों का यदि वे कहानी हैं तो मनोवैज्ञानिक महत्व कम नहीं। बाल्यावस्था चरित्र गठन की भी अवस्था होती है। चरित्र गठन मनोतत्त्वों से होता है। ऐसी स्थिति में ये कहानियाँ बालक के व्यक्तित्व को सही दिशा में विकसित होने में सहयोग प्रदान करती हैं।

स्वातन्त्र्योत्तर कहानी

कहानी विद्या की उपर्युक्त प्रभावशीलता और वैविध्य को स्वातन्त्र्योत्तर बाल साहित्यकारों ने पहचाना। इस काल की कहानियों को काफी विस्तृत करने का प्रयत्न हुआ लोक कथा के रूप में विकसित हिन्दी की बाल कहानी इसी समय आधुनीक स्वरूप ग्रहण करती है।

अध्ययन की दृष्टि से हिन्दी बाल कहानी को वर्गीकृत भी किया जा सकता है। हरिकृष्ण देवसरे ने बाल कहानी का वर्गीकरण इस प्रकार किया है—

(१) उपदेशात्मक कहानियाँ
(२) पशु-पक्षी सम्बन्धी कहानियाँ
(३) ऐतिहासिक कहानियाँ
(४) साहसिक कहानियाँ
(५) वैज्ञानिक कहानियाँ
(६) मनोवैज्ञानिक कहानियाँ
(७) मुहावरों की कहानियाँ
(८) गीत कथाएँ
(९) परी कथाएँ[२]

उपर्युक्त वर्गीकरण में विषय और शैली, दोनों का मिश्रण हो गया है। जैसे उपदेशात्मक कहानियाँ गीत कथाएँ भी हो सकती हैं और पशु पक्षी सम्बन्धी कहानियाँ उपदेशात्मक भी हो सकती हैं तथा साहसिक भी। अस्तु इन सभी को

---

१. देयर आर ऑथर्स हू आर मोर एंक्सस टू राइट ए स्टोरी दैट विल सपोर्ट ए काज इन ह्विच दे, एज एडल्ट्स, आर इंट्रेस्टेड रादर देन टू टेल ए स्टोरी फार द सेक आफ द प्लेजर इट विल गिव टू ए चाइल्ड—द अनरिलेक्टेंट ईयर्स, एल० एच० स्मिथ, पेज ३८।

२. हिंदी बाल साहित्य : एक अध्ययन : हरिकृष्ण देवसरे, पृ० २७०।

अंतर्भुक्त करनेवाला शैलीगत वर्गीकरण इस प्रकार हो सकता है—

(१) लोक कथाएँ

(२) लोक कथाश्रित कहानियाँ

(३) आधुनिक कहानियाँ

लोक कथाएँ

जैसा पहले विवेचन किया जा चुका है, लोक कथाएँ प्रागैतिहासिक चेतना का तत्त्व है। मनोरंजन प्रदान करने या संदेश देने की यह एक विशिष्ट और आधुनिक संदर्भ में सरल शैली अपनाई गई थी। इसके पात्र पशु पक्षी,-परियाँ या राजा रानी होते थे। लोक कथाओं में जीवन के सहज विश्वासों को बड़ा महत्त्व प्रदान किया गया है। सभी लोक कथाओं में काव्य-न्याय मूल तत्त्व के रूप में हैं।

लोक कथाओं के पढ़ने या सुनने का संस्कार बाल मन का अत्यन्त पुराना संस्कार है। उसी संस्कार के कारण स्वातन्त्र्योत्तर काल में बाल पाठक ने लोक कथाओं में बड़ी रुचि ली। देश की समस्त भाषाओं और विदेशी लोक कथाओं के अनेक संग्रह प्रकाशित हुए और प्रत्येक पत्रिका में लोक कथाओं को महत्त्व दिया।

वस्तुतः लोक कथाएँ सदाबहार वृक्षों की भाँति हैं। ये अर्थ विहीन होती ही नहीं। इसके विपरीत नये-नये अर्थों की इनमें सम्भावना निकलती रहती है। यही कारण है कि आज भी लोक कथाएँ प्रस्तुत की जाती हैं—अपने मूल रूप में भी और यथावश्यकता परिष्कृत रूप में भी। सभी बाल पत्रिकाओं ने लोक कथाओं में रुचि ली। यहाँ तक की सामन्ती दृष्टि से आज की व्यावहारिक दृष्टि नहीं है—उपलब्ध लोक कथाएँ भी बाल साहित्य में स्थान पा रही हैं।

लोक कथाएँ प्राचीन अलिखित साहित्य का रूप हैं। उनका परित्याग भी उचित नहीं है। परीकथाओं के विषय में आनन्द प्रकाश जैन के व्यक्त किए गए विचार लोक कथाओं के लिए भी तर्कसंगत हैं कि ये कथाएँ जहाँ तक देशी-विदेशी साहित्य में मौजूद हैं, उन्हें नमूनों के रूप में रखा जाए, नये-नये ढंग से चित्रित करके और रूपान्तर करके उन्हें आज के बच्चों का अधिक से अधिक मनोरंजन व ज्ञानवर्द्धन करने योग्य बनाया जाए, उनमें नये युग के नीतितत्त्वों का समावेश किया जाय और उनमें उठाए गए प्रतीकों को नये युग का संदेश देनेवाली रचनाओं

में प्रयुक्त किया जाए।[१]

लोक कथाओं के रिक्थ का परित्याग सम्भव भी नहीं है। युगों की धारा में बहती आई लोक कथाओं ने अपने मानस के अनुकूल बना लिया है। पुराकाल के लोक कथा सुनने वालों ने भी बालकों को सुनाते समय उनमें परिवर्तन किए होंगे और उन तत्त्वों का समावेश किया होगा। जिनसे बालकों का अनुरंजन हो सकता है और उन तत्त्वों को अलग किया होगा जो बाल श्रोताओं के लिए उपयुक्त न होंगे।

यही कारण है कि हिन्दी या हिन्दी से इतर भाषा की बाल पत्रिकाएँ लोक कथाओं को भी आधुनिक कहानियों के साथ स्थान देती हैं। इनमें एक रूप लोक कथा को ज्यों का त्यों प्रस्तुत करने का है और दूसरा रूप आधुनिक परिवेश के अनुकूल बनाकर। दूसरे रूप में लोक कथा प्रतोक या नए सन्देश का वाहक बन जाती है। इस रूप में लोक कथा प्रस्तुत करना साधारणतः कठिन है। इसलिए पहले प्रकार से अर्थात् लोक कथा को ज्यों का त्यों भाषा को परिष्कृत करके प्रस्तुत कर दिया जाता है। इस प्रकार की एक मनोरंजक लोक कथा है एक-थी

एक थी चिड़िया, एक था चिरौटा। दोनों बड़े प्यार से रहते थे। संयोग से एक दिन वे राजा के महल में गए और वहाँ एक जगह बैठकर जोर जोर से गीत गाने लगे। उनका शोर सुनकर राजा को बड़ा गुस्सा आया। उसने सिपाहियों को हुक्म दिया कि उन दोनों को पकड़ लो। चिड़िया बेचारी भोली-भाली थी झट पकड़ में आ गई! चिरौटा ठहरा चालाक। साफ निकल भागा।

चिरौटा अब अकेला रह गया। घर लौटा तो उसे चिड़िया की याद सताने लगी। सो उसने उसे छुड़ाने की ठानी। सोच साचकर उसने मिट्टी की गाड़ी बनाई उसमें मेढक जोते और उस पर बैठकर राजा के महल की ओर चल दिया।

चलते-चलते रास्ते में उसे बिल्ली मिली। बोली 'कहाँ जा रहे हो चिरौटा भैया ?' चिरौटे ने कहा—

मट्टी की मैंने गाड़ी बनाई
मेंढक जोड़े जायँ

१. बच्चों का साहित्य कैसा हो : आनंद प्रकाश जैन : धर्मयुग : १४ जून, १९६४।

राजा पकड़ी हमारी चिरैया
उसे छुड़ावन जायँ
बिल्ली बोली 'हम चलें ?'
उसने कहा, 'चलो एक से दो भले।'

इसके बाद चिरौटे को चींटी और नदी भी मिली उसने सबको अपनी गाड़ी में बैठा लिया। फिर राजा के यहाँ पहुँचे। राजा क्रोध में आ गया। उसने चिरौटे को पकड़ना चाहा। किन्तु चींटी, बिल्ली और नदी सबने मिलकर ऐसा उत्पात मचाया कि राजा ने विवश होकर चिड़िया को छोड़ दिया। चिरौटा चिड़िया लेकर घर वापस आया।

कहानी मनोरंजक तो है ही बुद्धि और साहस से काम लेने का प्रच्छन्न संकेत भी देती है। एक सामान्य पक्षी के द्वारा शक्तिशाली राजा की पराजय मानव को साहसी, उत्साही, न्यायनिष्ठ आशावादी और जीवन के प्रति आस्थावान बनाती है। साधारणतः प्रत्येक लोक कथा में इसी प्रकार के संकेत हैं। [1]

प्रतीक शैली में हिन्दी में एक रूसी लोक कथा 'बूढ़े बाबा का दस्ताना' अनूदित होकर आई है। उसमें इस शैली की सभी विशेषताएँ हैं।

ऐसी लोक कथा में कहानी सावधानी के साथ इस प्रकार कही जाती है कि अधुनिक जीवन का सन्दर्भ व्यक्त हो जाय'। बूढ़े बाबा का दस्ताना में यह तत्त्व संकेतित है कि धूर्तअपनी धूर्तता और बल से भीले लोगों को पीछे ढकेलकर दूसरों के आधिकारों का हनन करते हैं और सीधे सादे लोग इसके फल स्वरूप अधिकार वंचित होकर दुखी रहते हैं।

लोक कथाश्रित कहानियाँ :—

लोक कथाओं की शैली की विशेषता है कि इसका घटनाचक्र स्वाभाविक रूप से आगे बढ़ता जाता है। चरम परिणाति पर कहानी पूरी हो जाती है। प्ररम्भिक उम्र के बच्चों के लिए इस शैली की कहानियाँ सुबोध होने के कारण उपयुक्त होती हैं।

कलातीतता भी लोक कथाओं में हुआ करती हैं। एक था राजा, एक थी रानी 'या पुराने समय की बात है' आदि रूपों में ये कथाएँ प्रारम्भ हुआ करती

---

१. बूढ़े बाबा का दस्ताना : बिदेशी भाषा प्रकाशन गृह : मास्को।

हैं। और अंत में राजा-रानी सामन्त वर्ग, पशु-पक्षी, पेड़-पौधे लोक कथाओं के पात्रों के रूप में कल्पित किए जाते हैं।

लोक कथाओं की शैली के उपर्युक्त तीन आधार ऐसे हैं जो आसानी से पकड़ में आ जाते हैं। बाल प्रकृति को बालकों की साहित्यिक पसंदगी को जाननेवाले बाल साहित्यकारों ने उक्त तत्त्वों के आधार पर ऐसी कहानियाँ लिखीं जो परंपरित लोक कथाएँ तो न थीं, पर लोक कथाओं जैसी ही थीं। इन्हें लोक कथाश्रित कहानियाँ कह सकते हैं।

ऐसी कहानियों में कुछ पूर्णरूप से प्राचीन पृष्ठभूमि की हैं, कुछ में आधुनिक समस्याओं का समावेश है तो किसी कहानी में प्राचीन और आधुनिक का शैलीगत समन्वय है। राजाओं, सामन्तों पशु-पक्षियों, मनुष्यों—सभी को पात्र रूप में कल्पित किया गया है।

स्वातन्त्र्यपूर्व काल में विशुद्ध लोक कथाओं को लोक बोली (भोजपुरी बुंदेलखण्डी आदि) में प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति थी, स्वातन्त्र्योतर काल में लोक कथाश्रित कहानियाँ लिखने या लोक कथाओं का ढाँचा अपना लेने की प्रवृत्ति अधिक रही।

लोक कथाश्रित कहानियों की रचना का यह उपयुक्त रूप है। इस प्रकार लोक कथाओं के आधार पर निर्मित बाल कहानियों के माध्यम से वांछित सन्देश प्रेषित किया जा सकता है। लोक कथाओं के जो तत्त्व आज अनावश्यक हो गए हैं, उन्हें छोड़ा भी जा सकता है। पंचतन्त्र, हितोपदेश, कथा सरित्सागर आदि अनेक पुराकालीन कथा ग्रन्थों से ऐसी कहानियाँ ली जा सकती हैं जो नये युग की या इच्छित समस्या उपस्थित कर सकें।

इस कार्य को अनेक बाल कथाकारों ने सफलता से पूरा किया है। मोहन चन्द्र जोशी 'सुधाकर' की कहानी 'पहाड़वाला भालू'[1] इसी प्रकार की है—

तराई का रहनेवाला एक भालू एक साल गरमी के मौसम में तराई को छोड़ कर पहाड़ पर चला गया क्यों कि उस साल इतनी अधिक गरमी पड़ रही थी कि जितनी उससे पहले कभी नहीं पड़ी थी। ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों पर पहुँच कर उसे बड़ा आनन्द आया। वहाँ उसे चीड़, देवदार और बाँस के वृक्षों के घने वन मिले उनमें

१. पहाड़वाला भालू : मनहमोन, मई, १६६४।

वह जी भर कर घूमता रहा। ठंडे पानी के झरने मिले। उनमें वह जी भर कर नहाता रहा। ठंडी हवा मिली। उसका वह जी भर कर आनन्द उठाता रहा।

एक दिन वह रोज की तरह जंगल में घूम रहा था, अचानक उसे एक और भालू नजर आ गया। तपाक से आगे बढ़कर तराई वाले भालू ने पहाड़वाले भालू का अभिवादन किया—नमस्ते भाई साहब।

तराईवाला भालू और पहाड़वाल भालू, दोनों साथ-साथ रहना प्रारम्भ करते हैं। घटना क्रम आगे बढ़ता है। दोनों की मनोरंजक घटनाएँ बाल पाठकों को प्रिय लगेंगी। कहानी में आगे की घटनाओं का क्रमशः उद्‌घाटन होता है। लेखक जंगली जानवरों का आश्रय लेकर प्रकारान्तर से मानवजीवन की कहानी कहता है।

कभी-कभी परम्परित लोक कथाओं में ही घटनाक्रम बदलकर और पात्रों में हेर-फेर कर कहानी को नवीनता प्रदान कर दी जाती है। इस प्रकार लोक कथा-श्रित कहानी की सर्जना के अनेक रूप हो सकते हैं।

आधुनिक कहानियाँ

आधुनिक बाल कहानियों का विकास क्रमशः हुआ है। कहानी की प्रारम्भिक अवस्था लोक कथाओं की है। एक लम्बे अरसे तक लोक कथाओं ने बाल पाठकों को परितृप्त किया। पर परिवेश और संस्कृति विशेष से सम्बद्ध होने के कारण लोक कथाएँ काफी समय तक मनोरंजन करने के बाद जीवन से दूर पड़ने लगीं।

इसी अवस्था पर आकर लोक कथाओं में परिवर्तन किए जाने लगे और लोक कथाश्रित कहानियों की रचना हुई। नवीन और प्राचीन का इन कहानियों में समन्वय था। शैली में पुरानापन था, पर समस्यायें नई थीं। अपने बदले रूप में लोक कथाएँ इस प्रकार अनुरंजन करती रहीं। वास्तव में अब भी इस प्रकार की कहानियाँ लिखी जा रही हैं और लोक कथाएँ भी। पर शुद्ध बाल कहानी आधुनिक कहानियों में ही खोजी जा सकती है।

आधुनिक कहानी बाल जीवन को अपने वास्तविक रूप में ग्रहण करती है। इसमें न लोक कथाओं की प्रतीक वादिता रहती है, न लोक-कथाश्रित कहानियों का रूपान्तर, वरन् जिस रूप में बालक का जीवन है उसी रूप में यथार्थता के साथ उसकी प्रस्तुति होती है। प्रधानता लेखक की दृष्टि की होती है, जिस दृष्टि से वह बाल जीवन को देखता है।

आधुनिक बाल कहानियाँ प्रौढ़ों की समस्यापूर्ण कहानियों के निकट हैं। इन

कहानियों के विकास में भी प्रौढ़ों की आधुनिक कहानियों की प्रेरणा प्रतीत होती है। आज हिंदी में आधुनिक बाल कहानी रचयिताओं का एक वर्ग तैयार हो गया है जो तीव्रता से यथार्थ बाल जीवन को प्रस्तुत कर रहा है।

बाल जीवन अत्यन्त व्यापक है। उसकी अपनी समस्याएँ हैं—मित्रता की, पारस्परिक मेल की लड़कों की लड़कियों के प्रति दृष्टिकोण की अध्ययन की सद्वृत्तियों के विकास की, विषम परिस्थितियों से जूझने की आदि। जीवन की समस्याओं का अन्त नहीं है, फलस्वरूप कहानियों की रचना का भी अन्त नहीं है।

आज की हिन्दी बाल पत्रिकाएँ सभी सोपानों पर कथा साहित्य, विशेषत: कहानी प्रस्तुत करर ही है'—'लोक कथाओं से लेकर आधुनिक कहानी तक' किन्तु 'पराग' ने आधुनिक कहानियों के विकास की ओर प्रारम्भ से ही रुझान व्यक्त की है। आज पराग के माध्यम से आधुनिक कहानी का एक सुस्पष्ट लेखक वर्ग निकल आया है।

आधुनिक कहानी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह बाल जीवन की वास्तविकताओं का उद्घाटन करती है। समस्त घटनाचक्र बालक को केन्द्रबिंद बनाकर अग्रसित होता है। बाल जीवन के हृदय के अन्जाने रहस्यों का उद्घाटन ही इन कहानियों का उद्देश्य है। राजा रानियों से सम्बद्ध या परियों से सम्बद्ध कहानियों के माध्यम से जिन तथ्यों का अन्वेषण किया जाता है, वे तथ्य यहाँ बाल जीवन के वास्तवबिक घटनाचक्र से उभरने लगते हैं।

बालक का जीवन एक रहस्य है। उसके हृदय की अंतर्वर्ती विचार-धाराओं का ज्ञान बालक को तो होता है, बड़ों को नहीं—क्योंकि बड़े उस आयु को पार कर चुकते हैं। पर बाल जीवन के अध्ययन निरीक्षण और अपने बाल जीवन की स्मृतियों को सजग कर लेने पर एक अवस्था प्राप्त लेखक बाल कहानी लिखने में समर्थ हो जाता है।

बाल जीवन के निरीक्षण से उद्भूत कहानी 'एक अकेली'[1] है जो सहज सुखद पारिवारिक वातावरण प्रस्तुत करती है। लेखिका की सफलता बालकहानी के पात्रों के मनोभावों को पढ़ लेने में है अन्यथा बाल पात्रों के साथ विवृत घटनाएँ आरोपित प्रतीत होंगी।

---

१. एक अकेली : शशिप्रभा शास्त्री : पराग, जुलाई, १९६५।

'एक अकेली' के नीता और मदन एक परिवार के दो सक्रिय भाई बहन हैं। दोनों बाल जीवन के वास्तविक प्रतिनिधि हैं, दोनों की कार्य प्रणाली, पारस्परिक सम्बन्ध, लड़ाई और मेल बालजगत् की यथार्थता है और सबके ऊपर है एक बालिका की अदम्य इच्छाशक्ति जो जीवन में सफलता पाने के लिए आवश्यक शर्त है। नीता की द्विचित्तता, सत्य के प्रति आग्रह और फिर अपने कार्यों से सफलता के सोपानों पर चढ़ना, ऐसी प्रक्रिया है जो जीवन में प्रवेश करनेवाले बालक-बालिका के लिए तादात्म्य और आदर्श का विषय है।

स्कूल जाते समय नीता का चित्र एक सामान्य लड़की का चित्र है—पुस्तकों का मोटा बैग नीता ने अपनी पीठ पर लाद लिया था। उसके हाथ में खाने का डिब्बा था और वह खड़ी-खड़ी चिल्ला रही थी—माँ, जल्दी से मेरा चार्ट दे दो, मुझे स्कूल जाने को देर हो रही है।

और फिर भाई बहन के प्रिय सम्बन्ध का यह दृश्य—'इसने मुझे कल रात अपनी लाइब्रेरी की किताब पढ़ने को नहीं दी थी न, इसलिए मैंने चुपके से चार्ट खराब कर दिया' कहता हुआ मुँह चिढ़ाकर मदन चला गया तो नीता को और भी रोना आया, 'वह फूट-फूट कर रोने लगी।'

फिर नीता के जीवन की सफलता का वह सोपान शुरू होता है जहाँ कर्मठता और दृढ़ इच्छाशक्ति के बीच छिपे हुए हैं। यह एक ऐसा आदर्श कहानी की ऐसी उपलब्धि है, जहाँ कहानी विराम लेती है पर जीवन में सक्रियता पैदा कर जाती है, जीवन में एक समानान्तर कहानी प्रारंभ कर देती है।

मदन नीता का चार्ट खराब कर चुका है। नीता इस घटना को अपनी अध्यापिका को बता देती है। अध्यापिक साबाशी प्रदान करती है। घर आकर दृढ़ संकल्प के साथा नीता चार्ट बनाने बैठ जाती है। चार्ट बनाने वाली नीता नीता नहीं, जीवन निर्माण में संलग्न वह व्यक्ति है जो अपनी लगन से अनन्त क्षितिज के द्वार उद्‌घाटित करता है और असफलता को सफलता में बदल देता है।

'शाम हो गई। आसमान में दो तीन तारे टिमटिमाने लगे, पर वह कागज पर झुकी रही। माँ ने कई बार उसे चार्ट छोड़ देने के लिये उसे कहा, भैया ने मदन ले लेने के लिए कहा, पर नीता बिना कुछ कहे सुने चुप-चाप काम में लगी रही। और जब कमरे की बत्ती जली, तो उसने देखा, उसके कागज पर सभी सवारियाँ बन चुकी थीं। उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। ये सवारियाँ कल मदन भैया की बनी सवारियों जैसी सुडौल तो न थीं, पर आज नीता को जितनी

खुशी हुई, उतनी उसे कल या पहले कभी नहीं हुई थी ।

आधुनिक दृष्टि से सृजित ऐसी कहानी बाल पाठकों के क्षितिज को विस्तृत करती है तथा बालक को बालक से जोड़ती हैं । वास्तव में यही वे बाल कहानियाँ हैं जिनका बालकों के लिए सर्वाधिक महत्त्व है । ऐसी ही कहानियों में बालकों की आकांक्षाएँ हर्ष, विषाद, और उल्लास आदि की अभिव्यक्ति होती है । 'बड़कन्ना'[1] कहानी में एक बालक को जातीय हीनता का सामना करना पड़ता है । बाद में धन और जाति के आधार पर नीचा दिखानेवाला बालक डाकुओं द्वारा अपहृत होता है । उस समय बड़कन्ना के मन में स्वभावसिद्ध बात पैदा होती है—

'इसलिए जब शामलू को जंगल के किनारे रेवड़ चराते हुए यह पता चला कि डाकू दिनदहाड़े हल्ला बोलकर नम्बरदार के घर से उसके बेटे सावंत को उठा ले गए हैं, तो वह बहुत खुश हुआ—कम्बख्त घमण्डी लड़का अपने बाप की नम्बरदारी पर कैसा अकड़ता था और मुझे चमार का बेटा समझकर मुझसे सीधे मुँह बात तक नहीं करता था । अब मजा आएगा उसे' ।

यद्यपि हिन्दी में इस प्रकार की कहानियाँ सभी बाल पत्रिकाओं में स्थान पाती रहती हैं पर 'पराग' ने ऐसी कहानियों के प्रकाशन का लक्ष्य ही निर्धारित किया । आधुनिक कहानियों के विकास की उसकी कहानी प्रतियोगिताएँ भी श्लाघ्य हैं, जिसके परिणाम स्वरूप हिन्दी में यह कहानी धारा प्रवाहित हो सकी ।

विषयगत वर्गीकरण

बाल साहित्य का प्रारम्भ काव्य से हुआ, पर बाल-कहानियाँ मौखिक परम्परा में पहले से थीं । फलतः बाल साहित्य का विकास होते ही शीघ्र ही कहानी साहित्य धारा के साथ जुड़ गई । स्वातन्त्र्योत्तर युग में तो उसकी शैली का अत्यधिक परिष्कार भी हुआ । पुरानी कहानी से भी आधुनिक कहानी ने तत्त्व ग्रहण किए और आधुनिक कहानी को यथार्थपरक दृष्टि भी ग्रहण की । आज की बाल कहानी इस प्रकार काफी विस्तृत हो चुकी है । विषय की दृष्टि से बाल कहानी को निम्नांकित रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है—

१. ऐतिहासिक कहानियाँ
२. पौराणिक कहानियाँ

---

१. बड़कन्ना : कृश्नचंद : पराग : मार्च, १९६३ ।

३. साहस की कहानियाँ
४. जासूसी कहानियाँ
५. हास्य कहानियाँ
६. पशु-पक्षियों की कहानियों
७. परी कथाएँ
८. लोक कथाएँ
९. त्योहारों और व्यक्तियों की कहानियाँ
१०. सामंती जीवन की कहानियाँ
११. वैज्ञानिक कहानियाँ
१२. मुहावरों की कहानियाँ
१३. बाल जीवन की कहानियाँ
१४. ज्ञान कथाएँ।

उपर्युक्त वर्गीकरण स्वातन्त्र्योतर बाल कहानी का है। आवश्यक नहीं कि वर्गीकरण में उल्लिखित प्रत्येक कहानी का प्रकार श्रेष्ठ ही हो। कहानी का मूल उद्देश्य पाठक के जीवन का विस्तार मनोरंजन और ज्ञानसंवृद्धि है। इन उद्देश्यों को पूरा करने वाली कहानी उपयोगी मानी जाएगी।

(१) ऐतिहासिक कहानियाँ

ऐतिहासिक कहानी का आधार इतिहास होता है। इतिहास के दो रूप होते हैं। एक में भौतिक घटनाओं का तिथिपरक वर्णन होता है। इतिहास के इस रूप का सम्बन्ध राजनीति से अधिक है।

इतिहास के दूसरे रूप में ऐतिहासिक काल में जीवित पात्र मात्र घटापुंज नहीं होते, वरन् सजीव सम्वेदनशील प्राणी होते हैं। वे अपने कार्य, व्यवहार और चिन्तन से इतिहास की धारा मोड़ देते हैं और अपने जीवन की छाप आगे के समय पर छोड़ जाते हैं। कहानीकार बालस्तर पर उपर्युक्त घटनाओं का चयन कर कहानी की सर्जना करता है।

अतीत इतिहास जहाँ राजा, रानियों या सैनिकों ने वीरता का परिचय दिया है, ऐतिहासिक कहानियों का आधार बन सकता है। ओरछा नरेश महाराज चम्पतराय के वीरतापूर्ण जीवन से सम्बद्ध वीरता की पराकाष्ठा, [1] ऐतिहासिक

१. वीरता की पराकाष्ठा : हरिश्चन्द्र सिंह बाल भारती : फरवरी, १९६७।

कहानी है जिसमें इतिहास और कल्पना का योग है। बिना कल्पना के योग के ऐतिहासिक कहानी की रचना सम्भव ही नहीं है।

महाराज चम्पतराय की औरंगजेब से शत्रुता थी। बराबर युद्ध होता रहता था औरंगजेब ने सन्धि प्रस्ताव भेजा। युद्ध से ऊबे चम्पतराय ने प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और राजत्व छोड़कर जागीरदार बनकर रहने लगे। पर वीर रानी को यह स्वीकार नहीं था कि छत्रसाल ऐसा काहिली का जीवन व्यतीत करे। अतः एक दिन उसने कहा—

पहले मुझे लोग एक शूरवीर राजा की रानी कहते थे। लेकिन अब मुझे दिल्ली के बादशाह के जागीरदार की रानी कहते हैं।......ओरछा में मैं सचमुच में रानी थी मेरा निज का राज्य था और साथ ही आप उसके राजा थे।

रानी के इस विचार ने चम्पतराय को सचेत कर दिया। वे छतरपुर लौटे गए और वीरता का जीवन बिताया। वीरता की रक्षा करते हुए ही उनकी मृत्यु हुई।

ऐसी कहानियों से ऐतिहासिक ज्ञान के साथ ही मानवीय सम्वेदना का भी विस्तार होता है।

(२) पौराणिक कहानियाँ

भारत का प्राचीन इतिहास पुराणों में सुरक्षित है। शुद्ध ऐतिहासिक दृष्टि से यद्यपि पुराणों की रचना नहीं हुई है, उनमें कल्पना का योग अधिक है, किन्तु अतीत जीवन के दृश्य पुराणों में अवश्य निहित हैं। ये दृश्य अत्यन्त सजीव तथा मानवीय सम्वेदनाओं से परिपूर्ण है। मानव जीवन के लिए उनमें त्याग, देशप्रेम, समाज और व्यक्ति के जीवन को समुन्नत बनानेवाली अनेक घटनाएँ हैं।

बालकों के लिए अतीत पुराणों के कथानकों पर कुछ अच्छी बाल कहानियाँ लिखी गई हैं। देशभक्त बालक शतमन्यु की कहानी ऐसी ही है। शतमन्यु अकालग्रस्त देश को बचाने के लिए प्राणोत्सर्ग करने को तैयार हो गया था। इन्द्र को प्रसन्न करने के लिए जब नरमेध किया जाने लगा तो कोई भी अपने प्राण देने को तैयार न हुआ। उस समय बारह वर्षीय बालक शतमन्यु भरी सभा में खड़े होकर बोला-

पूज्यवरो, असंख्य प्राणियों की रक्षा एवं देश को संकट की स्थिति से मुक्ति दिलाने के लिए मेरा प्राण सहर्ष प्रस्तुत है। यह प्राण देश का है और देश के

लिए अर्पित है।' [१]

बालक शतमन्यु का यह त्याग देशप्रेम की भावना सहज ही पैदा कर देता है। प्राचीन परिवेश होते हुए भी प्रस्तुत कहानी में आधुनिकता के तत्त्व हैं और बालकों की दृष्टि से ऐसी कहानियों की उपयोगिता है।

(३) साहस की कहानियाँ

जीवन बड़ों का हो या बालकों का, साहस की दोनों को आवश्यकता होती है। सामान्य जीवन में साहस शक्ति का संचार करता है जब कि आकस्मिक कठिनाई में साहस शक्ति बढ़ाकर बचने या कठिनाई पर विजय दिलाने में सफल होता है।

साहस परिस्थितिजन्य भावदशा है जो जीवन के साथ उत्पन्न होती है। इसी के परिणामस्वरूप मानव स्वयं साहस पूर्ण कार्य करता है और साहसपूर्ण कारनामों को देखने में आनन्द का अनुभव करता है।

साहित्य में साहसपूर्ण कार्य प्रदर्शित करने वाली कहानियों की रचना की जाती है। बाल पाठक ऐसी कहानियों में रसमग्न होकर अपने हृदय को विकसित करता है। ऐसी कहानियों के आस्वादन के परिणामस्वरूप ही वह अकरणीय कार्यों को कर दिखाता है। कहते हैं कि शिवाजी की माँ जीजाबाई शिवाजी को बचपन में वीरतापूर्ण कहानियाँ सुनाया करती थीं। इन वीरतापूर्ण कहानियों के साहस की ऐसी छाप शिवाजी पर पड़ी कि आगे चलकर उन्होंने शक्तिशाली बादशाह औरंगजेब के दाँत खट्टे कर दिए।

किन्तु एक साहित्यिक साहस कहानी में उत्तेजना, खतरा और जिज्ञासा ही न होनी चाहिए, वरन् चिरस्थायी आनन्द प्रदान करने और बार-बार पढ़े जाने के लिए उसमें अन्य तत्त्व भी होने चाहिए। चरित्र-चित्रण वातावरण, विशिष्टता तथा वर्णन कुशलता ही वे तत्त्व हैं जो उत्तेजन के अतिरिक्त एक अच्छी कहानी को स्थायित्व प्रदान करते हैं। [२]

---

१. देशभक्त बालक शतमन्यु : कुँवरानी सरला जैन, पराग : मार्च, १९६३।

२. गुड एडवेंचर स्टोरीज आर सो कन्स्टेक्ट्राड दैट द रीडर इज कैरीड एलांग बाईएक्साइटमेंट, डैंजर ऐंड सस्पेंस, देयर मस्ट बी अदर फैक्टर्स प्रजेंट इफ द स्टोरीज इज टु गिम लास्टिग प्लेजर आर स्टैंड द टेस्ट आफ रीडिंग। कैरेक्टराइजेशन एटमासफियर, सीग्निफीकेंस ऐंड नैरेटिव स्किल आर फैक्टस ह्विच गिम परमानेंस टु गुड स्टोरी, डिस्टिंक्ट फ्राम थ्रिल्स एलोन। द अनरिलेक्टेंट इयर्स : स्मिथ, पृ० १४१-१४२।

उपर्युक्त विवेचन के अनुसार हिन्दी में बालकों के लिए अधिक साहसिक कहानियों की रचना नहीं हुई। इसका कारण संभवतः लेखकों का जीवन के साहसपूर्ण कार्यों से अपरिचय है। इसीलिए वे ऐसी कहानियों के लिए अपेक्षित तथ्यों की कल्पना नहीं कर पाते। जब तक प्रकाशित कहानियों में एक कहानी 'दादा की वीरता'[1] है जिसमें खूँख्वार हाथी से बचने में मारुतिदास के साहस का परिचय दिया गया है। यदि मारुतिदास साहस न दिखाते तो न बालक रामू को बचा पाते और न अपने को। सूझ-बूझ और साहस से ही भागकर वे एक सकरी गली में घुसे और हाथी कुछ नहीं कर पाया।

हाथी केरल के 'मुरजपम्' महोत्सव के समय बिगड़ा था। लेखक मुरजपम् का सुन्दर वर्णन करता है- 'मुरजपम केरल का महोत्सव है जो छह साल में एक बार मनाया जाता है। मकर संक्रांति के चालीस दिन पहले यह महोत्सव शुरू होता है। चालीस दिन तक इसके लिए विशेष रूप से निर्मित पंडाल में क्रमपूर्वक मन्त्रों का जाप, पूजापाठ आदि होते हैं और मकर संक्रांति के दिन समापन उत्सव होता है[1]

लेखक के वर्णन में सजीवता है। क्रमशः उत्सव का परिचय देकर लेखक मूल साहस विषय पर आता है और फिर दादा की वीरता तथा साहस का वर्णन करता है।

(४) जासूसी कहानियाँ

जासूसी का विकास अपराधों का पता लगाने के लिए हुआ था। अपनी सूक्ष्म बुद्धि और प्रमाण तथा तर्कवितर्क के आधार पर जासूस अपराधों की तह तक पहुँच जाते हैं।

किन्तु जासूस अपने काम में जितने मुस्तैद और कुशाग्र होते हैं, अपराधी भी उतने ही बुद्धिमान होते हैं। दोनों एक दूसरे से मात खाया करते हैं और कभी जासूस अपराधियों को पकड़ने में सफल होते हैं तो कभी अपराधी जासूसों को धोखा देकर अपना काम बनाने में सफल हो जाते हैं।

जासूसों की इन बौद्धिक क्रियाओं को बाल साहित्य में भी ग्रहण किया गया और अनेक जासूसी कहानियों की रचना हुई। अंग्रेजी में जासूसी साहित्य का प्रचलन पहले ही हो चुका था; हिन्दी बाल साहित्य में यह प्रवाह आया ही है।

---

१. दादा की वीरता : विद्वान् के नारायण : पराग : अप्रैल, १९६६।

फिर भी जासूसी साहित्य ने अपना स्थान बना लिया है। नन्दन ने तो नवम्बर, १६७१ का पूरा अंक ही जासूसी कहानी अंक के रूप में प्रकाशित किया।

पर जासूसी साहित्य में अपराध का होना अनिवार्य है—अपराध चाहे साधारण चोरी आदि का हो, चाहे डकैती, हत्या आदि का। अपराध और जासूसी की क्रिया-प्रतिक्रिया ऐसे साहित्य में इतनी तीव्र होती और साहस, बुद्धि, तर्क-वितर्क को इतना महत्त्व मिलता है कि यह साहित्य बड़ा लोकप्रिय हो गया है। इसका एक पक्ष जहाँ बौद्धिक विकास का है, वहीं दूसरा पक्ष अपराधों का भी है। बाल पाठक दूसरा पक्ष न ग्रहण कर लें, इस खतरे से आशंकित होकर विद्वानों ने ऐसे साहित्य का पूर्ण निषेध तक किया है। लोगों की धारणा है कि बाल और युवा समाज में बढ़ती अपराध वृत्ति के लिए हमारा जासूसी साहित्य उत्तरदायी है।

जासूसी साहित्य के सम्बन्ध में नैंसी लेरिक ने अनुसंधान करते हुए लिखा है 'कि आठ से तेरह वर्ष की उम्र के बालक इस साहित्य को तीव्र गति से पढ़ते हैं। इस उम्र के आधे बच्चे तो एक से लेकर पाँच पुस्तकें तक प्रति सप्ताह पढ़ते हैं। बीस प्रतिशत से कुछ अधिक बच्चे छः से दस पुस्तकें प्रति सप्ताह पढ़ते हैं। लड़कियाँ इस साहित्य के प्रति अधिक आकृष्ट नहीं होती।'[1]

जहाँ तक मनोरंजन, साहस वृद्धि, बुद्धिविकास और घटनाचक्र के प्रति औत्सुक्य का प्रश्न है, जासूसी साहित्य अनुचित नहीं। पर जब भय, आतंक, रोमांच अश्लीलता हत्या और मन को कमजोर बनाने वाले रहस्य प्रसंगों का वर्णन किया जाने लगता है, तब यह साहित्य त्याज्य हो जाता है।

इस साहित्य की लोकप्रियता के निम्नांकित कारण बताए जाते हैं—

(१) जासूसी साहित्य बालपाठक की क्रियाशीलता और साहस की भावना को परितृप्त करता है।

(२) इस साहित्य में घटनाचक्र तीव्रता से घटित होता है और कथानक संक्षिप्त रहता है। फलस्वरूप संतुष्टि शीघ्र प्राप्त होती है।

(३) इस साहित्य को पढ़ने में सरलता रहती है, यहाँ तक कि एक अशिक्षित व्यक्ति भी चित्रों के माध्यम से जासूसी साहित्य पढ़ सकता है।

(४) यह साहित्य सर्वत्र उपलब्ध होता है। मूल्य भी कम होता है और थोड़े किराये पर उधार मिल जाता है।

---

१. ए पैरेंट्स गाइड टु चिल्ड्रेंस रीडिंग : नैंसी लेरिक : पाकेट बुक्स इनकारपोरेटेड, राक फेलर सेंटर, न्यू यार्क, पृ० ८५।

(५) सहभावना के कारण देखा देखी भी बालक इसके पाठक बन जाते हैं। जो बालक नहीं पढ़ता, वह मित्रों में अजीब माना जाता है।

(६) अन्य साहित्य के अभाव में सहज सुलभ जासूसी साहित्य के प्रति बालक बालक कभी-कभी आकृष्ट हो जाते हैं। इस साहित्य की पुस्तकें उत्तेजक होती हैं, यह जाने बिना वे पढ़ते चले जाते हैं और अंत में पक्के पाठक बन जाते हैं।[1]

उपर्युक्त विवेचन योरोपीय जासूसी साहित्य का है। पर अब यह विधा इतनी लोकप्रिय हो चुकी है कि इसको रोकने के बजाय सही ढंग से प्रस्तुत करना उचित है। मूलतः इसमें दोष नहीं—दोष प्रस्तुतीकरण की शैली में है। पराग के द्वारा जासूसी साहित्य विषयक आयोजित परि-चर्चा का निष्कर्ष भी यही है कि अच्छे जासूसी साहित्य की रचना हो, जिससे निम्नकोटि का जासूसी साहित्य बहिष्कृत हो सके।[2] उनकी रचना बालपाठकों को दृष्टि में रखकर की जाय, जिससे वे बालकों के मानसिक विकास में सहायक हो सकें।

वास्तव में जासूसी कहानी मानव जीवन की बुद्धि और साहस की कहानी है। इसका उदाहरण 'मुक्ति के लिये'[3] बाल कहानी है जिसमें नितिन, महिम, बसु और आलोक इन चार साथियों की अन्वेषक वृत्ति और साहस से देश के दुश्मनों का सफाया होता है। अपनी सूझ-बूझ से चारों साथी शत्रु के शस्त्रागार तक पहुँच जाते हैं और उसे बम से उड़ा देते हैं। दुश्मनों को गोलियों का निशाना बनाते हैं। इस साहसपूर्ण कार्य में बसु को प्राणों से हाथ धोना पड़ता है। उसका त्याग देश के लिये होता है।

कहानी का एक प्रभावशाली अंश, जिसमें बसु ट्रक के ड्राइवर के सीने पर पिस्तौल रख देता है, इस प्रकार है :—ड्राइवर गिड़गिड़ाया। वह दया की भीख माँगने लगा। वह मौत से इतना डर गया था कि उसने सारी बातें उन्हें बता दीं। उन्होंने ड्राइवर को कस कर एक पेड़ से बाँध दिया। इतनी देर में नितिन और महिम ने सारा काम पूरा कर लिया। उन्होंने सैनिकों के कपड़े उतार लिए। फिर वे ट्रक लेकर भाग निकले।

---

१. ए पैरेंट्स गाइड टु चिल्ड्रेंस रीडिंग : नैंसी लेरिक : पी० बी० राकफेलर: सेंटर : न्यू यार्क : ८७-८८।

२. पराग : अगस्त, १९७१ से नवंबर १९७१ तक के अंक : वर्जित फल : जासूसी उपन्यास।

३. मुक्ति के लिए : शैल तिवारी : नन्दन : नबम्बर, १९७१।

ऐसी ही एक मार्मिक और बालबुद्धि से परिपूर्ण कहानी है' सी० आई० डी० नं० ०००[१]' जिसमें एक नन्हीं बालिका के कारण चोरों के गैंग का पता लग जाता है।

(५) हास्य कहानियाँ

बालकों के लिये हास्य कहानियों का विशेष महत्त्व है। सामान्य जीवन में हास्य स्वास्थ्यप्रद माना जाता है। मानसिक स्वास्थ्य के लिये भी हास्य की उपयोगिता है। पर बालकों का जीवन तो हास्य के अभाव में अधूरा है।

बाल साहित्य का उद्देश्य बालकों के मानसिक विकास के साथ ही उनका मनोरंजन करना भी है। किंतु हास्य बाल साहित्य या हास्य कहानियाँ तो विशुद्ध मनोरंजन की दृष्टि से ही सृजित होती हैं।

बालजीवन के सम्बन्ध में एक धारणा उपदेश देने की है। कहानियों के माध्यम से भी बालकों को अनेक प्रकार से उपदेश देने की चेष्टा की गई है। इनमें कितने ही उपदेश नीरस ढंग से प्रस्तुत किए गये। नीरस उपदेशों से बालकों को प्रभावित करना संभव नहीं है। वास्तव में बालकों के जीवन में शिक्षा और उपदेशों का महत्त्व होते हुए भी एक सीमा में उनका जीवन पूर्ण भी होता है। प्रेम, सहानुभूति, ममता, साहस और स्वविवेक की उनमें क्षमता होती है। प्रेम, सहानुभूति आदि भाव उपदेश से नहीं, प्राकृतिक रूप से उनमें जन्म ले लेते हैं। ऐसे पूर्ण जीवन को मानसिक रूप से स्वस्थ बनाये रखने तथा उल्लास और उत्साह पूर्ण बनाने के लिये हास्य साहित्य की उपयोगिता है। हास्य से मानसिक तनाव तिरोहित हो जाता है और वृत्तियों का विकास होता है।

बाल जीवन में हास्य के महत्त्व को प्रारम्भ से ही पहचाना गया। पर वास्तविक महत्त्व स्वातन्त्र्योत्तर काल में ही मिला। वैसे हास्य कहानी लिखना आसान नहीं, क्योंकि हास्य में बाल जीवन की स्वाभाविक अनुभूतियों की कल्पना करना कठिन होता है। बाल जीवन का परिवेश ही पृथक् होता है, जिसमें सब कुछ बड़ों की दुनिया से भिन्न होता है।

फिर भी हिन्दी में कुछ रचनाकारों ने सफल हास्य कहानियों की रचना की है। इधर अवतार सिंह की अनेक हास्य कहानियाँ प्रकाशित हुई हैं। दादा को हास्य का प्रतीक बनाकर ही उन्होंने अनेक हास्य कहानियों की रचना कर दी।

---

१. सी० आई० डी० नं० ००० : मालती जोशी : पराग, अक्तूबर, १९७१

हास्य उत्पन्न करने के कई रूप हो सकते हैं। अव्यवस्थित कार्य, असंगत विचार, ऊटपटांग जीवन आदि के द्वारा कहानियों में हास्य उत्पन्न किया जाता है। सामाजिक दृष्टि से हास्य में परिष्कार का व्यंग्य निहित रहता है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर अवतार सिंहकृत 'डेडलाक' कहानी पर विचार किया जा सकता है। बूढ़े दादा का बच्चों के बूढ़े नाना के विरुद्ध साजिश करना हास्योत्पादक स्थिति है। वे जिस प्रकार बर्फियों का लोभ देकर बच्चों को अनुकूल करते हैं और फिर बच्चों की बैठक कराते हैं यह बाल जीवन का अपना हास्य है।

बच्चों के माध्यम से भी लेखक ने सफलता के साथ हास्य की स्थितियाँ पैदा की हैं। वकील का बेटा टिंकू कच्चे अमरूद तोड़कर खाता है। इस पर छुन्नू की अम्मा उसके पीछे से भागती हुई आती है। टिंकू भागकर दादा की गोद में आ बैठता है। और—

'टिंकू काँपते हुए बोला, 'दादा जी आप जो कहेंगे, मैं वही तोड़ दूँगा। पर पहले मुझे छुन्नू की अम्मा से बचाइये। वह मेरे पीछे आ रही है!'

टिंकू की बात गले में ही फँसी रह गई। तभी छुन्नू की अम्मा जेट इंजन की तरह धड़धड़ाती हुई कमरे में आ घुसीं। अंदर आते ही गरजीं, कहाँ है वह वकील का बेटा?'[1]

यह अंश हास्यपूर्ण और बालकों के मनोरंजन के लिये श्रेष्ठ है।

(६) पशु-पक्षियों की कहानियाँ

पशु-पक्षियों की कहानियों का आदि स्रोत पंचतंत्र और हितोपदेश में है। पर पंचतंत्रकार को भी यह शैली पहले से मिली थी।

पशु-पक्षियों के द्वारा बाल कहानी रचना की दृष्टि सहज और स्वाभाविक है। मानव जीवन पशु-पक्षियों के साथ घुल मिलकर ही प्रारंभिक काल से बीतता आया है। सृष्टि के प्रारंभ में तो मानव जीवन पशु पक्षियों के साथ घनिष्ट रूप से जुड़ा हुआ था। यह घनिष्ठता इतनी तीव्र थी कि मानव उन्हें अपने जीवन का अंश मानने लगा। धीरे-धीरे वह उनसे बातचीत करने, अपने सुख दुःख की बातें कहने और उनके सुख दुःख की भी कल्पना करने लगा। उसने अपने जैसा ही जीवन पशु-पक्षियों ने माना अथवा अपना जीवन पशु-पक्षियों पर आरोपित किया।

इस सीमा तक आते-आते पशु पक्षी मानव के लिये कहानियाँ कहने लगे,

---

१. डेडलाक : अवतारसिंह : पराग : अप्रैल, १९६८।

उसके जीवन के आदर्श निश्चित करने लगे। पशु-पक्षियों की छल-कपट से रहित जीवन के द्वारा कही गई कहानियाँ बालकों को भी बड़ी मनोरंजक लगीं। वे उन कहानियों में डूब गये।

कहानी की दृष्टि से पशु-पक्षियों का माध्यम एक प्रतीक है और यह प्रतीक शाश्वत है जिस बात को हम मानव प्राणियों के नामों के माध्यम से कहने में संकोच या भय का अनुभव करते हैं उसे पशु-पक्षियों के द्वारा आसानी से कहा जा सकता है। इसी दृष्टि से इन कहानियों का प्रचलन हुआ और बाल समाज ने इन्हें अपना लिया। इन कहानियों का कथ्य उन प्राणियों के माध्यम से था, जिसके साथ वे खेलते रहते थे, जिन्हें देखकर खुश हो जाते थे।

बालकों का आकर्षण पशु-पक्षियों के साथ आज भी वैसा ही है। आदि बालक की भाँति आज का बालक भी पशु-पक्षियों की संगति में पहुँचने के लिए लालायित रहता है। तभी आज का बाल कहानीकार पशु-पक्षियों के आधार पर कहानी लिख रहा है। लोक कथाओं में तथा आधुनिक संदेश प्रेषित करने वाली ऐसी कहानियों में आज भी बालक तन्मय हो जाता है।

पशु-पक्षियों की कहानियों की एक शैली लोक कथाओं की है, और दूसरी आधुनिक। इधर आधुनिक दृष्टि से नई कहानियाँ लिखी गईं। गुरुदीपसिंह कृत 'पाँच सौ रुपये की चोट'[1] ऐसी ही कहानी है जिसमें पाँच रुपये की चोरी होती है। दुकान से रुपये चुराये जाते हैं। रुपये चुराने वाला बंदर का मित्र शुतुर-मुर्ग है। मित्र विश्वसनीय होता है पर मित्रता की आड़ मे लोग एक दूसरे को धोखा भी देते हैं। यही बात जब श्यामदास लंगूर ने बंदरदास को बताई तो बंदरदास पर मानो बिजली गिरी। वह बोला, 'क्या तुम कहना चाहते हो कि चोर मेरा मित्र शुतुरमुर्ग है ? मैं नहीं मान सकता।'

किंतु अंत में उसे मानना ही पड़ा।

इस प्रकार की कहानियों पर बाल कहानीकारों का विशेष बल नहीं है। फिर भी एक कहानी—प्रकार के रूप में इसका प्रचलन है। छोटे बच्चों का पशु पक्षियों की कहानियों से विशेष मनोरंजन किया जा सकता है।

(७) परीकथाएँ

परीकथाएँ बाल साहित्य का आज प्रमुख अंग बन चुकी हैं। विश्व की कदाचित कोई भाषा न होगी जिसमें परीकथाएँ न हों। कुछ परीकथा संग्राहकों और परीकथाकारों की बाल साहित्य को महत्त्वपूर्ण देन मानी जाती है। जर्मन के ग्रिमबंधुओं को परीकथा संग्रह ने ही अमर कर दिया। ग्रिम बंधुओं ने गाँव-गाँव

---

१. पाँच सौ रुपए की चोट : गुरुदीपसिंह : पराग : जुलाई, १९६५।

और घर-घर जाकर परीकथाएँ संग्रह कीं और न केवल जर्मन के बालपाठकों को बल्कि विश्व के बाल पाठकों को मानव अनुभूतियों से पूर्ण बालोपयोगी कथा साहित्य प्रदान किया। सभी भाषाओं में ग्रिम की कथाओं के अनुवाद हुए।

इसी प्रकार पौरोल्ट ने फ्रांस में परीकथाओं का सुंदर संग्रह किया और डेनमार्क में हेंस क्रिश्चियन ऐंडरसन ने परीकथाओं की मौलिक रचना की तथा कुछ के लोक कथाओं से भावांतर किये। हेंस क्रिश्चियन की परीकथाएँ दुखांत तथा कारुणिक है।

इन परीकथाओं में अन्य विधाओं की साहित्य रचना को भी प्रेरित किया। अनेक सुंदर बाल कविताएँ परीकथाओं के आधार पर निर्मित हुई।

फिर भी परीकथाओं के संबंध में दो मत हैं। एक मत के अनुसार परीकथाएं दिवास्वप्नवत् हैं। इनका आधार वायवी है। वास्तविक अस्तित्व में परियाँ नहीं होती। ऐसी स्थिति में परीकथाएँ बालपाठक को वायवी और जीवन की यथार्थ समस्याओं के प्रति स्वप्नजीवी बना देती है। परीकथाएँ पढ़ने वाला बालक निरंतर कल्पना लोक में खोया रहता है। वह अवास्तव में विश्वास करने लगता है और जीवन के प्रति उसका दृष्टिकोण अयथार्थ हो जाता है।

किंतु दूसरे मत के अनुसार परीकथाएँ उपयोगी हैं। ये बाल पाठक की कल्पना को उद्‌बुद्ध करती है। जो नहीं है, उसको सोचने की बाल पाठक में प्रवृत्ति पैदा होती है। 'परीकथाएँ जीवंतता सौंदर्य और कल्पनाशीलता से परिपूर्ण रखती है।'[1] मानवी जीवन व्यतीत करने वाली परियों के जीवन के भी सिद्धान्त होते हैं।' कुछ परियों के बहुत ऊँचे आदर्श होते हैं, कुछ बुरे कामों में लगी रहती हैं, कुछ दयालु होती हैं, कुछ अन्य परियाँ निम्नता का व्यवहार करती हैं तथा दूसरों को परेशान करती हैं। कुछ दुस्साहसपूर्ण कार्य कर डालती हैं, जब कि कुछ निष्क्रिय बनी रहती हैं।'[2]

परियों का ऐसा जीवन प्रकारांतर से मानव का ही कल्पनापूर्ण जीवन है। 'परी एक कल्पना है'[3] परी कहानियों का तात्पर्य है। ऐसी कहानियाँ जिनमें कल्पना की ऊँची उड़ान हो। उनमें ऐसी घटनाएँ होती हैं जिन्हें हम साधारणतया सोच ही नहीं सकते। लेकिन उनसे हमारा मस्तिष्क विशाल बनता है और आगे सोचने की बुद्धि उपजती है।'[4]

हिन्दी में परी कहानियों का मूलतः विशेष विकास नहीं हुआ था। यहाँ

१—द अनरिलेक्टेंड इयर्स, लिलियन हेलटेंदना स्मिथ : पृ० ५६।
२. वही, पृ० ४४।
३. नंदन: परीकथा अंक : जून, १९६७। (बड़े भइया की चिट्ठी)।
४. वही ।

का लोक साहित्य पशु-पक्षियों या सामंती जीवन से ही अधिक संबद्ध रहा। योरोपीय साहित्य में परी कहानियों का विशेष रूप से विकास हुआ। किंतु जब यहाँ बाल पत्रिकाओं का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ, उस समय साहित्यकार अंग्रेजी बाल साहित्य से परिचय पा चुके थे। फलतः यहाँ भी रूपांतरित, भावांतरित और फिर मौलिक परीकथाओं की रचना हुई। स्वातंत्र्योत्तर काल के पूर्व ऐसी परी कथाओं का ही जोर अधिक रहा, क्योंकि तब यथार्थ जीवन की बाल कहानियों का विकास नहीं हुआ था किंतु स्वातंत्र्योत्तर काल में परीकथाएँ कम हो गईं—साहित्यकारों का बालकों के वास्तविक जीवन का अध्ययन अधिक बढ़ा और उनके दैनिक जीवन की समस्याओं पर रोचक कहानियाँ लिखी जाने लगीं।

फिर भी सभी बाल पत्रिकाओं ने परीकथाएँ प्रकाशित कीं और किसी-किसी के परीकथा अंक भी निकले।

हिन्दी के परीकथाकारों ने परीकथा रचना में स्वतंत्र कल्पना का पूरा उपयोग किया। परीकथा में क्षणभर में असंभव संभव हो जाता है जैसे-'उसने' (परी ने) समीर को एक फूल सूंघने के लिये दिया। फूल सूंघते ही समीर को लगा कि उसके हाथ पैर, सभी अंग सिमटने लगे हैं—वे छोटे-छोटे होते जा रहे हैं। उसने देखा कि पते की नोक के बराबर उसका सिर हो गया है।[1]

परियों के जीवन में कोमलता और मनोरमता का प्रमुख स्थान है। पर उनकी कल्पना वायवी अधिक होती है। इसीलिये शिशुवर्ग के बच्चों के लिये परी कथाएँ अवश्य उपयोगी हैं, किंतु बाल और विशेषतः किशोरवर्ग के बालक परीकथाओं में सरलता नहीं पाते। वे परीकथाओं के स्थान पर अपने वास्तविक जीवन की समस्याओं से संबद्ध कहानियों में अधिक रुचि लेते हैं।

(८) लोक कथाएँ

लोक कथाएँ बाल साहित्य का शाश्वत स्रोत हैं। शास्त्रीय साहित्य के समानांतर लोक साहित्य का प्रचलन प्रागैतिहासिक काल में ही हो गया होगा लोक साहित्य में जनमानस को अभिव्यक्ति मिली, जब कि शास्त्रीय साहित्य विद्वत् वर्ग का साहित्य था।'

लोक कथाएँ लोक साहित्य का प्रमुख अंग हैं। संपूर्ण आदि जीवन लोक कथाओं के माध्यम से अभिव्यक्त हुआ। इन कथाओं के रचयिताओं का मानस अत्यंत व्यापक था। यही कारण है कि पशु-पक्षियों से लेकर पेड़-पौधों और मानव

1. नन्दन : परीकथा अंक : जून, १९६७।

जाति तक अर्थात जड़ चेतन सभी को लोक कथाओं में वाणी मिली। लोक कथा-कारों ने जड़ को भी चेतन कर दिया।

इन लोक कथाओं की एक विशेषता यह भी है कि इनमें स्त्री, पुरुष और बच्चे सभी के रसास्वादन की योजना है। कुछ लोक कथाएँ थोड़े परिवर्तन के साथ बालोपयोगी हो जाती हैं।

लोक कथाओं की इस व्यापकता ने बाल साहित्यकारों को सदा आकृष्ट किया। हिंदी बाल पत्रिकाओं के लिए लोक कथाएँ प्रारम्भ से ही आधारभूत सामग्री रही। लोक कथाओं का सबसे अधिक उपयोग बाल साहित्य के रूप में ही हुआ। हिन्दी की ग्रामीण बोलियों की लोक कथाओं को मूल बोली में भी प्रकाशित किया गया और खड़ी बोली रूपांतर करके भी। स्वातंत्र्यपूर्व काल में अनेक लोक कथाएँ ब्रज, भोजपुरी आदि लोक बोलियों में ही प्रकाशित हुई। क्रमशः खड़ी बोली रूप में देने की प्रवृत्ति बढ़ती गई।

मौलिक लोक कथाओं की भी रचना हुई पर कम। कारण लोक बोलियों का लोक साहित्य ही पर्याप्त था। उसी में हेर फेर करके बालोपयोगी बनाने का प्रयत्न बाल साहित्यकार करते रहे।

स्वातंत्र्योत्तर काल में यही प्रवृत्ति रही है। परिमार्जित रूप में लोक कथाओं को अधिक प्रस्तुत किया गया।

लोक कथाओं का मूल उद्देश्य आदर्शों की स्थापना होता है। अन्याय और अनीति से बचना तथा नीति के मार्ग का अनुसरण करना—यह काव्य सत्य ऐसी कथाओं के माध्यम से प्रतिपादित होता है। हिन्दी में सृजित लोक कथाओं का उद्देश्य इसी सत्य की स्थापना रहा है—लोक कथाएँ चाहे परम्परित रही हों, चाहे मौलिक।

ऐसी लोक कथाओं में एक कहानी है 'चाँदी की मुस्कान।'[1] कहानी का परिवेश हिमालय की तराई में कल्पित किया गया है जहाँ सोनजुही नामक बुढ़िया रहती है। सरल हृदय आत्मतुष्ट बुढ़िया प्रत्येक चीज को प्यार करती है, प्रत्येक मौसम को अनुराग की दृष्टि से देखती है। बच्चों की वह मौसी माँ है जिन्हें वह कहानियाँ सुनाती हैं।

गरीब सोनजुही एक बार तूफान में फँस जाती है। आश्रय खोजने के लिए वह एक गुफा में घुस जाती है। वहाँ उसे बारह बच्चे मिले। ये बारह बच्चे वस्तुतः बारह महीनों के प्रतीक हैं। बुढ़िया ने इन बच्चों को बताया कि उसे सभी महीने अच्छे लगते हैं, चाहे वे गरमी के हों चाहे सरदी के। बालक उत्तर सुनकर प्रसन्न हो गये और उसके बोरे को सोने चाँदी से भर दिया।

चाँदी की मुस्कान। सोमावीरा : पराग : जून, १९६५।

निष्कपट बुढ़िया ने सारी बातें पड़ोसिन को बताईं। पड़ोसिन ईर्ष्यावश धनी बनने के लिये गरीब बुढ़िया का वेश धारण कर उसी गुफा में पहुँची। पर वह गरीब तो थी नहीं। साथ ही बातचीत में उसने सारे महीनों के प्रति घृणा भी प्रकट कर दी। परिणाम यह हुआ कि, सोने चांदी के बजाय बालकों ने उसके बोरे में छिपकली, मच्छर आदि भर दिये। जब उन्होंने काटना शुरू किया तो कलुषित हृदय की पड़ोसिन सब कुछ समझ गयी। वह पश्चाताप करने लगी और फिर उसने मन ही मन प्रतिज्ञा की—अब मैं कभी बारिश को गाली नहीं दूँगी। कभी उसे बुरा नहीं कहूँगी। अब मैं कभी किसी को बुरा नहीं कहूँगी।

यही कहानीकार का उद्देश्य था। कहानी की भाषा बाल कहानी के उपयुक्त दृश्य विधायक है—"सोनजुही बूढ़ी हो गई थी, लेकिन उसने कभी किसी का दिल नहीं दुखाया था। गाँव के बच्चों को भी वह यही सिखाया करती थी। वह उनसे हमेशा यही कहती थी कि देखो, सच बोलना बहुत अच्छा है, इनसान को झूठ नहीं बोलना चाहिये..."

कहानी में उपदेश की अंतर्वर्ती धारा भी चलती रहती है।

(९) त्योहारों और व्यक्तियों की कहानियाँ

त्योहार और व्यक्तिपरक कहानियों की प्रकृति एक ही है। इन कहानियों के दो रूप हो सकते हैं- एक, त्योहारों और व्यक्तियों का कहानी की शैली में तथ्यात्मक विवरण प्रस्तुत करना और दूसरा, त्योहारों तथा व्यक्तियों के आधार पर घटनापूर्ण कहानी की कल्पना करना। दूसरे प्रकार की कहानी भी श्रेष्ठ बाल कहानी हो सकती है। पहले प्रकार की कहानी का ज्ञानात्मक पहलू निश्चित रूप से है। पर कहानी में सरसता भी पूर्णरूप से हो—यह निश्चित नहीं।

हिन्दी में उपर्युक्त दोनों शैलियों की कहानियाँ लिखी गई हैं। त्योहारों और व्यक्तियों की तथ्यसूचक कहानियाँ भी और सुन्दर घटनाचक्र से पूर्ण काल्पनिक कहानियाँ भी। पर त्योहारों में भी प्रत्येक का इतिहास और स्वरूप भिन्न भिन्न है। सभी त्योहारों में एक होली विशेष आनन्दपूर्ण त्योहार है। इसमें दूसरों की हँसी उड़ाने, दूसरों को और खुद को हँसाने की छूट रहती है। हँसने हँसाने के इस त्योहार पर हास्यपूर्ण पात्रों की कल्पना की जा सकती है। ऐसे पात्रों के जीवन की घटनाएँ और क्रियाकलाप बड़े महत्त्वपूर्ण होते हैं। उनके कार्य ऊलजलूल होते हैं जो दूसरों के हँसने का विषय बन जाते हैं।

दीपकृत 'लुत्फन्नीलाल की होली'[१] इसी प्रकार की त्योहारिक हास्यपूर्ण कहानी है। होली का हास्य संपूर्ण कहानी में बिखर रहा है। बच्चे होली पर चन्दा माँगते हैं, चंदा न देने वालों को परेशान करते हैं, यद्यपि परेशान करने का ध्येय

नहीं रहता और चंदा मिल जाने पर व्यक्ति को मुक्त कर देते हैं। पर कुछ लोग न बच्चों के आनंद में भाग लेना पसंद करते हैं और न उन्हें होली पर चंदा देते है। लुत्फन्नीलाल इसी प्रकार के हैं जो कहानी के केंद्र विंदु हैं। लुत्फन्नीलाल का चरित्र अपने उटपटांग व्यवहार के द्वारा बाल पाठकों का भरपूर मनोरंजन करता है।

कहानी के लुत्फन्नीलाल जब बहू लेने चले तो उनके दोस्तों को चिंता हुई। बहू लेकर लुत्फन्नी बहू के होकर रह जाते, उनके दोस्तों को इस बात की चिंता थी। पर लुत्फन्नी फिर भी बिना दोस्तों की परवाह किए ससुराल पहुँच गये। वहाँ मधुर संबंध होने के कारण रिश्तेदारों को बार-बार मूर्ख बनाकर हास्य की सृष्टि की। ससुराल के बच्चों के अच्छे शिकार बने।

बच्चे हुक या कील द्वारा टोपी जैसे कपड़े उठा लेते हैं फिर चंदा देने पर वापस कर देते हैं। लुत्फन्नीलाल की भी यही हालत होती है—'चौक उठे हाथ फिराया, तो सिर पर से टोपी साफ थी। अचानक ऊपर देखा। पेड़ पर दो लड़के बैठे थे। उनकी टोपी उन बंदरों के पास थी। उन्होंने हुंकार भरी :—ओ बंदरों की दुम। जरा नीचे तो आओ, नानी याद करा दूँगा, नानी।'[1]

जिन लड़कों ने लुत्फन्नीलाल की टोपी सिर से उतारी थी, वे सिर्फ इतना ही चाहते थे कि लुत्फन्नीलाल चंदा दे दें। नत्थू और मिट्ठू नामक दोनों बालकों के क्रियाकलाप होली के हास्य का अत्यंत मधुर वातावरण उपस्थित कर देते हैं—'नत्थू और मिट्ठू का इरादा किसी को नुकसान पहुँचाने का नहीं था। वे तो चंदा जुटाने के लिये यह तरकीब काम में लाते थे। सीधे-सीधे कोई चंदा देता नहीं था सो वे पेड़ पर चढ़कर बैठ गये थे। मजबूत धागे में मछली फाँसने का काँटा लगा हुआ था, जिसे उधर से गुजरनेवाले लोगों की टोपी में अटका देते थे। इस तरह टोपी उनके कब्जे में होती थी। बेचारा राहगीर अपनी टोपी के बदले चुपचाप चार आने देता और चला जाता।

ऐसी कहानियों की रचना त्योहार की प्रकृति के आधार पर होती है।

त्योहारों की ही भाँति व्यक्ति विशेष को भी कहानी का आधार बनाया जा सकता है। व्यक्ति की आकांक्षा आगे बढ़ने की होती है। इसकी प्रेरणा उसे मिलती है महापुरुषों से। महापुरुष सामान्य रूप आकार के होकर भी अपने कार्यों से महान् हो जाते हैं। उनकी सामान्य विशेषताओं के संदर्भ में उनकी महान् विशेषताएँ रखकर देखने से आनंद की अनुभूति भी होती है और मन को यह सोचकर संतोष भी मिलता है कि हम भी वैसे ही हैं, प्रयास से वैसे ही बन सकते हैं। महापुरुषों के जीवन के प्रेरक प्रसंग इसलिए महत्त्वपूर्ण होते हैं। वे प्रसंग

---

1. लुत्फन्नी लाल की होली : दीपक : पराग : मार्च, १९६६।

हमको मानसिक रूप से ऊपर उठाते हैं—अपने दोषों को गुणों में परिणत करने की प्रेरणा प्रदान करते हैं।

बालकों के जीवन में चाचा नेहरू इस प्रकार आए कि बाल साहित्यकारों ने अनेक प्रकार से उन्हें साहित्य का आधार बनाया। उनके जीवन को लेकर कविताएँ लिखी गईं, कहानियाँ लिखी गईं और निबंधों के रूप में प्रेरक प्रसंगों की चर्चा की गई। मनोहर वर्मा कृत 'चाचा नेहरू और तीन भूत' में नेहरूजी की प्रकृति के तीन ऐसे प्रसंगों को लेकर कहानी का तानाबाना बुना गया है, जिनसे नेहरू जी ने अपने को ऊपर उठाया। बाल पाठक ऐसे व्यक्तित्व में आत्मसात होकर आत्म परिष्कार और आत्म संतोष की अनुभूति करता है।

ये तीन प्रसंग थे नेहरू जी द्वारा पिता की कलम का चुराया जाना, हिरन का मारना और एक अधिकारी को नौकरी से हटाना। कलम चुराने की घटना बताकर नेहरू जी ने असत्य से अपने को ऊपर उठाया, हिरन को गोली मारकर अपनी अहिंसक प्रकृति पर पश्चात्ताप किया और दया तथा करुणा सीखी और अधिकारी को बरखास्त कर उसका त्यागपत्र स्वीकार नहीं किया, इस प्रकार वहाँ भी अपने को क्रोध से ऊपर उठाकर मानवीयता का परिचय दिया।

बालकों के लिए ऐसी प्रेरणाप्रद कहानियों का मनोवैज्ञानिक दृष्टि से काफी महत्त्व है। नेहरू जी के पीछे लगने वाले तीन भूत उनके जीवन के तीन दोष हैं, जिनसे वे मुक्त हुए आततायी भूत कोमल प्रकृति परी से हारते रहे। कलम चुराने के प्रसंग पर भूत और परी दोनों संघर्ष करते हैं, नेहरू जी में मानसिक उद्वेलन होता है, पर सही बात बताकर महान बन जाते हैं—

'चाचा नेहरू चुपचाप भूत के इशारे से मोतीलाल जी की पढ़ने-लिखने की बड़ी टेबिल की ओर गए और‥‥‥और उन्होंने भूत का कहना मानकर तुरंत वह काम कर दिया, जो भूत ने बताया था।‥‥‥

इसके थोड़ी देर बाद ही पूरे आनंदभवन में शोर मच गया। चाचा नेहरू के पिता जी नौकरों से लेकर घर के सब बड़े लोगों तक को बुरी तरह डाँट रहे थे। कहते हैं, जब उन्हें गुस्सा आता था, तो घर के सब लोग घबरा उठते थे। डर के मारे काँपने लगते थे। चाचा नेहरू पर भी डाँट पड़ी। डर के मारे वह झूठ बोलने ही वाले थे कि सत्यपरी ने चुपके से आकर उनके कान में कुछ कहा और एक लाल गुलाब का फूल देने का वायदा भी किया। बस फिर क्या था चाचा नेहरू ने सच बात बता दी कि वह कीमती पेन उनके बस्ते में रखा है।

भूत और परी दो मानवीय प्रवृत्तियाँ हैं—एक दुष्प्रवृत्ति है। दूसरी सद्-प्रवृत्ति। साहित्य असत से सत की ओर ले जाता है और यही काम करती है

प्रस्तुत कहानी। अंत में निष्कर्ष के रूप में लेखक स्पष्ट करता है—"हम सबके पीछे भी, बच्चों, ऐसे गलत काम वाले भूत लग जाते हैं। नेहरू चाचा की तरह हम भी अगर इन भूतों को हराते चलें, तो एक दिन महान् आदमी बन सकते हैं।"

उपदेशतत्त्व इन कहानियों में प्रमुख होता है पर घटनाचक्र के माध्यम से होने के कारण ग्राह्य हो जाता है।

(१०) सामंती जीवन की कहानियाँ

सामंती जीवन की कहानियाँ वे होती हैं जिनका सम्बन्ध राजा रानियों से होता है। आज भारत में सामंती जीवन समाप्त हो चुका है। पर भारत या विश्व का प्राचीन और मध्यकालीन इतिहास सामंतों से परिपूर्ण है। राजा और प्रजा, इन्हीं दो इकाइयों में पूरा समाज बँटा हुआ था।

इन सामंतों में अधिकांश जहाँ व्यवस्था के परिणाम स्वरूप प्रजा के दोहन पर पलते थे, वहीं कुछ ऐसे भी राजा रानी हुए थे जो प्रजा के हित की चिंता करते थे और प्रजा के लिए कार्य करते थे। ऐसे राजा, रानी या राजकुमार और राजकुमारी अनुकरणीय बन गए। साहित्यकारों ने उन्हें उनकी महत्ता देखकर अपना लिया। ऐसे सामंत प्राणियों के जीवन की चर्चा हुई। बाद में चर्चा ने कहानियों का रूप ले लिया। धीरे-धीरे इसी प्रकार की कहानियों की रचना प्रारम्भ हो गई, साहित्यकार राजा रानियों की कल्पना करने लगे।

सामंतों से सम्बद्ध ये कहानियाँ उनकी दया, करुणा, प्रजावत्सलता, दानशीलता, वीरता आदि गुणों को लेकर रची गईं। इन कहानियों में सामंतों का सामंतीपन कम, सामान्य मानवीय गुणों का उल्लेख अधिक रहता था।

हिन्दी को प्रभूत मात्रा में ऐसी कहानियाँ प्राप्त हुईं। बड़ों और बालकों के मनोरंजन तथा मनोपरिष्कार के लिए इन कहानियों को बहुत कहा सुना गया। इनमें बहुत सी कहानियाँ बालकों द्वारा भी अपना ली गईं और वे बाल साहित्य के अन्तर्गत आ गईं।

पर सामंत एक सामाजिक व्यवस्था के परिणाम थे। एक समय था, जब वे प्रजा के अंग, उनके परिपोषक और उनके लिए पिता या बड़े भाई के समान थे। शासन की जटिलता के विस्तार के साथ-साथ ये प्रजा से अलग हो गए, प्रजा के लिए ये दर्शनीय और प्रदर्शनीय वस्तु बन गए। प्रजा से सम्बन्ध टूट जाने के कारण ये शासन को अपने से चिपका रखने वाले अहितैषी और स्वयं के लिए सुविधाएँ बटोरने वाले बन गए।

यहीं इनका महत्त्व समाप्त हो गया और इनको लेकर लिखी जानेवाली कहानियाँ झूठी और बेमानी सिद्ध होने लगीं। आज सामंती जीवन पर मौलिक कहानियाँ लिखना महत्त्व की बात नहीं रह गई है। यद्यपि अनेक बाल कहानीकार राजा, रानियों और राजकुमारों की कहानियों के माध्यम से रचना कर रहे हैं, पर यह बाल साहित्य के क्षेत्र में मध्यकाल की अवतारणा है जो आज के वैज्ञानिक युग में संभव नहीं। उनका जीवन आज वायवी प्रतीत होता है। फिर वे ऐसे टाइप हैं जो अनेक कहानियों को एक ही प्रकार का बना देते हैं। फलस्वरूप कहानियों में किसी प्रकार का वैविध्य उत्पन्न नहीं होता। ऐसी स्थिति में आधुनिक यथार्थ जीवन की वैविध्यपूर्ण कहानियों की रचना करना ही उचित है। इसी दृष्टि से सामंती साहित्य की आलोचना करते हुए आनंद प्रकाश जैन ने लिखा—"राजा रानी का वह सारा सामंती परिवेश इतिहास के पन्नों में सदा के लिए खो गया है, जिसके सहारे राजा रानी तथा उनके राजकुमार तथा राजकुमारियों का अधिकार सुख नामक तत्त्व पर जन्मजात समझा जाता था और जिनके राह चलते काँटा चुभ जाने की घटना पढ़कर भी बालक के आँसू निकल पड़ते थे। चूँकि राजा रानियों के प्रति सामान्य प्रजाजनों में भक्ति की वह तीव्र भावना शेष नहीं रह गई है, इसीलिए उनके सुख-दुःख वह साहसिक कारनामे भी केवल उन्हीं बाल पाठकों को उद्वेलित कर सकते हैं जो विश्व के वैचारिक परिवेशों में नहीं जी रहे हैं।"[1]

आज के युग में आधुनिकता की माँग ही स्वाभाविक है। आज की आधुनिकता में पले बालक ही आगे की अतिआधुनिकता से अपनी सामंजस्य स्थापित कर सकेंगे। अन्यथा वे वास्तविक जीवन से कट जाएँगे।

हिन्दी में साहित्य की इस पुरानी धारा से आज भी अनेक बाल कथाकार लिपटे हुए हैं। संपादक भी ऐसी कहानियों को महत्त्व देकर प्राचीनता का पोषण कर रहे हैं। इस प्रकार की बाल कहानियाँ ऐतिहासिक तथ्यों पर स्वीकार की जा सकती हैं, वायवी आधार पर नहीं। वास्तव में अभी हिन्दी में आधुनिक जीवन की ठेठ समस्याओं को लेने की प्रवृत्ति बढ़ी नहीं है।

---

१. **बच्चों का साहित्य कैसा हो? आनंद प्रकाश जैन : धर्मयुग : १४ जून, १९६४।**

सामंती जीवन की कहानियों का परिवेश हमारे रोज के ग्रामीण और नगरीय परिवेश से भिन्न होता है। जैसे—"राजकुमार का चाँद सा मुखड़ा देखकर रानी निहाल होती। राजा उसके लिए नित नये आनंद का सामान इकट्ठा करते। बालक के लिए चंदा जैसा पालना बनाया गया। चाँदी के तारों की किरणों जैसी डोरियाँ उसमें बाँधी गई। माँ लोरियाँ गाती बेटे को सुलाती। राजकुमार पूनम के चाँद की तरह धीरे-धीरे बढ़ता रहा। राजा और रानी ने उसे प्यार से किशोर पुकारा, और यही उसका नाम पड़ गया······रानी ने उसके लिए गुड़ियों का घर सजाया। राजा ने उसके लिए चिड़ियों का घर बनाया।"[1]

कहानी में बालक के मोर के प्रति प्रेम की बात कही गई है। मोर को एक चोर चुरा लेता है। चोर भी मोर को चाहता है। अंत में मोर का पता लग जाता है और राजा चोर को भी महल में स्थान दे देता है। मोर भी मिल जाता है जिससे राजकुमार का मन बहलता था और उसका रक्षक चोर भी मिल जाता है। मोर के चुराए जाने की संभावना ही मिट जाती है।

प्रस्तुत कहानी का समस्त ताना बाना वायवीय है। एक सामान्य बालक को ऐसे राजकुमार से क्या लेना देना, जिसका जीवन बिल्कुल भिन्न है। सामान्य बालक ऐसा जीवन, कहीं नहीं पाता, इसलिए ऐसी कहानियों में उसका रुचि लेना संभव नहीं है।

(११) वैज्ञानिक कहानियाँ

आज का युग विज्ञान का युग है। विज्ञान हमारे जीवन का अंग और आधार बन चुका है। विज्ञान की महान उपलब्धि ने ही हमें विकास के ऊँचे सोपान पर पहुँचाया है।

विज्ञान ने हमें केवल उन्नति के ही अवसर नहीं दिए हैं, बल्कि अपनी यथा-तथ्यता से हमारे दृष्टिकोण को ही बदल दिया है। अब हम वैज्ञानिक सत्य की चर्चा करते हैं, जो तर्कसम्मत या प्रयोग सिद्ध सत्य का पर्याय है।

जीवन में विज्ञान का स्थान बढ़ जाने से वैज्ञानिक तथ्यों या उपकरणों के प्रति हमारा रागात्मक सम्बन्ध भी हो गया है। इसका परिणाम यह हुआ है कि जो विज्ञान नीरस लगता था, वह सरस प्रतीत होने लगा है तथा अपनी प्रक्रिया से वह संवेदना पैदा करने लगा है। संवेदना ही साहित्य का आधार होती है। यदि वैज्ञानिक जानकारी संवेदना के आधार पर दी जा सके तो वह न केवल चिर-स्थायी होगी, बल्कि साहित्य के आस्वादन के नये द्वार भी खुलेंगे तथा वैज्ञानिक

---

१. चोर के घर मोर : सरस्वतीकुमार दीपक : नंदन : मई : १९६७।

दृष्टिकोण का विकास भी होगा। अंधविश्वासों को तोड़ने और सत्य को वास्तविक रूप में परखने के लिए वैज्ञानिक दृष्टिकोण अनिवार्य है।

वैज्ञानिक बाल कहानियों की रचना सामान्य तया वैज्ञानिक तथ्यों से परिचित कराने के लिए हुई। पर इस प्रकार की कहानियाँ अधिक नहीं लिखी गई। इसके दो प्रमुख कारण प्रतीत होते हैं—एक वैज्ञानिक ज्ञान का अभाव, दूसरे वैज्ञानिक दृष्टि या विज्ञान के प्रति संवेदना का अभाव। एच० जी० वेल्स ने अंग्रेजी में प्रौढ़ों के लिए वैज्ञानिक कथा साहित्य पर्याप्त मात्रा में प्रस्तुत किया। इसका कारण उस विज्ञान के प्रति संवेदनशीलता थी। विज्ञान को वह जड़ तथ्यों के रूप में नहीं सजीव रूप में मानता था। हिन्दी में बड़ों के लिए ही अधिक वैज्ञानिक साहित्य निर्मित हुआ, बालकों के लिए नहीं।

फिर भी वैज्ञानिक बाल कहानियों की दिशा में जब तब प्रयास हुए। वैज्ञानिक ज्ञान के विकास या वैज्ञानिक कहानियों की रचना का मूलाधार यही है कि बालकों में स्वयं नवीनता के प्रति जिज्ञासा होती है। वे अधिकाधिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए लालायित रहते हैं। रहस्य या अनजानी चीजों तक को वे जान लेना चाहते हैं।[1] उनकी जिज्ञासा संसार में प्रत्येक अजानी वस्तु के लिए होती है। जब उसे कथात्मक सरसता के साथ प्रस्तुत किया जाता है तो बालक जानकारी पाने के साथ-साथ कथात्मकता का भी आनंद प्राप्त करता है।

इस तथ्य को 'छोटा इंजन' शीर्षक वैज्ञानिक कहानी में देखा जा सकता है। लोहे का बना इंजन जड़ नहीं सजीव रूप लिए हुए एक आकार है। उसकी रूपाकृति भी होती है, साथ ही उसमें गतिशीलता भी होती है। यही मानव का गुण है। इसी अर्थ में इंजन सजीव है। लेखक इंजन के प्रति पाठक की सजीवता पैदा करके विज्ञान की ओर पाठक को आकृष्ट कर देता है। फिर इंजन का निर्माता कौन था, उसकी कार्यप्रक्रिया क्या है, इसकी भी बाल पाठक को जानकारी हो जाती है।

इंजन भाप से चलता है। भाप आग और पानी से बनती है। पानी आकाश से आता है। आग सूरज से आती है। सूरज भी आकाश में रहता है। अतः आकाश का बड़ा महत्त्व है। इसी बात को छोटे इंजन ने जब समझाकर कहा तो—"तुम ठीक कहते हो। आकाश हमारा पालन-पोषण करता है आग और पानी देकर जिससे हम चलते फिरते हैं। इसलिए आदरपूर्वक आकाश को नमस्कार करो, क्योंकि आकाश तुम्हारा हमारा सबका पिता है।" बूढ़े इंजन ने

---

१. ऐंथोंलोजी आफ चिल्ड्रेंस लिटरेचर : ऐडनाजोनसन आदि, पृ० ७३०।

(छोटे इंजन को) प्यार से समझाया ।[1]

वैज्ञानिक कहानी लिखने के लिए विज्ञान के स्पष्ट ज्ञान का होना अनिवार्य है । इसके अतिरिक्त उस ज्ञान को पचाकर कहानी का रूप दे देने की क्षमता भी कहानीकार में होनी चाहिए । यही वह कठिनाई है जिसके कारण वैज्ञानिक बाल कहानियाँ उँगलियों पर ही गिनने लायक निर्मित हुई ।

(१२) मुहावरों की कहानियाँ

मुहावरे भाषा के विशिष्ट प्रयोग के सूचक हैं । वे भाषा की व्यंजनापूर्ण इकाई हैं और अपनी अर्थगंभीरता के द्वारा भाषा को सघनता प्रदान करते हैं ।

मुहावरों की दूसरी विशेषता यह है कि उनके मूल में किसी घटना का संकेत रहता है, जैसे स्वर्ग से गिरा, खजूर पर अटका । इस मुहावरे में किसी चीज के स्वर्ग से गिरने और उसके खजूर पर अटकने की घटना निहित है । पर क्या स्वर्ग से गिरा, कब गिरा और कहाँ किस खजूर पर अटका आदि रहस्यपूर्ण तथ्य है । एक ओर घटना जितनी यथार्थ जैसी है, कल्पना उसकी उतनी ही रहस्यमय है ।

घटना की यथार्थता और कल्पना की रहस्यमयता ही कहानी का मूल है । हर रहस्य एक कहानी है । मुहावरे का घटना रहस्य भी कहानी बन जाता है ।

इसी आधार पर स्वातंत्र्योत्तरकाल में मुहावरों की कहानी, नई कहानी विधा का विकास हुआ । बाल साहित्य में यह पूर्णतः नई कहानी विधा है । इसका प्रयोग मुख्यरूप से हरिकृष्ण देवसरे ने किया, यद्यपि अन्य छिट-फुट प्रयास भी हुए । इन कहानियों का विवेचन करते हुए देवसरे जी ने स्वयं कहा है कि "इन कहानियों की रचना में विशेषता यह होती है कि वे मुहावरों में से ही निकलती हैं ।"[2]

सैद्धांतिक दृष्टि से उनका यह कथन युक्तियुक्त है । मुहावरे की घटना किसी विशिष्ट अर्थ से जुड़ी रहती है । अर्थ का ही मुहावरे में महत्त्व है, घटना का नहीं । ऐसी स्थिति में अर्थ की सिद्धि के लिए बाल कहानीकार किसी भी घटना क्रम की कल्पना कर सकता है । शर्त यही है कि घटनाक्रम या कहानी मुहावरे से व्युत्पन्न हो या उसके संदर्भ में चले । लेखक को पूर्ण छूट रहती है कि वह अपनी कल्पना के घोड़े चाहे जिस दिशा में ले जायँ ।

पर घटनाचक्र का निर्वाह सरसता के साथ होना चाहिए । मुहावरे में से

१. छोटा इंजन : वीरकुमार : अधीर : पराग : जून, १९६७ ।
२. हिन्दी बाल साहित्य : एक अध्ययन : हरिकृष्ण देवसरे, पृ० २७४ ।

स्वयं कहानी व्युत्पन्न हो, सप्रयास व्युत्पन्न न कराई जाय, तभी कहानी का महत्त्व है। मुहावरे की घटना को कहानी का अंग बनकर प्रस्तुत होना चाहिए।

उपर्युक्त विवेचन के लिए देवसरे जी द्वारा विवेचित कहानी को ही लिया जा सकता है। मुहावरा है 'सूत न कपास, जुलाहों में लट्ठम लट्ठा।' इसका तात्पर्य है—निराधार झगड़ा। लेखक ने इसके लिए जिस कहानी की रचना की है, वह इस प्रकार है—

दो जुलाहे थे। दोनों गहरे मित्र थे लेकिन दोनों मूर्ख थे। एक दिन उन्होंने तय किया कि शहर चलें। वहाँ कुछ काम करेंगे और धन कमाएँगे।

जब वे गाँव के बाहर आए तो एक खेत मिला। उसमें कोई फसल नहीं बोई गई थी। वह खाली पड़ा था।

'अहाँ······हा······कितना बढ़िया खेत है। अगर इसमें कपास बोएँ तो खूब अच्छी फसल मिलेगी।' पहले जुलाहे ने कहा।

'हाँ भाई, बात तो सोलह आने सच है।' दूसरा जुलाहा सिर हिलाकर बोला।

अब दोनों उस खेत की मेड़ पर बैठ गए। पहले खेत की मिट्टी उठाकर देखने लगे। फिर बीज की बात तय की। लेकिन जब बोने की बात आई तो दूसरा जुलाहा बोला, अगर आधा खेत मुझे मिल जाय, तो मैं भी बुआई करूँगा।'

'ठीक है। बाकी मैं बो लूँगा।' पहले जुलाहे ने सहमत होते हुए कहा।

'तब तो मैं सबसे कीमती बीज बोऊँगा।'

'तो क्या मैं नहीं खरीद सकता? मै उससे भी अच्छा बीज लूँगा।'

'मैं तो सोलह घंटे खेत पर मेहनत करूँगा।'

'मैं चौबीसों घंटे खेत में ही लगा रहूँगा।'

अब दोनों एक दूसरे को नीचा दिखाने की कोशिश करने लगे। दोस्ती की बातें भूलकर आपस में बढ़ बढ़ कर बातें करने लगे।

'अरे तू क्या चौबीस घंटे मेहनत करेगा। जरा अपने मरियल बैलों को देख?'

'तुझे खेती का काम आता भी है?'

'हाँ······हाँ······मेरे बाप-दादा के यहाँ सैकड़ों मन अनाज होता था। पर तू तो सिवा ताना-बाना के जानता ही क्या है?'

'अरे जा……जा……किसी और के सामने डींग हाँकना।'

तो 'तू किस शान में ऐंठ रहा है ?'

और तू किस ऐंठ में अकड़ रहा है ?'

'अरे तेरी अकड़ तो मैं अभी सीधी करता हूँ।'

'और तेरी शान अभी धूल में………'

'इसके बाद दोनों ने अपनी-अपनी लाठियाँ उठाईं। खट…खट…खटाखट।

गाँव के लोगों ने दोनों को झगड़ा करते देखा तो झपटकर आए और अलग किया। जब लोगों ने झगड़े का कारण सुना तो खूब हँसे। बोले 'यह भी खूब रही। सूत न कपास, जुलाहों में लट्ठम लट्ठा।'

कहानी यहाँ आकर समाप्त हो जाती है। लेखक का एक नई विधा को प्रारम्भ करने का प्रयास सराहनीय है। कल्पना पर आधारित इस विधा में एक ही मुहावरे पर अनेक कहानियाँ लिखी जा सकती हैं। अन्य दिशाओं से भी कहानी का ताना-बाना बुना जा सकता है।

नई विधा की ऐसी कहानियों को बालपाठक सराहें यह उचित ही है। और भी कहानीकार इस दशा में बढ़ते तो अच्छा होता। यद्यपि यह भी तथ्य है कि इस विधा की सीमाएँ हैं। घटनाचक्र में मुहावरे को घटाना पड़ता है इससे यदि उपयुक्त संबंध न बैठा तो कहानी की युक्तियुक्तता बाधित हो जाती है। ऐसी कहानी का उद्देश्य बच्चों को मुहावरे का जन्म अर्थ तथा प्रयोग—कहानी के माध्यम से 'बताना' रहता है। प्रस्तुत कहानी से अर्थ और प्रयोग तो स्पष्ट होता है पर मुहावरे का जन्म स्पष्ट नहीं होता। जन्म स्पष्ट कर सकना संभव है ही नहीं। क्योंकि इनका प्रयोग किसी काल विशेष में परिस्थिति के दाव में हुआ होगा। काल और परिस्थिति के परिवर्तन के साथ मुहावरे का इतिहास भी खो जाता है।

दी गई कहानी में दो एक बातें और विचारणीय हैं। वास्तव में जिस रूप में कहानी है वह मुहावरे का विस्तृत प्रयोग मात्र है। यदि कहानी का ताना-बाना खेतों के स्थान पर सूत और कपास को लेकर होता तो संगति अधिक होती। खेती का आधार लेने से 'मेरे दादा के यहाँ सैकड़ों मन अनाज होता था। पर तू तो सिवा ताना-बाना के जानता ही क्या है ?' जैसे अंतर्विरोधी कथन आ गये हैं। ताना-बाना तो दोनों का ही पैतृक कार्य था, खेती नहीं। अपनी बात सिद्ध करने के लिए यह कथा को मनमाना बनाता है।

इसी प्रकार 'ऐंठ में अकड़ना' मुहावरा का भी उचित प्रयोग नहीं है।

ऐंठना और अकड़ना एकार्थी हैं। अतः किसी एक के प्रयोग से ही वाक्य उपयुक्त होता।

फिर भी विधा का प्रवर्तन और विकास श्लाघ्य है। इसका और विस्तार होना चाहिए। कहानी और कविता, दोनों की ही रचना मुहावरों के आधार पर की जा सकती है।

(१३) बाल जीवन की कहानियाँ

बाल जीवन की कहानियाँ ही वे वास्तविक कहानियाँ हैं जिनका सीधा संबंध बाल जीवन से है। बालकों का अपना जीवन होता है। उनकी मनोभावनाएँ, आकांक्षाएँ, दृष्टिकोण अपने होते हैं। उनके जीवन का अनुभव बड़ों से भिन्न होता है। उनका एक भिन्न संसार होता है—बाल संसार, जहाँ जीवन के मूल्य बाल स्तर पर व्यक्त होते हैं, उस स्तर पर नहीं जिसका संबंध बड़ों के अनुभव से है।"[१]

'बालकों के जीवन की अपनी समस्याएँ होती हैं। उनकी शिक्षा-दीक्षा पारस्परिक मैत्री, परिवार में समायोजन आदि अनेक प्रश्न बालकों के जीवन और वातावरण से संबद्ध हैं। एक बाल लेखक के लिए इस बाल मनोभूमि को समझना अत्यावश्यक है। उसे सांसारिक नैतिकता और आध्यात्मिक मूल्यों को भी समझना होगा, उसमें रचनात्मकता और प्रत्युत्पन्नमतित्व भी होना चाहिए और साथ ही भाषाभिव्यक्ति की क्षमता भी अपेक्षित है।"[२]

बाल पाठक ऐसी कहानियों को अपने जीवन की कहानी मानकर चलते हैं। उनमें वे अपने जीवन की समस्याओं का हल खोजते हैं। अतः ऐसी कहानियों की रचना में लेखक का व्यावहारिक और यथार्थवादी बनना आवश्यक है। यदि उसने अव्यावहारिक आदर्शवादी समाधान प्रस्तुत कर दिया तो कहानी निरर्थक सिद्ध होगी। बाल पत्रिकाओं में ऐसी आदर्शवादी कहानियाँ भी आया करती हैं।

बाल जीवन की कहानियों का विकास प्रारम्भ से ही हो गया था। पर स्वातंत्र्योत्तरकाल में इनकी रचना मुख्य रूप से हुई। पराग के उदय ने इन्हीं कहानियों को सर्वाधिक महत्त्व दिया। 'पराग' की कहानी प्रतियोगिताओं में भी इसी प्रकार

---

१. द अनरिलक्टेंट इयर्स : लिलियन हेलेना स्मिथ, पृ० १५।

२. टु राइट फार चिल्ड्रेन (इन दिस वे) डिमांड्स ए ग्रेट डील फ्राम द राइटर, ए सेंस आफ द इंम्पार्टेंस आफ युनिवर्सल मारल एंड स्प्रिटुअल वैल्यूज क्रियेटिव एंड इमैजिनेटिव पावर्स, एंड स्ट्रेंथ आफ इक्सप्रेशन आफ लैंग्वेज, वही पृ० ४२।

की कहानियाँ पुरस्कृत हुईं। इससे जीवनमूलक कहानी-रचना को बल मिला। अन्य पत्रिकाओं ने भी इस प्रकार की कहानियों को महत्त्व दिया पर उनकी प्रवृत्ति मिली-जुली कहानियों को अधिक रही। किसी किसी संपादक ने घटनाप्रधान पुरानी शैली की कहानियों की तुलना में इन्हें बहुत कम महत्त्व दिया।

बालकों के अपने जीवन से संबद्ध इन कहानियों का बालकों पर वस्तुतः प्रभाव पड़ता है। भावुकता भी इन कहानियों में किसी स्तर पर रहती ही है, जिससे भावनाशील बाल पाठक प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। किसी न किसी प्रकार की समस्या से संबंध होने के कारण ऐसी कहानियों को समस्यामूलक कहानी भी कहा जा सकता है। ऐसी एक समस्या कहानी है 'एक परीक्षा'[1] दो बालकों की पारस्परिक मित्रता का टूटना और फिर जोड़ने का प्रयास ही कहानी का मूल बिंदु है। दोनों एक ही परिवार के थे पर—

'कोई दिन ऐसा नहीं जाता था, जब राजू व शंकर में तू तू मैं मैं न होती हो। शंकर राजू को अपना कट्टर दुश्मन समझता था, तो राजू शंकर को अपना पक्का बैरी। किसी को पता नहीं था कि इनका मनमुटाव कब शुरू हुआ। राजू शंकर का सगा भाई न सही, चाचा का लड़का तो था। दोनों एक ही क्लास में पढ़ते थे। क्लास में राजू आगे डेस्क पर बैठता तो शंकर सबसे पीछे। घर से स्कूल के लिए निकलते तो साथ साथ नहीं। अगर कभी एक साथ निकलते भी तो राजू गली के एक नुक्कड़ से निकलता और शंकर दूसरे नुक्कड़ से जाता।

शंकर और राजू नाम के इन दोनों बालकों को परिवार के सदस्यों से लेकर अध्यापकों तक सभी ने समझाने की चेष्टा की। पर कोई फल नहीं निकला। और फिर अन्त में आई लखनऊ से इन दोनों की दीदी। इन्होंने भी बहुत समझाया—'एक भाई वो भी होते हैं जो भाई के लिए जान तक दे देते हैं और एक तुम हो कि एक मुस्कराहट तक नहीं दे सकते अपने भाई को —मुस्कराहट जिसकी कोई कीमत नहीं लगती और जो सबसे अधिक मूल्यवान होती है।'

किंतु मेल फिर भी नहीं हुआ। और तब दीदी ने एक उपाय निकाला पिकनिक का। पिकनिक पर वे गईं तथा राजू और शंकर को भी ले गईं। वहाँ वे एकाएक गायब हो गईं। शंकर और राजू के नाम एक पत्र छोड़ गईं—

'अगर मुझे पाना चाहते हो तो आज से अपनी दुश्मनी छोड़ दो। वर्ना नतीजा तुम अच्छी तरह जानते हो। घर क्या मुँह लेकर जाओगे। लोग क्या कहेंगे। तुम्हारे मुँह पर थूकेंगे नहीं कि अपनी दीदी को कहीं खो आए? और यह भी

१. एक परीक्षा : हसनजमाल छीपा : पराग : फरवरी : १९७०।

सोचो हर साल मैं राखी क्या यूँ ही बाँधती हूँ। ध्यान से, ठंढे दिमाग से सोच लो। एक तरफ तुम्हारी दीदी है, दूसरी तरफ तुम्हारी आपस की दुश्मनी। क्या चाहिए तुमको ?'

यही कहानी का भावात्मक स्थल है। अपनी दीदी को खो देने की आशंका दोनों के हृदय को बदल देती है। दोनों पश्चात्ताप कर उठते हैं अपने बैर पर और संकल्प भी कर लेते हैं कि दीदी के लिए वे शत्रुता छोड़ दें मेल कर लें।

पर दीदी कहीं खोने या भागनेवाली नहीं थीं। वे तो पुल के नीचे छिपकर बैठी सबकुछ सुन रही थीं। इसका तात्पर्य यह हुआ कि अगर यह उपाय कारगर न होता तो दीदी दूसरा उपाय काम में लाती। पर राजू और शंकर तो इसे अन्तिम घटना मान रहे थे और इसी आधार पर उन्होंने अपनी शत्रुता भंग की।

ऐसी कहानियों में प्रश्न और हल या समस्या और समाधान की कल्पना पहले कर ली जाती है और तब उसकी सिद्धि के लिए घटनाचक्र की रचना की जाती है।

मालती जोशी, यादराम रसेंद्र, शीलाइंद्र और मस्तराम कपूर 'उर्मिल' प्रभृति कहानीकारों को इस प्रकार की कहानियों में विशेष सफलता मिली है—प्रारम्भ के दो रचनाकारों को तो अत्यधिक। पर घटनाचक्र की कल्पना रचना और समाधान के प्रस्तुतीकरण में कभी-कभी अव्यावहारिकता भी आ जाती है। मालती जोशी कृत 'जीने की राह'[1] में बालक का भरत की माँ से सान्निध्य प्राप्त करना तो सम्भव है, क्योंकि वह बालक में भरत का तादात्म्य करके आत्मतोष करती है, पर स्वयं बालक का खिलौने बेचने के लिए बार-बार आने में आदर्श अधिक यथार्थ कम है। उसका अपनी गरीबी से संघर्ष करना भी वास्तविकता के धरातल पर कम ही लगता है।

पर इन कहानियों के महत्त्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। बाल कहानियों के विकास की यह उपलब्धि है। यही वह चरण है जहाँ बाल कहानीकार का व्यक्तित्व ग्रहण करता है। उसे बालक के मनोविज्ञान को समझना पड़ता है, बाल दुनिया का ही अध्ययन करना पड़ता है।

आधुनिक बाल जीवन के संदर्भों की हास्य कहानियाँ और उपर्युक्त समस्या कहानियों में बाल जगत् के आभोग के तत्त्व हैं—पर सीधी बाल जीवन की कहानियाँ वे नहीं हैं।'

---

1. जीने की राह : मालती जोशी : पराग : जून, १६७१।

(१४) ज्ञानकथाएँ

ज्ञानकथाएँ कहानी और निबन्ध का मिश्रित रूप हैं। कहानी की विशेषता है घटनाचक्र की सर्जना और निबन्ध की विशेषता है ज्ञान बढ़ाना या सूचना देना। ज्ञानकथा में कहानी का घटनाचक्र होता है और निबन्ध में ज्ञान संप्रेषण।

बालकों के लिए इन कथाओं का महत्त्व असंदिग्ध है। बालकों की कहानियाँ पढ़ने में विशेष रुचि होती है। इसके विपरीत विशुद्ध ज्ञान या नई 'जानकारी प्राप्त करने में वे उतनी रुचि नहीं दिखाते। इसका कारण यह है कि ज्ञान ग्रहण करने में मस्तिष्क को अधिक सजग और परिश्रमपूर्ण बनना पड़ता है। कहानी अधिक मानसिक श्रम के बिना आनन्द प्रदान करती चली जाती है।

यदि कहानी की सरसता को निबन्ध द्वारा ज्ञान संप्रेषण से जोड़ दिया जाय तो दोनों उद्देश्य पूरे होने लगते हैं, विशेष रूप के दूसरा उद्देश्य कहानी से निबन्ध विधान के संयुक्त हो जाने से निबन्ध की नीरसता सरसता में परिणत हो जाती है। इस प्रकार बालकों को कोई नई बात सिखाना या ज्ञान प्रदान करना सुविधा-पूर्ण हो जाता है।

पंचतंत्र की रचना में विष्णु शर्मा ने इस तथ्य को पहचाना था और महिलारोप्य नगर के राजा के तीन मूर्ख राजकुमारों को कहानियों के माध्यम से राजनीतिक, व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन का पूरा पाठ पढ़ाया था तथा मूर्ख से चतुर राजनीतिज्ञ और विचारक बना दिया था।

पंचतंत्र की कहानियों का उपदेशतत्व निबन्धात्मक है; पर वह विभिन्न कहानियों की आत्मा बनकर आता है और बालकों द्वारा ग्रहण हो जाता है।

बालकथा साहित्य में इसी उद्देश्य से ज्ञान कथाओं का विकास हुआ। मनोहर वर्मा की पशु विषयक अनेक कहानियाँ कहानी के आनन्द के साथ पशु के स्वभाव, जीवन आदि के विषय में पूर्ण जानकारी प्रदान करती हैं।

हरिकृष्ण देवसरे ने भी ऐसी कथाओं की रचना की है जिनका उद्देश्य कहानी के माध्यम से ज्ञान देना है। उदाहरणार्थ 'किस्सा एक दियासलाई का' में कहानी के जरिये दियासलाई का परिचय दिया गया है। दियासलाई का जीवन में बड़ा महत्व है। आधुनिक जीवन में दियासलाई अनिवार्य हो गई है। ऐसी वस्तु के सम्बन्ध में बालपाठकों की उत्सुकता स्वाभाविक है। कहानी में इस उत्सुकता का समाधान प्रस्तुत किया गया है—

"जब मूड ठीक हुआ तो दियासलाई बोली, सुनो इंग्लैंड में एक व्यापारी था। उसका नाम था जानवाकर। उसकी दूकान में रासायनिक द्रव्य बिकते थे। लेकिन वाकर केवल व्यापारी ही नहीं था। वह प्रयोग भी किया करता था।

एक दिन उसने एक घोल तैयार किया। फिर पास पड़ी एक छोटी सी लकड़ी से उसे चलाने लगा। उस लकड़ी में वह घोल थोड़ा सा लग गया। उसे हाथ में लिए वह काम करता रहा। और इस बीच लकड़ी में लगा घोल सूख गया। जब वाकर को उस लकड़ी की जरूरत नहीं रही, तो उसने उसे फेंक दिया। लकड़ी एक पत्थर पर गिरी। गिरते ही जोर से चिट-चिट की आवाज हुई और धुआँ उठा। यह देखकर वाकर चौंक उठा। सोचने लगा—ये क्या हो गया। पर कुछ ही क्षणों बाद वह सारा रहस्य समझ गया कि उस लकड़ी में लगे रासायनिक पदार्थ के पत्थर पर रगड़ खाने से ऐसा हुआ है।"[1]

कहानी के माध्यम से लेखक ने दियासलाई के आकस्मिक आविष्कार और उसके निर्माण की प्रक्रिया स्पष्ट कर दी। बाल पाठकों को महत्त्वपूर्ण ज्ञान प्राप्त हुआ और कहानी की पृष्ठभूमि होने से यह ज्ञान संप्रेषण नीरस भी न होने पाया।

इस प्रकार की कथाएँ चंपक के अनेक अंकों में भी आई हैं।

उपर्युक्त प्रकार की कहानियों के अनेक संग्रह भी प्रकाशित हुए हैं। प्रायः सभी भाषाओं के लोक कथाओं के संग्रहों के अतिरिक्त महत्त्वपूर्ण कृतियाँ हैं—भुलक्कड़ बिन्नी (मनोहर वर्मा) ये रणबांकुरे (सावित्री देवी वर्मा), सूम का घड़ा (संतोष गार्गी), चीटीं का बदला (स्वदेश कुमार), नये परीलोक में (हरिकृष्ण देवसरे) निर्भयता का वरदान (मस्तराम 'कपूर उर्मिल') मैं नेहरू बनने चला (मनोहर वर्मा), मम्मी विरोधी क्लब (अवतार सिंह), भालू (हरिकृष्ण देवसरे), शिकार की तलाश (इंदिरा नूपुर), दंड का पुरस्कार (मस्तराम कपूर 'उर्मिल') आदि।

उपन्यास

हिंदी बाल साहित्य पर अंग्रेजी बाल साहित्य का ऋण निस्संकोच भाव से स्वीकार किया जाना चाहिए। हिंदी बाल साहित्य की मौलिक उपलब्धि बाल कविताओं और बाल-कहानियों के रूप में ही है। बाल कहानियां भी लोक कथाएँ या लोक कथाओं से निसृत थीं। बाल साहित्य के अन्य रूप उपन्यास, नाटक या

---

१. **किस्सा एक दियासलाई का : हरिकृष्ण देवसरे : पराग : अप्रैल १९६७।**

निबन्ध आदि की रचना के मूल में अंग्रेजी बाल साहित्य की प्रेरणा थी।

आधुनिक बाल साहित्य का प्रारम्भ बीसवीं सदी के साथ-साथ हुआ। बाल शिक्षा के प्रारंभ के साथ-साथ बाल साहित्य भी आया। धीरे-धीरे पाठ्येतर साहित्य पढ़ने की प्रवृत्ति बालकों में पैदा हुई। इस उद्देश्य से बाल पत्रिकाओं का प्रकाशन शुरू हुआ।

बाल पत्रिकाओं के प्रकाशन ने अधिकाधिक बाल साहित्य रचना की संभावना पैदा कर दी। एक ओर अंग्रेजी का प्रचार-प्रसार हो जाने से अंग्रेजी बाल साहित्य से परिचय हुआ, दूसरी ओर हिंदी में भी देखा देखी बाल साहित्य का भंडार भरने की रुचि साहित्यकारों में जगी।

जैसा ऊपर उल्लेख किया गया है, यह प्रवृत्ति कविता और कहानी को लेकर अधिक थी। प्रारंभ की बाल पत्रिकाओं में कविताएँ और कहानियाँ अधिक हैं।

पर जब साहित्यकारों का परिचय अंग्रेजी के बाल उपन्यासों से हुआ, तो बालकों के लिए उपन्यास लिखने की शुरुआत हिंदी में भी हो गई। हिन्दी में स्वातंत्र्यपूर्व ही बाल उपन्यास लिखे जा चुके थे इनमें बालक, प्रेम और परियाँ जैसा भारतीकृत उपन्यास भी उसी समय बालसखा में धारावाहिक आ गया था।

फिर भी उपन्यास रचना के प्रति तीव्र ललक साहित्यकारों में नहीं आई। यह ललक आज भी नहीं आ सकी है। बाल साहित्य रचना के लगभग छः सात दशक, सक्रियता के साथ बीत चुके। इतने लम्बे कालखंड में कहानी विकसित हुई, नाटक लिखे गए और विकसित भी हुए, कविता की भी स्थिति सुदृढ़ हुई। पर बाल उपन्यास की दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य नहीं हुआ—जितने उपन्यास और जितनी कला या शैली सौष्ठव के साथ उपन्यास लिखे जाने चाहिए थे उतने नहीं लिखे गए। फिर भी हमारे बाल साहित्यकारों ने इस रिक्तता को भरने की अपनी सीमा में कोशिश की है, और यह प्रसन्नता का विषय है।

हिन्दी के कुछ उपन्यास बाल जीवन की समस्याओं को छूते हैं और उनमें शैली सौन्दर्य भी है। सत्यप्रकाश अग्रवाल कृत 'एक डर : पाँचे निडर' को इस कोटि में लिया जा सकता है।

पर हिन्दी में कुल मिलाकर बाल उपन्यासों की रचना कम क्यों हुई, इस विधा का अपेक्षित विकास क्यों नहीं हुआ, यह विचारणीय है।

बाल उपन्यासों की रचना के अभाव का प्रमुख कारण संभवत उपन्यास रचना के कथ्य की स्पष्ट धारणा न होना है। इसी कारण लम्बे अरसे तक बाल उपन्यास नहीं लिखे गए और आज भी मौलिक उपन्यासों की रचना कम है। श्रेष्ठ उपन्यास तो उँगलियों पर गिनने लायक ही हैं।

बालकों का अपना विशिष्ट जीवन होता है। उनका परिवेश अपना होता है और उनके जीवन की अपनी ही समस्यायें होती हैं। बाल साहित्यकारों के लिए कहानी विधा में बालक के खंड जीवन की कल्पना करना आसान रहा है विशाल फलक पर महाकाव्यात्मक ढंग से बालक के विशाल जीवन की कल्पना करने में साहित्यकारों ने कठिनाई का अनुभव किया। तभी जो उपन्यास लिखे भी गए वे या तो ऐतिहासिक घटनाओं पर या वैज्ञानिक तथ्यों का आश्रय लेकर अथवा बालकों के जीवन की छोटी घटनाओं को लेकर।

मौलिक ढंग से बाल जीवन को समझने के लिए उनके जीवन का निकट से निरीक्षण पर्यवेक्षण आवश्यक है। उनकी भाषा की पकड़ भी जरूरी है। ऐतिहासिक या वैज्ञानिक उपन्यास रचना में एक आधार प्राप्त रहता है, इसलिए उपन्यास रचना सरल हो जाती है। उदाहरण के लिए झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई के जीवन पर उपन्यास रचना करने के लिए ऐतिहासिक घटनाओं को बटोर लेने पर काम काफी सरल हो जाता है या वैज्ञानिक तथ्यों की जानकारी कर लेने पर उन्हें क्रमबद्ध कथा में बाँधना सरल हो जाता है।

पर इसका यह तात्पर्य कदापि नहीं कि ऐतिहासिक या वैज्ञानिक उपन्यास लिखना अत्यंत आसान है। तात्पर्य यही है कि बालकों के परिवेश का पूरा परिचय न होने के कारण 'स्कूली टोली' (निकोलाई नोसोव) या 'तीन मोटे आदमी' (यूरी ओलेशा) रूसी बाल उपन्यासों जैसी कृतियों की रचना नहीं हुई। रूसी लेखक अर्कादी गेदार कृत एक बाल उपन्यास है 'तिमूर और उसकी टोली'। इसमें बालदल के संगठन पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। बालदल के संगठन का कथानक हिन्दी में भी प्रभावी हो सकता है और भारतीय परिवेश में इस विषय पर अच्छे बाल उपन्यास की रचना हो सकती है।

बाल उपन्यास का वर्गीकरण

बाल उपन्यासों को रचना की दृष्टि से तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है—

(१) मौलिक उपन्यास
(२) अनूदित उपन्यास
(३) संक्षिप्तीकरण

तीनों श्रेणियों के उपन्यास महत्त्वपूर्ण हैं। तीनों प्रकार के उपन्यासों की रचना की विशिष्ट परिस्थितियाँ हैं। निश्चित रूप से महत्त्व मौलिक उपन्यासों का ही होता है कोई भी भाषा मौलिक उपन्यासों या मौलिक कृतियों से ही समृद्ध होती है। वही उसकी उपलब्धि होती है और उसी में उदिष्ट जीवन की झलक मिलती है। इसीलिए मौलिक कृतियाँ ही किसी भाषा को गौरवान्वित कर सकती हैं।

पर अनूदित उपन्यासों का अपना अलग महत्त्व है। यह उपलब्धि दूसरी भाषा की ही होती है किंतु जिस भाषा में उपन्यास अनूदित होते हैं उसके अभाव को अवश्य पूर्ण करते हैं। अनूदित उपन्यास साहित्यवृद्धि ही नहीं करते, विधा विशेष का दिशा निर्देश भी करते हैं। अनूदित उपन्यास या अनूदित कृतियाँ साहित्य रचना के लिए प्रेरणा का कार्य करती रही हैं।

भावान्तर और संक्षिप्तीकरणों का भी अपना महत्त्व है। उपर्युक्त क्रम बाल उपन्यासों के महत्त्व का क्रम भी है।

(१) मौलिक उपन्यास

मौलिक उपन्यासों की रचना की दृष्टि से स्वातंत्र्योत्तरकाल बहुत अधिक समृद्ध न होते हुए भी स्वातंत्र्यपूर्व काल से कई कदम आगे है। स्वातंत्र्यपूर्व काल में जहाँ दो चार उपन्यास ही निर्मित हुए थे, वहाँ स्वातंत्र्योत्तर काल में कई उपन्यास लिखे गए और लोकप्रिय हुए।

स्वातंत्र्योत्तर काल के उपन्यासों में साहसिक, जासूसी, ऐतिहासिक, वैज्ञानिक और भौगोलिक सभी प्रकार के हैं। साहसिक उपन्यासों में सत्य प्रकाश अग्रवाल का एक डर पाँच निडर प्रभावशाली उपन्यास है। इस उपन्यास की मुख्य समस्या बालकों के मन से भय दूर करना है। भय एक मानसिक स्थिति है। घटनाचक्र की विशिष्टता से यह भय दूर किया जा सकता है।

भय की भावना बालकों में बाल्यावस्था में जन्म लेती है। बाद में यह एक मनोग्रंथि (कम्प्लेक्स) बन जाती है और व्यक्ति को आजीवन सताती है। जिस प्रकार बचपन में अज्ञानतावश इसे पैदा किया जाता है, उसी प्रकार इसे बचपन में ही दूर भी कर दिया जाय तो बालक एक मानसिक तनाव से मुक्त हो जाता है। इस दृष्टि से ऐसा उपन्यास मनोवैज्ञानिक भी है।

'एक डर : पाँच निडर' में पाँच बालक भय का मिलकर सामना करते हैं और यह सिद्ध कर देते हैं कि भय कुछ नहीं, मन का मात्र भ्रम है—'उनको (लोगों को) पूरा विश्वास था कि भूतिया हवेली में भूत रहते हैं। इसलिए वे रात को उसके पास जाने से घबराते थे। लेकिन पाँचों नन्हे मुन्ने उनको बतला रहे थे कि वे भूतिया हवेली के अंदर पूरी रात बिताकर आए हैं और वहाँ कोई भूत नहीं रहता। अंत में सबने बच्चों के कहने के अनुसार उस हवेली के अंदर जाकर देखा। सचमुच वहाँ कोई भूत नहीं था।''[१]

प्रस्तुत उपन्यास का लेखक भाषा, घटनाचक्र और बालकों की मनो भावनाओं को पहचानने में भी कुशल है। तभी इस उपन्यास को बालकों ने इतना सराहा है।

साहसिक उपन्यासों में हरिकृष्ण देवसरे, कृत डाकू का बेटा, मनहर चौहान कृत हाथी का शिकार तथा बाघ का शिकार और विमला शर्मा कृत एक था छोटा सिपाही भी महत्वपूर्ण हैं।

जासूसी उपन्यासों में चंदर कृत 'डबल जीरो सीक्रेट एजेंट १/२' तथा अवध अनुपम कृत 'शेर का पंजा' उल्लेख्य हैं। हिंदी में बालकों के लिए जासूसी उपन्यासों का प्रायः बहिष्कार किया गया। इसका कारण यह था कि जासूसी उपन्यासों में हत्या का प्रायः आधार लिया जाता है। इससे बालकों के अपराधी बनने की आशंका रहती है। पर अब प्रायः यह स्वीकार किया जाने लगा है कि जासूसी उपन्यास बालकों के लिए अहित कर नहीं, बशर्ते उनकी शैली ठीक ठीकाने की है—अर्थात् उनमें हत्या, अपराध आदि पर यदि अनावश्यक बल नहीं दिया गया है। श्रेष्ठ जासूसी नायक प्रत्युत्पन्नमति, उपकारी और उच्चकोटि के साहसी होते हैं। ये मानवीयता के गुण हैं। इसीलिए अच्छे जासूसी उपन्यासि उपेक्षणीय नहीं है।

चंदर 'कृत' डबल जीरो सीक्रेट एजेंट १/२' में ये गुण हैं और बालपाठकों ने इसे भरपूर पसंद किया है।

इस दृष्टि से जासूसी उपन्यास की रचना बड़े उत्तरदायित्व का काम है। यह एक ऐसी कुल्हाड़ी है कि उपयोगी भी हो सकती है, अनुपयोगी भी। अनुपयोगी होने पर अत्यंत खतरनाक सिद्ध हो सकती है।

ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास चरितों और वीर पुरुषों पर रचना हुई है। वीरता और महानता के लिए भारतीय इतिहास समृद्ध हैं। प्रागैतिहासिक काल से लेकर उपलब्ध ऐतिहासिक काल तक अनेक ऐसी घटनाएँ

---

१. एक डर : पाँच निडर, पृ० १४३।

घटीं, जिनसे कुछ प्रमुख व्यक्तित्व या ऐतिहासिक पुरुष उभरे। झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, शिवाजी, छत्रसाल, राजा भोज, चन्द्रगुप्त मौर्य आदि अनेक वीर पुरुष भारतीय इतिहास में नक्षत्र की भाँति चमक रहे हैं। इनका जीवन समाज और राष्ट्र को समर्पित रहा है। इनकी मानवीय संवेदना अनुकरणीय है। इसी आधार पर इन चरितनायकों का महत्त्व है।

इस दिशा में वास्तव में बहुत अधिक लिखा भी नहीं गया। प्रागैतिहासिक काल में भी रचना के लिए आधार मिल सकते हैं और उपलब्ध इतिहास में भी। फिर भारतीय इतिहास ही नहीं, विदेशों के चरितनायकों को भी रचना का आधार बनाया जा सकता है।

फिर भी मनहर चौहान कृत हल्दीघाटी, और खूब लड़ी मर्दानी, हरिकृष्ण देवसरेकृत महाबली छत्रसाल, तथा राजा भोज, सुशीलकुमारकृत चन्द्रगुप्त मौर्य तथा राजेश शर्मा कृत गुरु गोविन्द सिंह आदि बाल उपन्यास सुन्दर हैं।

वैज्ञानिक उपन्यासों का प्रारंभ विज्ञान के विकास के कारण हुआ है। जिन बातों की कभी एच० जी० वेल्स ने कल्पना की थी, वे आज व्यावहारिक रूप में दिखाई दे रही हैं। वेल्स की प्रमुख कल्पना अंतरिक्ष जगत् को लेकर थी। आज चंद्र यात्राओं ने उसकी कल्पना को साकार रूप दे दिया है।

चंद्रयात्राएँ वैज्ञानिक विकास से संभव हुई हैं। ये यात्राएँ बड़ी रहस्यपूर्ण सी और मनोरंजक हैं। दादी, नानी की कल्पनाओं का चन्द्रमा अब समाप्त हो गया है और चन्द्रमा के सम्बन्ध में काफी जानकारी प्राप्त हो चुकी है। इसी जानकारी का लाभ उठाते हुए वैज्ञानिक उपन्यास लिखे गए जिनमें हरिकृष्ण देवसरे का 'चन्दामामा दूर के' महत्त्वपूर्ण है। इस उपन्यास में चन्द्रमा की वैज्ञानिक जानकारी का उपयोग उतना ही हुआ है, जिससे उपन्यास को आधार मिल सके। शेष लेखक की उर्वर कल्पना पर उपन्यास निर्मित है। विज्ञान और कल्पना (फंतासी) दोनों का उपन्यास में मिश्रण है।

अन्य उपन्यासों में जयप्रकाशकृत 'बर्फ की गुड़िया' और ओमप्रकाश कृत 'चाँद से आगे' महत्त्वपूर्ण कृतियाँ हैं।

हिन्दी में मौलिक उपन्यासों की रचना से कम होने का कारण प्रकाशकीय नीतियाँ और बाल साहित्य के प्रति जनसामान्य की उपेक्षा है। हिन्दी में बाल साहित्य को जो स्थान मिलना चाहिए था, वह नहीं मिला। इससे प्रकाशित उपन्यास या अन्य कृतियाँ खपती नहीं और प्रकाशक उदासीन हो जाता है। दूसरी ओर प्रकाशक बाल साहित्यकार को उचित पारिश्रमिक नहीं देना चाहता, परिणामस्वरूप साहित्यकार भी उदासीन रहते हैं।

'एक डर : पाँच निडर' में पाँच बालक भय का मिलकर सामना करते हैं और यह सिद्ध कर देते हैं कि भय कुछ नहीं, मन का मात्र भ्रम है—'उनको (लोगों को) पूरा विश्वास था कि भूतिया हवेली में भूत रहते हैं। इसलिए वे रात को उसके पास जाने से घबराते थे। लेकिन पाँचों नन्हे मुन्ने उनको बतला रहे थे कि वे भूतिया हवेली के अंदर पूरी रात बिताकर आए हैं और वहाँ कोई भूत नहीं रहता। अंत में सबने बच्चों के कहने के अनुसार उस हवेली के अंदर जाकर देखा। सचमुच वहाँ कोई भूत नहीं था।''[1]

प्रस्तुत उपन्यास का लेखक भाषा, घटनाचक्र और बालकों की मनो भाव-नाओं को पहचानने में भी कुशल है। तभी इस उपन्यास को बालकों ने इतना सराहा है।

साहसिक उपन्यासों में हरिकृष्ण देवसरे, कृत डाकू का बेटा, मनहर चौहान कृत हाथी का शिकार तथा बाघ का शिकार और विमला शर्मा कृत एक था छोटा सिपाही भी महत्त्वपूर्ण हैं।

जासूसी उपन्यासों में चंदर कृत 'डबल जीरो सीक्रेट एजेंट १/२' तथा अवध अनुपम कृत 'शेर का पंजा' उल्लेख्य हैं। हिंदी में बालकों के लिए जासूसी उप-न्यासों का प्रायः बहिष्कार किया गया। इसका कारण यह था कि जासूसी उपन्यासों में हत्या का प्रायः आधार लिया जाता है। इससे बालकों के अपराधी बनने की आशंका रहती है। पर अब प्रायः यह स्वीकार किया जाने लगा है कि जासूसी उपन्यास बालकों के लिए अहित कर नहीं, बशर्ते उनकी शैली ठीक ठीकाने की है—अर्थात् उनमें हत्या, अपराध आदि पर यदि अनावश्यक बल नहीं दिया गया है। श्रेष्ठ जासूसी नायक प्रत्युत्पन्नमति, उपकारी और उच्चकोटि के साहसी होते हैं। ये मानवीयता के गुण हैं। इसीलिए अच्छे जासूसी उपन्यास उपेक्षणीय नहीं है।

चंदर 'कृत' डबल जीरो सीक्रेट एजेंट १/२' में ये गुण हैं और बालपाठकों ने इसे भरपूर पसंद किया है।

इस दृष्टि से जासूसी उपन्यास की रचना बड़े उत्तरदायित्व का काम है। यह एक ऐसी कुल्हाड़ी है कि उपयोगी भी हो सकती है, अनुपयोगी भी। अनुप-योगी होने पर अत्यंत खतरनाक सिद्ध हो सकती है।

ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास चरितों और वीर पुरुषों पर रचना हुई है। वीरता और महानता के लिए भारतीय इतिहास समृद्ध हैं। प्रागैतिहासिक काल से लेकर उपलब्ध ऐतिहासिक काल तक अनेक ऐसी घटनाएँ

---

१. एक डर : पाँच निडर, पृ० १४३।

घटीं, जिनसे कुछ प्रमुख व्यक्तित्व या ऐतिहासिक पुरुष उभरे। झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, शिवाजी, छत्रसाल, राजा भोज, चन्द्रगुप्त मौर्य आदि अनेक वीर पुरुष भारतीय इतिहास में नक्षत्र की भाँति चमक रहे हैं। इनका जीवन समाज और राष्ट्र को समर्पित रहा है। इनकी मानवीय संवेदना अनुकरणीय है। इसी आधार पर इन चरितनायकों का महत्त्व है।

इस दिशा में वास्तव में बहुत अधिक लिखा भी नहीं गया। प्रागैतिहासिक काल में भी रचना के लिए आधार मिल सकते हैं और उपलब्ध इतिहास में भी। फिर भारतीय इतिहास ही नहीं, विदेशों के चरितनायकों को भी रचना का आधार बनाया जा सकता है।

फिर भी मनहर चौहान कृत हल्दीघाटी, और खूब लड़ी मर्दानी, हरिकृष्ण देवसरेकृत महाबली छत्रसाल, तथा राजा भोज, सुशीलकुमारकृत चन्द्रगुप्त मौर्य तथा राजेश शर्मा कृत गुरु गोविन्द सिंह आदि बाल उपन्यास सुन्दर हैं।

वैज्ञानिक उपन्यासों का प्रारंभ विज्ञान के विकास के कारण हुआ है। जिन बातों की कभी एच० जी० वेल्स ने कल्पना की थी, वे आज व्यावहारिक रूप में दिखाई दे रही हैं। वेल्स की प्रमुख कल्पना अंतरिक्ष जगत् को लेकर थी। आज चंद्र यात्राओं ने उसकी कल्पना को साकार रूप दे दिया है।

चंद्रयात्राएँ वैज्ञानिक विकास से संभव हुई हैं। ये यात्राएँ बड़ी रहस्यपूर्ण सी और मनोरंजक हैं। दादी, नानी की कल्पनाओं का चन्द्रमा अब समाप्त हो गया है और चन्द्रमा के सम्बन्ध में काफी जानकारी प्राप्त हो चुकी है। इसी जानकारी का लाभ उठाते हुए वैज्ञानिक उपन्यास लिखे गए जिनमें हरिकृष्ण देवसरे का 'चन्दामामा दूर के' महत्त्वपूर्ण है। इस उपन्यास में चन्द्रमा की वैज्ञानिक जानकारी का उपयोग उतना ही हुआ है, जिससे उपन्यास को आधार मिल सके। शेष लेखक की उर्वर कल्पना पर उपन्यास निर्मित है। विज्ञान और कल्पना (फंतासी) दोनों का उपन्यास में मिश्रण है।

अन्य उपन्यासों में जयप्रकाशकृत 'बर्फ की गुड़िया' और ओमप्रकाश कृत 'चाँद से आगे' महत्त्वपूर्ण कृतियाँ हैं।

हिन्दी में मौलिक उपन्यासों की रचना से कम होने का कारण प्रकाशकीय नीतियाँ और बाल साहित्य के प्रति जनसामान्य की उपेक्षा है। हिन्दी में बाल साहित्य को जो स्थान मिलना चाहिए था, वह नहीं मिला। इससे प्रकाशित उपन्यास या अन्य कृतियाँ खपती नहीं और प्रकाशक उदासीन हो जाता है। दूसरी ओर प्रकाशक बाल साहित्यकार को उचित पारिश्रमिक नहीं देना चाहता, परिणामस्वरूप साहित्यकार भी उदासीन रहते हैं।

अब इधर आकर कुछ हवा बदली है और बड़े साहित्यकारों ने भी इस यज्ञ में भाग लेना प्रारंभ कर दिया है। कृश्नचंदरकृत 'हमारा घर' अमृतलाल नागरकृत 'बजरंगी पहलवान' कुमुदनागरकृत 'वैज्ञानिक उपन्यास शीशे का आदमी' शुभावर्माकृत 'करामाती लाकेट' और शिव सागर मिश्रकृत 'बहादुर लड़का' तथा सुशील कपूरकृत 'आदमी की कहानी' इसी का परिणाम है। 'हमारा घर' पर तो फिल्म भी बन चुकी है। बाल जीवन का यह उपन्यास मनोरंजक भी है और प्रतीकात्मक भी। बालकों का स्वयं घर बनाना भावी जीवन निर्माण का प्रतीक है। बालकों की संगठन वृत्ति को इसमें प्रशसनीय ढंग से उभारा गया है। राज्य परम्परा का कैसे विकास हुआ और कैसे वह शोषक बनी प्रतीक रूप में इसे भी दिखाया है।

अन्य उपन्यास धारावाहिक रूप में नन्दन या चंपक आदि में प्रकाशित हुए हैं। 'आदमी की कहानी' छोटी उम्र के बालकों ने काफी प[सं]द किया है। चंपक छोटी उम्र के—छः से लेकर दस-ग्यारह वर्ष की आयुवर्ग की पत्रिका है। इन बालकों ने वैज्ञानिक रूप में आदमी के विकास की कहानी में काफी रुचि ली है। इसका कारण रचना की शैली और भाषा है। रचना में दृश्यविधान पूर्णरूप से हुआ है—

"एक दिन आदम अपना ताँबे का भाला लेकर शिकार करने गया। उसने एक सूअर के पीछे भाला फेंककर मारा। लेकिन निशाना चूक गया। भाला एक पत्थर की चट्टान से जा टकराया और उसकी नोक मुड़ गई। आदम ने पत्थर से पीटकर नोक सीधी करनी चाही तो वह टूटकर अलग हो गयी। आदम को अपना इतना बढ़िया भाला टूट जाने पर बहुत अफसोस हुआ। वह उदास मन से घर लौट आया।"[1]

अनूदित उपन्यास

मौलिक उपन्यासों की रचना के पूर्व हिन्दी में अनुवाद ही आए। राबिन्सन क्रूसो, गुलिवर की यात्राएँ, आश्चर्यलोक में ऐलिस अंग्रेजी के प्रारंभिक ख्याति-प्राप्त बाल उपन्यास हैं। रोबिन्सनक्रूसो और गुलिवर की यात्राएँ बड़ों को दृष्टि में रखकर निर्मित हुए थे। पर अपनी वर्णन शैली, विषयवस्तु और सहजता के

---

१. आदमी की कहानी : सुशील कपूर, चंपक : नवंबर, १९७१।

कारण अंग्रेजी भाषी बालपाठकों को ये उपन्यास जँच गए और उन्होंने इतना महत्त्व दिया कि अंग्रेजी बाल साहित्य की ये कृतियाँ क्लासिक हो गईं।

आश्चर्यलोक में ऐलिस की रचना ल्यूइस कैरोल ने बच्चों को दृष्टि में रख-कर ही की थी। यह एक फंतासी है—कल्पनाश्रित कहानी पर इसमें बालकों की कल्पना को खुल खेलने का पूरा अवसर मिलता है। इसीलिए यह भी बालकों की कंठहार बन गई। इसकी शैली विषयसामग्री और चित्र रचना तीनों में बाल भावनाओं का पूरा समावेश है।

भारत में अंग्रेजी बाल साहित्य के प्रचलन के साथ-साथ ये उपन्यास आए और अनूदित होकर बाल पाठकों को मिल गए। बालकों के लिए ये रस सिद्ध रचनायें थीं। इसीलिए हिन्दी में इनके समादृत न होने के कारण ही न था। आज भी इन कृतियों के अनुवाद हो रहे हैं और पढ़े जाते हैं।

पर हिन्दी में अनूदित बाल उपन्यास मुख्यतः आए बालपत्रिकाओं के कारण। मनमोहन, बालभारती, पराग, नंदन आदि ने कई महत्त्वपूर्ण विदेशी और हिन्दीतर भारतीय भाषाओं के अनुवाद प्रस्तुत किए। अनूदित उपन्यासों के प्रयास मौलिक की ही भाँति सराहनीय हैं। वास्तव में अनुवाद की यह पहली शर्त है कि वह अनुवाद प्रतीक न हो। मौलिक का ही आनन्द प्रदान करे। शमशेर बहादुर सिंह द्वारा अनूदित आश्चर्यलोक में ऐलिस और रूसी लेखक निकोलाई नोसोव कृत तथा विनोदकुमार द्वारा अनूदित बुद्धूमल के कारनामे अनुवाद की कसौटी हैं।

दोनों कृतियों में अनुवाद की दो दृष्टियाँ हैं—एक अनुवाद को मूल रूप में प्रस्तुत करना और दूसरी, अनुवाद में देशानुसारी पात्र और स्थान का रूपान्तर कर देना। इनमें से किस दृष्टि का पालन किया जाय, यह कृति पर निर्भर करेगा। यदि कृति के नाम और स्थान अत्यधिक अपरिचित से लगते हैं तो उनका रूपान्तर अनुचित नहीं। बुद्धूमल के कारनामे में अनुवाद कार की दृष्टि इस माने में सही है। पर आश्चर्यलोक में ऐलिस का अनुवाद ज्यों का त्यों रखा गया, यह भी अनुवादक की विशेषता है। एक ऐलिस नाम को छोड़कर यह उपन्यास सार्वदेशिक है। दोनों सफल कृतियाँ चिरस्थायी महत्त्व की हैं।

आश्चर्यलोक में ऐलिस में जहाँ बालकल्पना की स्वाभाविकता है, वहीं बालकों के खेल जीवन से भी इसे जोड़ दिया गया है। इस कृति का पढ़ना बालकों के

लिए खेल खेलने के समान है। प्रस्तुत अंश बालकों के खेल जीवन की ही अभिव्यक्ति है—

हैटवाला—हुजूर, यह मेरा नहीं है।

बादशाह ने ऊँची आवाज में कहा,—चोरी का है ?......पंचों, लिख लो कि इसका......

हैटवाला गिड़गिड़ाया, 'हुजूर, सरकार अदालत, मर जाऊँगा। यह तो मैं बेचने के लिए सर पर रखता हूँ हुजूर। कीमत उस पर लिखी हुई है। हुजूर, मेरा अपना कोई हैट नहीं। मैं तो हैट—टोपी बेचने वाला हूँ, माई बाप'।

उपन्यास में जहाँ बालकों के स्तर पर हास्य है, बड़ों के स्तर पर व्यंग्य बादशाह का न्याय 'अंधेर नगरी का न्याय' है। शासकीय विद्रूपता में अच्छा पर्दाफाश हुआ है।

दूसरी कृति बुद्धूमल के कारनामे भी हास्य फंतासी है। यह बालकों के लिए बड़ी मनोरंजक कृति है। रूसी बाल साहित्य में नोसोव का स्थान चोटी के बाल साहित्यकारों में है। श्रेष्ठ हास्य लिखने में इनका सानी नहीं। बुद्धूमल के हँसाने वाले अनेक कारनामों का लेखा जोखा इस कृति में है। उनका एक कारनामा गुब्बारे द्वारा अंतरिक्ष यात्रा का है। बौने बुद्धूमल से अन्नपुष्पा गुब्बारा बनाने के विषय में पूछती है और वे उत्तर देते हैं—

"बड़ा भारी काम था इसका तो तुम लोगों को विश्वास होना ही चाहिए। मेरे सहयोगियों ने दिनरात काम करके रिकार्ड कायम कर दिया। कोई गुब्बारे पर रबड़ लपेड़ता रहा, कोई पंप चालू करता रहा, और मैं सीटी बजा बजाकर एक गाना गुनगुनाता हुआ घूमता रहा। लेकिन इससे यह न समझ बैठना कि मैं सीटी ही बजाता रहा, मैं साथ ही साथ हुक्म भी देता रहा। अरे, मेरे बिना क्या किसी से कुछ होने वाला था। मुझे हर बात उन्हें बतानी पड़ती थी और उन्हें दिखाना पड़ता कि अब यह करना है और अब वह करना है। बड़ी भारी जिम्मेदारी का काम था।"[1]

---

१. बुद्धूमल के कारनामे : पराग : नवंबर, १९६५।

जोना सिप्री कृत 'हैडी' को भी 'गुड्डी' नाम से इसी प्रकार अनूदित किया गया है। उसमें स्थानों और पात्रों का पूर्णतः भारतीयकरण कर दिया गया है—इस प्रकार कि उपन्यास में विदेशी कुछ रह भी नहीं गया है।

इन दोनों प्रकार के अनुवादों में मूल की रक्षा करते हुए और मूल पात्रों तथा परिवेश के साथ किया गया अनुवाद ही उचित है। इस प्रकार के अनुवाद से एक ओर जहाँ उपन्यास का रसास्वादन होता है, वहीं बाल पाठक का अंतर्राष्ट्रीय या राष्ट्रीय भूमिका पर विकास होता है।

उपर्युक्त अनुवादों के अतिरिक्त फ्रांसिस ब्राउन कृत और द्रवीक द्वारा अनूदित है 'नानी की अद्भुत कुरसी', इसे भी भारतीय परिवेश में प्रस्तुत किया गया है। बच्चों को यह उपन्यास पसन्द आया है। बाल भारती में यह धारावाहिक प्रकाशित हो रहा है।

एक अत्यंत प्रसिद्ध उपन्यास है सैमुएल एल० क्लीमेंस का 'द किंग ऐंड द पौपर' जिसका अनुवाद विनोदकुमार ने 'राजा और भिखारी' नाम से किया है। यह पराग में धारावाहिक प्रकाशित हुआ था। विनोदकुमार ने ही पराग के धारावाहिक प्रकाशन के लिए हैरियटबीचर स्टावकृत टाम काका की कुटिया प्रस्तुत किया है।

भारतीय भाषाओं से अनुवाद

भारतीय भाषाओं से हिन्दी में बाल उपन्यास कम अनूदित हुए। इसका मुख्य कारण भारतीय भाषाओं में उपन्यासों का अभाव है। फिर भी गुजराती लेखक विजयगुप्त मौर्यकृत 'जादूगर कबीर एक' उपलब्धि मानी जायगी, जिसका अनुवाद मनहर चौहान ने किया है। यह वैज्ञानिक फंतासी है, जिसके ताने-बाने में प्रकृति जगत की जानकारी समाविष्ट है। अनुवाद की दृष्टि से कहीं-कहीं परिष्कार अपेक्षित लगता है जैसे—'मानवीय सन्नारी, आपने अपने पैर मेरे सामने रखे हैं, इससे मुझे विश्वास हो रहा है कि आप आभार प्रदर्शन का मेरा भाषण सुन रही हैं।'[१]

उपर्युक्त अंश की भाषागत जटिलता से बालकथाकृति मुक्त होनी चाहिए।

१. जादूगर कबीर, पृ० ३८।

माधवन नायर मालि कृत बाल उपन्यास का ललित सहगल द्वारा अनुवाद सरकस भी पराग में क्रमशः प्रकाशित और लोकप्रिय हुआ।

इन उपन्यासों ने हिन्दी बाल उपन्यास के भंडार को समृद्ध किया है। इन अनुवादों की संभावनाएँ अनन्त हैं। बंगला का कोई बाल उपन्यास अनूदित होकर नहीं आया। केवल उपन्यास ही नहीं विभिन्न भारतीय भाषाओं से बाल कहानियों का भी अधिकाधिक अनुवाद होना चाहिए। बंगला में सत्यजीत राय वैज्ञानिक उपन्यास रचना में पटु हैं और लीलामजूमदार हास्य कहानियाँ लिखने में। हिन्दी में इनके अनुवाद होने चाहिए। जो बंगला बालकहानियाँ अनूदित होकर आई है, वे नगण्य हैं।

उपन्यासों के संक्षिप्तीकरण

उपन्यासों को प्रस्तुत करने की एक पद्धति उन्हें संक्षिप्त कर देने की भी है। संक्षेपीकरण में उपन्यासों के मूल अंश की रक्षा कर ली जाती है और उन अंशों को कम कर दिया जाता है या अलग कर दिया जाता है, जिनके अभाव में उपन्यास प्रभावित नहीं होता।

हिन्दी में इस प्रकार के संक्षेपीकरण अंग्रेजी के कई उपन्यासों के हुए हैं। जैसे आर० एल० स्टीवेंसन कृत 'ट्रेजर आइलेंड' का संक्षेपीकरण 'खजाने की खोज' में कारलो कोलोदी कृत 'पिनोकियो' का 'कठपुतला' सर वाल्टर स्काटकृत 'आइवन हो' का वीर सिपाही माइगेल द सरवांतेकृत 'डान क्विगजोट' का 'तीस-मार खाँ,' चार्ल्स डिकेंसकृत डेविड 'कापरफील्ड' का इसी नाम से तथा मार्क ट्वेनकृत 'टाम स्वयेर' का 'बहादुर टाम' प्रमुख संक्षेपीकृत कृतियाँ हैं।

हिन्दी में इन संक्षेपीकरणों के मूल में व्यावसायिक मनोवृत्ति का प्रभाव अधिक दिखाई देता है। वैसे इन संक्षिप्त रूपों का महत्त्व कम नहीं है। और उस स्थिति में जब कि हिन्दी में बाल साहित्य का अभाव भी है पर संक्षिप्त कर देने से औपन्यासिक विवृत्ति का आनन्द समाप्त हो जाता है। औपन्यासिक विवृत्ति अनावश्यक नहीं होती उससे बाल पाठकों को महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है साथ ही उपन्यास की सरसता भी पूर्ण रूप से मिलती है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि हिन्दी में बाल उपन्यास अधिक नहीं हैं—मौलिक भी और रूपान्तरित भी। ग्रामीण परिवेश पर कोई बाल उपन्यास

नहीं निर्मित हुआ। वैज्ञानिक उपन्यास भी और अधिक लिखे जा सकते हैं। कृती साहित्यकारों के लिए इस दिशा में काफी गुंजाइश है।

बाल पाकिट बुक्स

इधर बड़ों की देखा-देखी बच्चों के लिए भी कुछ बाल पाकिट बुक प्रचलित हुई हैं। इन शृंखलाओं का मुख्य उद्देश्य व्यावसायिक अधिक है, साहित्यिक कम। इसी का परिणाम है कि कोई विशेष कृति इस शृंखला में नहीं आई।

बाल पाकिट बुक्स में किरण बाल पाकिट बुक्स, ज्ञानभारती बाल पाकिट बुक्स और बसंत बाल पाकिट बुक्स मुख्य हैं। कहानियाँ और उपन्यासों का प्रकाशन इनमें मुख्यतः हुआ है और कुछ अच्छी कृतियाँ भी आई हैं, किन्तु इनमें काफी सुधार की आवश्यकता है। बाल पाकिट बुक्स का जो आकार निश्चित किया गया है, वह व्यावहारिक नहीं प्रतीत होता। पुस्तकें अत्यधिक छोटी होती हैं। पुस्तकों का आकार और लागत को देखते हुए भी मूल्य भी अधिक है।

आवश्यकता यह है कि बाल पाकिट बुक्स का आकार और बड़ा हो तथा सभी विधाओं की—कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक आदि पुस्तकें प्रकाशित की जायँ। इन प्रकाशनों से नाटक का तो एक भी प्रकाशन नहीं हुआ और कविता पुस्तक सिर्फ एक ही देखने में आयी है 'नेताजी' ने खाई मार'[1] जिसे तीसरी श्रेणी की कविता पुस्तक माना जा सकता है।

नाटक

बच्चे अपने बाबा या नाना की छड़ी ले लेते हैं और उसे घोड़ा बनाकर कहते हैं—'चल मेरे घोड़े टिकटिक टिक।' बच्चे यह जानते हैं कि छड़ी घोड़ा नहीं है, पर छड़ी के माध्यम से घोड़े की अनुकृति करके वे वास्तविक घोड़े पर बैठने का ही आनंद प्राप्त करते हैं। अनुकरण द्वारा एक दूसरे जीवन को अपने निकट लाकर वे न केवल अपना अनुभव-विस्तार करते हैं, बल्कि आनन्द की अनुभूति भी करते हैं।

---

१. नेताजी ने खाई मार : निर्मल कुमार कृत : ज्ञानभारती बाल पाकिट बुक्स।

अनुकृति बालकों की प्रकृति का अंग है। वे इसमें अचेतन रूप से आत्मसात होते हैं।[१] बौद्धिक विकास के साथ-साथ यह अनुकृति चेतन रूप ग्रहण करती जाती है। अरस्तू ने अनुकरणवृत्ति को मानव के आनंद का विषय माना है। वह कहता है—'बाल्यावस्था से ही मानव में अनुकरण वृत्ति पैदा हो जाती है और अनुकरण वृत्ति से मानव को सदा आनंद प्राप्त होता है।[२]

पर अनुकरण से वास्तविक आनंद तो बालकों को ही मिलता है। रामलीला के दिनों में बिकने वाले हनुमान, रावण आदि के मुखौटे और तीर धनुष बालक खरीद लेते हैं। फिर स्वतः राम, रावण हनुमान आदि बन जाते हैं। चेहरों पर मुखौटे और हाथ में तीर धनुष लेकर उसी प्रकार का अभिनय करने की चेष्टा करते हैं जैसा रामलीला में देखते हैं। वास्तव में यह सब उनमें छिपा हुआ अभिनेता कराता है। भरत के नाट्यशास्त्र में इसी को अवस्था की अनुकृति कहकर नाटक को परिभाषित किया गया है—'अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्' और पाश्चात्य विद्वान् इसी को 'अभिनय द्वारा मानव जीवन की प्रस्तुति' कहते हैं।[३]

---

१. अंग्रेजी भाषा के कवि वर्ड्सवर्थ ने अपनी सुप्रसिद्ध कविता 'ओड आन इंटीमेंसंस आफ इमार्टलिटी···' में एक शिशु का उल्लेख किया है जो बड़ों के अनुकरण के खेलों में संलग्न है—'सी, एट हिज फीट सम लिटिल प्लान आर

चार्ट सम फ्रेगमेंट, फ्रॉम हिज ड्रीम आफ
ह्यूमन लाइफ, शेव्ड बाई हिमसेल्फ विद
न्यूली लर्नेड आर्ट।

(उसके चरणों के समीप नेंडकोई नन्हीं योजना या रेखाचित्र है। मानव जीवन के उसके स्वप्न का कोई खंड जिसका निर्माण उसके स्वयं नवप्राप्तकला से किया है)। : गोल्डन ट्रेजरी : पालग्रेव, पृ० ३४३।

२. फ्राम चाइल्डहुड मेन हैव इंस्टिंक्ट फार रिप्रेजेंटेशंस ऐंड आल्वेज गेट इंज्वायमेंट फ्राम रिप्रेजेंटेशन : अरस्तू : मधुमती : जुलाई, अगस्त, ६७, पृ० १८६।

३. रिप्रेजेंटेशन आफ ह्यूमैन लाइफ इन ऐक्शन :

तात्पर्य यह कि अनुकरण का ही दूसरा नाम नाटक है। बालकों में अनुकरणवृत्ति की प्रधानता और स्वाभाविकता देखकर उनके लिए नाटक लिखने की प्रेरणा पैदा हुई।

प्रारंभिक साहित्यकारों का दृष्टिकोण नाटक के क्षेत्र में उपदेशवादी और सुधारवादी अधिक था। अतः इसी प्रकार के बालनाटक लिखे गए। इन नाटकों का उद्देश्य बालकों में धर्मभावना जगाना, भारतीय संस्कृति और इतिहास में आस्था पैदा करना आदि था। बालकों की अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति इनमें कम ही थी, इसके स्थान पर बड़ों की दृष्टि की उनमें झलक थी। स्वातंत्र्यपूर्वकाल के नाटकों में यह बात देखी जा सकती है।

वास्तव में नाटक का वास्तविक विकास स्वातंत्र्योत्तरकाल में ही हुआ। उसी समय नाटक की महत्ता, उपयोगिता और विषय की उपयुक्तता सामने आ सकी। शिक्षाशास्त्रियों ने बालकों के लिए नाटक की उपयोगिता अपने ढंग से बताई है। इस दृष्टि से नाटक के मुख्य उद्देश्य हैं—

(१) अवसर के अनुकूल आचरण करना सिखाना

(२) मानव स्वभाव और मानवचरित्र का अध्ययन करना

(३) सम्यक रीति से उच्चारण करने, बोलने अभिनय करने तथा भावों को व्यक्त करने की कला का ज्ञान कराना।[२]

भरतमुनि ने अवस्था की अनुकृति को नाटक कहा है। यद्यपि उन्होंने इस सिद्धांत की रचना बड़े अभिनेताओं की अभिनय कला के संदर्भ में की, पर यह तथ्य भिन्न प्रक्रिया से बालकों पर भी लागू होता है और नाटक के द्वारा अपने व्यावहारिक जीवन के लिए बालक उपर्युक्त गुण प्राप्त करता है।

यह तभी संभव है जब नाटक बाल रंगदृष्टि से निर्मित किया जाय। रंग-दृष्टि से तात्पर्य संपूर्ण आरंगण प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत मंचव्यवस्था अभिनय वेशभूषा नाटक की शैली तथाकथ्य आ जाते हैं। रंगमंच के अभाव में नाटक की कल्पना निरर्थक है। जो बाल नाटक बालकों के मंच पर सफल नहीं वह नाट्य-कृति नहीं। यह सही है कि बालनाटकों के लिए प्रयोगधर्मिता की आवश्यकता नहीं, विशेष रूप से रूढ़ अर्थ में—उनके लिए सहज बोध्य सरल नाटकों की अपेक्षा है, जिन्हें वे बड़ों के अभाव में भी या बड़ों के हलके निर्देशन के आधार पर सफलता से खेल सकें।

---

२. भाषा की शिक्षा : आचार्य सीताराम चतुर्वेदी, पृ० १८३।

बालकों के लिए नाटकों की कई स्तरों पर आवश्यकता है। एक ओर जहाँ शिक्षा संस्थाओं के वार्षिकोत्सवों पर खेले जाने वाले नाटक अपेक्षित है, वहीं सार्वजनिक जीवन में खेलने के लिए बाल-अनुभूतियों पर आधारित नाटकों की भी आवश्यकता है। इसी प्रकार ऐसे सरल नाटक भी अपेक्षित हैं जिन्हें बच्चे घरों में दैनिक उपयोग के सामानों द्वारा खेल सकें।

बाल रंगमंच और बाल नाटक

बाल रंगमंच के अभाव में बाल नाटक की कल्पना करना संभव नहीं है। वैसे सत्य यह है कि समृद्ध भाषाओं के साहित्य में भी बालनाटकों की संख्या अधिक नहीं, पर जहाँ भी नाटक हैं, उनकी सर्जना का कारण बालरंगमंच हैं। मंचीय प्रस्तुति के अभाव में नाटक की प्रभावशीलता और उसके गुण दोष प्रकट नहीं हो पाते।

भारतीय भाषाओं में बंगला में बाल नाटक विशेष रूप से उपलब्ध होंगे। नाटक के सभी रूपों की दृष्टि से बंगला भाषा समृद्ध है। इसका मुख्य कारण वहाँ सी० एल० टी०(चिल्ड्रेंस लिटिल थियेटर) मणिमेला, कलकाकली, और चिल्ड्रेंस नावेल थिएटर जैसी बाल रंगमंच संस्थाएं हैं। इनमें सी० एल० टी० सबसे अधिक ख्यातिप्राप्त है। इसके बाल नाट्य कार्यक्रम न केवल भारत में, बल्कि विदेशों तक में सराहे गए हैं। इसका अपना विशाल भवन है और संपूर्ण नाट्यसंस्था के चार भाग हैं-(१) पुतली विभाग, (२) समूह गायन विभाग, (३) ललितकला विभाग और (४) नृत्यनाट्य संस्थान। संस्था बराबर बाल नाटक अभिनीत करती रहती है और बाल अभिनेताओं को विधिवत नाट्यप्रशिक्षण प्रदान करती है।

अन्य संस्थाओं की भी अपनी व्यवस्था है, पर इतनी समृद्ध नहीं।

हिंदी में बाल नाटकों के अभाव का एक प्रमुख कारण बाल रंगमंच का अभाव ही है। बालकों के नाटक प्रायः बड़ों के मंच पर खेले जाते हैं, जहाँ उन्हें पूरी सफलता नहीं मिलती। इधर की रंग चेतना ने बालकों के लिए भी नाट्य-क्रियाओं को सजग किया है और अच्छे बालनाटक खेलने के प्रयास हुए हैं। फिर भी हिन्दी में अभिनेय बाल नाटकों का काफी अभाव है। ऐसे जो केवल बालकों के लिए हों, बालकों द्वारा अभिनीत हों और बालक ही उनके प्रेक्षक हों। अभी भी बड़ों के नाटकों को काटछाँट कर बालोपयोगी बनाया जाता है और बालकों से उनका अभिनय कराया जाता है। इसका एक कारण बड़ों का बाल नाटकों

के विषय में भ्रम भी है। वे भूल से बड़ों के नाटक को बालोपयोगी मान लेते हैं और बालकों के नाटकों की उपेक्षा करते हैं।

बालकों का अपना, जीवन अपना परिवेश, अपनी समस्यायें और अपना भाषास्तर होता है। इसी दायरे में बालनाटक अधिक सफल हो सकता है। इसकी सफलता की परख मंच पर प्रस्तुत किये जाने पर होती है।

'दरअसल बाल रंगमंच के बारे में दो तीन-स्तरों पर गंभीरतापूर्वक सोचने और कुछ करने की जरूरत है—बच्चों की सहज सर्जनात्मक अभिव्यक्ति के रूप में, स्कूलों में पढ़ाई के अलावा एक महत्त्वपूर्ण और जरूरी गतिविधि के रूप में और वयस्कों द्वारा नियमित रंगमंच के महत्त्वपूर्ण कल्पना प्रधान प्रकार के रूप में।[1]

इधर नयी शिक्षा के प्रभाव से बालशिक्षा संस्थाओं में सांस्कृतिक गतिविधियाँ बढ़ी हैं। इनमें बाल नाटक की प्रस्तुति प्रधान कार्यक्रम हो गया है। पर सार्वजनिक रूप से बाल नाटकों के अभिनय और प्रेक्षण की परंपरा अभी नहीं बनी है--जैसी कि बंगला में है। किंतु इसकी संभावनाएँ काफी हैं। बाल रंगमंच की स्थापना से यह संभावनाएँ साकार रूप ले सकेंगी।

"बाल रंगमंच के विभिन्न रूप न केवल सामान्यतः बच्चों के सौन्दर्य बोध और कलात्मक प्रवृत्तियों को जगाते, सँवारते और उत्तेजित करते हैं वे भविष्य के अभिनेता, निर्देशक, रंगशिल्पी और इन सबसे भी अधिक संवेदनशील दर्शक भी तैयार करते हैं। हमारे देश में व्यापक रंगचेतना और रंगकार्य के विकास में सुव्यवस्थित और कलात्मक बाल रंगमंच पक्की और गहरी नींव का काम करेगा।"[2]

उपर्युक्त अंश में व्यापक स्तर पर बाल रंगमंच की उपयोगिता स्पष्ट की गई है।

'बच्चों के व्यक्तित्व का विकास और उनमें आत्मविश्वास जगाने में बाल

---

१. नटरंग : (नाट्यत्रैमासिक) बालरंगमंच अंक : जनवरी--मार्च, ७० : संपादकीय, पृ० ४।
२. वही, पृ० ४।

रंगमंग का बहुत बड़ा योगदान हो सकता है'[1] कुमुद शर्मा के ये विचार बाल-रंगमंच की स्थापना की अनिवार्यता सिद्ध कर देते हैं।

बालरंगमंच की स्थापना से अच्छे बालनाटकों की रचना, चुनाव और बाल अभिनेताओं को ही नहीं तैयार किया जायगा संपूर्ण बाल जीवन में सक्रियता और संजीदगी पैदा हो जाएगी। उनकी खेल प्रवृत्ति को सही दिशा प्राप्त हो जाएगी। इससे उनके व्यक्तित्व में होने वाला परिवर्तन उनकी शिक्षा को भी मोहकता प्रदान करेगा। रंगक्रियाओं से बालकों की स्वतंत्र उद्भावना का भी विकास होगा, उनकी कल्पना प्रखर होगी।

इसके लिए आवश्यक है कि बालरंगमंच ही नाट्य क्रियाओं का प्रशिक्षण केन्द्र न बने, बल्कि प्रत्येक शिक्षा संस्था में बालक बालिकाओं को रंगक्रियाओं का प्रशिक्षण दिया जाय। अभिनय से लेकर मंचसज्जा, मेकअप, वेशभूषा, सज्जा, मंच की प्रकाश रचना और निर्देशन तक का प्रशिक्षण हो जिससे वे कभी-कभी स्वयं भी नाटक निर्देशित करें और स्वयं ही अपने बाल सहयोगियों के माध्यम से प्रस्तुत करें।

सार्वजनिक बाल रंगमंच और शिक्षा संस्थाओं की रंगक्रियाओं के अतिरिक्त प्रत्येक मुहल्ले में बाल नाट्यदल हों, जो नाटक अभिनीत करें। इस प्रकार बाल रंगचेतना को एक आन्दोलन के रूप में सामने आना चाहिए।

हिन्दीबाल रंचमंच के रूप में 'दिल्ली चिल्ड्रेंस लिटिल थिएटर' एक संस्था है जिसकी स्थापना सन् १९५४ में हुई थी। इस संस्थान ने विभिन्न प्रांतों की लोक कथाओं पर आधारित लयबद्ध नाटक निर्मित कराए हैं और प्रस्तुत किए हैं। दिल्ली की अनेक बाल संस्थाएँ इसकी सदस्य हैं जहाँ बालनाटकों का प्रशिक्षण दिया जाता है और कुशल निर्देशकों के निर्देशन में बाल नाटक प्रस्तुत किए जाते हैं।

बालक बड़ों का लघु रूप नहीं है। उसका अपना स्वतत्र और पूर्ण जीवन है। उसकी आवश्यकताएँ बड़ों की तुलना में कम नहीं, बल्कि भिन्न प्रकृति की ओर अधिक ही हो सकती हैं। बच्चों की नाट्य क्रियाओं और रंगमंच पर विचार करते हुए ऐसा ही प्रतीत होता है।

बाल नाटक रचना

नाटक का एक तत्त्व संवाद है। निश्चित रूप से यह नाटक का मुख्य तत्त्व

---

१. नटरंग : (नाट्य त्रैमासिक) : बाल रंगमंच अंक: जनवरी-मार्च, १९७०

है। पर किसी बात को संवाद रूप में व्यक्त कर देना ही नाटक नहीं है। संवाद नाटक का व्यावहारिक या व्यक्त रूप है। संवादों के माध्यम से ही नाटक का प्रारम्भ होता है और संवादों के माध्यम से ही अन्त। अस्तु, नाटक के बारे में यह धारणा भी बनी कि मन में आए हुए विचारों को संवाद की शैली में कह देने से नाटक की रचना हो जाती है।

पर यह दृष्टिकोण अत्यन्त भ्रामक है। जैसा कि पहले कहा गया है, रंगमंच के अभाव में नाटक की कल्पना ही नहीं की जा सकती। रंगमंच ही नाटक को नाटकत्व प्रदान करता है। इस दृष्टि से बालनाटक रंगमंच के सन्दर्भ में ही साहित्यिक विधा है। रंचमंच से पृथक् पठ्य नाटक हो सकता है, जिसमें रंग वैशिष्ट्यविहीन संवाद मात्र हों जिनका मंचन से किसी प्रकार का सम्बन्ध न हो।

रंगमंचीय नाटकों में संवादों की सटीकता, भाव व्यक्त करने की क्षमता और प्रेक्षकों के लिए बोधगम्य मूर्तभाषा की सर्जना होनी चाहिए। भाषण सदृश लम्बे-लम्बे संवाद अस्वाभाविक होते हैं। छोटे संवादों में गतिशीलता अधिक होती है, पर संवादों का छोटा या बड़ा होना कथ्य पर निर्भर करता है। अनावश्यक रूप से बड़े संवाद उपयोगी नहीं होते।

फिर इन संवादों की भाषा 'बच्चों के क्रियाजगत और उनकी अनुभूति की भाषा होनी चाहिए,'[1] अथवा नाटक की भाषा बालकों के जीवन की भाषा होनी चाहिए। इसके लिए बालनाटककार को बालकों की भाषा का निकट से अध्ययन करना होगा। तभी पैनी और स्वाभाविक भाषा का स्वरूप आ सकेगा।

भाषा नाट्योपयोगी न हो सकने का एक नमूना इस प्रकार है—

पुष्पा : (अपने आप उदास स्वर में) आँखें खोल मेरी लाड़ली। हाय तेरी बीमारी मुझे लग जाय। (हाथ जोड़कर) हे भगवान् परसों तक मेरी गुड़िया रानी को भलीचंगी कर दे। परसों इसका ब्याह है।

× × ×

चुन्नू : ..(लौटकर) वह बौना डाक्टर कहलाता है। कद में तो वह मुझसे भी छोटा है लेकिन उसकी योग्यता के आगे बड़े-बड़े डाक्टर

1. द राइटर फार चिल्ड्रेन मस्ट टु सम एक्स्टेंट ट्राइ टू फील ऐंड थिंक इन टर्म्स आफ चिल्ड्रेंस वर्ल्ड आफ एक्शन ऐंड एक्सपीरिएंसः राइटिंग फार चिल्ड्रेन टुडे। बाल भवन और राष्ट्रीय बालसंग्रहालय : नई दिल्ली, पृ० १०।

पानी भरते हैं। दुनियाभर की यूनिवर्सिटियों की डिग्रियाँ उसके पास है। अगर चाहे तो मुर्दे को जिन्दा कर दे।

डाक्टर : कुछ नहीं। हर मनुष्य आखिर मिट्टी का ही पुतला है। लेकिन आप चिन्ता न कीजिए, बहन जी मुझमें मिट्टी को भी जिन्दा करने की शक्ति है। मैं रोग की जांच करके अभी बताता हूँ (चुन्नू से) श्रीमान् जी, उस हैंडबेग से मेरी जरा स्टेथस्कोप निकाल दीजिए।'[1]

नाटक का कथ्य यद्यपि बाल भावनाओं के अनुकूल है, पर रेखांकित वाक्यों में बच्चों की व्यंजना नहीं है। 'तेरी बीमारी मुझे लग जाय'' इसके पीछे एक ऐसा मनोवैज्ञानिक संस्कार छिपा हुआ है, जिससे बड़े ही अवगत हो सकते हैं, बच्चे नहीं। इसी प्रकार 'पानी भरना' मुहावरा भाषा को जटिल बना देता है और जिन नन्हें प्रेक्षकों के लिए इस नाटक की सर्जना हुई है, उनके लिए अनुपयुक्त है।

यही स्थिति 'मिट्टी का पुतला' मुहावरा की है। मिट्टी को जिन्दा करने की शक्ति, बालकों के लिए अतार्किक है, क्योंकि इसमें मिट्टी शब्द की गहन व्यंजना से बालक परिचित नहीं रहते।

बालनाटक की स्वाभाविक भाषा और संवादों की चुस्ती का आदर्श खिलाड़ीराम का मुकदमा नाटक में द्रष्टव्य है—

जज : (रोबीली आवाज में) अपराधी को हाजिर करो।

चपरासी : (दरवाजे के बाहर मुँह करके ऊँची आवाज में) खिलाड़ीराम वल्द मेहनतीराम हाजिर है ?

खिलाड़ीराम : (अंदर आकर) हाजिर है।

(एक सिपाही खिलाड़ीराम को अपने साथ लाता है और कटघरे में खड़ा कर देता है।)

जज : तुम्हारा नाम ?

खिलाड़ीराम : खिलाड़ीराम।

जज : पिता का नाम ?

खिलाड़ीराम : मेहनतीराम।

जज : कौन से स्कूल में पढ़ते हो ?

---

१. गुड़िया का इलाज : चिरंजीत : प्रतिनिधि बाल एकांकी, पृ० १०५।

खिलाड़ीराम : मैं बरफीचंद खोयामल हायर सेकेंड्री स्कूल में पढ़ता हूँ।

जज : कौन सी कक्षा में हो ?

खिलाड़ीराम : मैंने नवीं का इम्तहान दिया है। (खीसे निकालते हुए) आप प्रसन्न हो जायँ तो मैं दसवीं में हो सकता हूँ। सच कहता हूँ अगर आप मुझे पास कर दें तो मैं आपको चमचम और रसगुल्ले खिलाऊँगा।[1]

पर इस नाटक में उपदेशात्मकता है। तुम भी नेहरू बन सकते हो। संवादों की स्वाभाविकता के अनन्तर नाटक में निर्देशन का महत्त्व है। यद्यपि लेखक द्वारा किए गए निर्देशन नाटक के मंचीकरण के लिए अंतिम नहीं होते—कुशल निर्देशक सुविधा और नाटक की प्रभावोत्पादकता के लिये निर्देशों में परिवर्तन भी कर लेते हैं, फिर भी लेखकीय निर्देशों का अधिकांशतः पालन होता है। इन निर्देशों पर मंच की सज्जा और संवादों का प्रेषण ही निर्भर नहीं करता, बल्कि कहीं-कहीं ये संवादों के भाव को उद्घाटित भी करते हैं। बाल अभिनेताओं के लिए तो ये अत्यन्त उपयोगी हैं। इनसे वे नाटक को समझने और अभिनय को सार्थक बनाने में सहयोग ले सकते हैं।

नाटककार को जितना अधिक रंगानुभव होगा, उसके निर्देश उतने ही सार्थक होंगे। एक बाल नाटक के प्रारंभिक निर्देश इस प्रकार हैं—'असीम, महिम और निम्मी के पढ़ने का कमरा। पुस्तकें इधर-उधर बिखरी हुई हैं। ताक पर रखी घड़ी में नौ बजकर पच्चीस मिनट हुए हैं। असीम की आयु लगभग बारह वर्ष, महिम उससे कुछ छोटा और निम्मी लगभग पाँच वर्ष की है। असीम एक जासूसी उपन्यास पढ़ने में डूबा है। महिम आगे पीछे सिर हिलाकर किताब से कुछ घोंटने में लगा है और बीच-बीच में उचक-उचक कर असीम की पुस्तक देख रहा है। निम्मी कोने में पड़ी खिलौनों की टोकरी से खिलौने निकालती जाती है और किसी पर मुँह बिचकाकर तथा किसी को प्यार करके रखती जाती है।'[2]

उपर्युक्त निर्देशन से नाटक के अभिनय में महत्त्वपूर्ण सहयोग मिलता है। मंचसज्जा ही नहीं, नाटक की रूपरेखा उभरकर सामने आ जाती है।

---

१. खिलाड़ीराम का मुकदमा : राजेन्द्रकुमार शर्मा : प्रति० बाल एकांकी, पृ० १३०।

२. चकमा: मस्तराम कपूर 'उर्मिल' : पराग, मार्च, १९६५।

बालनाटक के निर्देशन स्पष्ट और मंचकल्पना तथा अभिनय में सहयोगी होने चाहिए।

दूसरी महत्त्वपूर्ण बात है बाल नाटक के कथ्य की। नाटक के रूप में बालकों के सामने क्या प्रस्तुत किया जाय ?

इसका सामान्य उत्तर है, नाटक के रूप में प्रस्तुत की जा सकने वाली प्रत्येक बात, नाटक का कथ्य हो सकती है। देश प्रेम, व्यक्तित्व का विकास, और बालकों के जीवन को आनंदित करने वाले विषय बाल नाटक का कथ्य होने चाहिए। हास्य नाटक बालकों के लिए सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। बालकों के जीवन में निराशा नहीं होनी चाहिए। इसी दृष्टि से अपनी द्वितीय बालनाट्य प्रतियोगिता में पराग ने हास्य नाटकों को तरजीह दी थी।

इस दृष्टि से नाटकों के विषयों की कल्पना भी की जा सकती है और मौलिक कहानियों तथा परंपरित लोककथाओं से विषयों का चयन किया जा सकता है। अनेक सफल बाल नाटक लोक कथाओं के रूपांतर हैं। रूसी लेखक सैमुएल माशांक कृत 'छोटा सा घर'[1] नाटक मूलतः एक रूसी लोककथा है। इसी प्रकार 'ब्राह्मण ओ ब्राह्मणी'[2] और 'शैयाल पंडितेर पाठशाला'[3] लोक कथाएँ हैं जिनके आधार पर बंगला में सफल हास्यपूर्ण काव्य नाटकों की रचना हुई है।

पंचतंत्र और हितोपदेश की अनेक कहानियों के भी सफल नाट्य रूपान्तर हो सकते हैं।

बाल जीवन के अतिरिक्त नाटक की कथावस्तु परियों, पशु-पक्षियों, वनस्पतियों और पेड़-पौधों तक से ली जा सकती है। पशु-पक्षियों की कहानियों में तो बालकों के मनोरंजन और शिक्षा, दोनों के तत्व निहित हैं।

स्वातंत्र्ययोत्तर बाल नाटक

हिंदी में बाल नाटकों का विकास स्वातंत्र्यपूर्वकाल में ही हो गया था। पत्र-पत्रिकाओं में अनेक नाटक प्रकाशित हुए थे। सन् १९१७ में मिश्रबंधु कार्यालय से नर्मदाप्रसाद मिश्र द्वारा संपादित सरल नाटकमाला पुस्तक प्रकाशित हुई थी। इसमें ४४ नाटक थे और संपादक ने बड़ी सूझ-बूझ के साथ पुस्तक का संपादन किया था। नाटकों के चयन में उसने उद्देश्य यह रखा था कि नाटकों में—

१. छोटा सा घर : मूल सैमुएल माशांक : अनु० श्रीप्रसाद।
२. ब्राह्मण ओ ब्राह्मणी : प्रदीपकुमार राय: संदेश मासिक, दिसम्बर १९६७
३. शैयाल पंडितेर पाठशाला : संदेश मासिक : अप्रैल, १९६९।

(१) अश्लीलता या अनुचित शृंगार रस न आये
(२) स्त्री पात्र न आवें
(३) परदों का विशेष उलझाव न रहे
(४) यथा संभव शिक्षा मिले[१]

पर ऐसा लगता है कि संपादक ने सिद्धांत ही स्थिर किए, नाटकों के चयन में उनका पालन नहीं किया। संभवतः नाटककारों के नाम देखकर उनकी नाट्य कृतियों पर विश्वास कर लिया गया। अन्यथा ऐसे अशिष्ट और भद्दे नाटक न संकलित होते—

रामू : गुरुजी महाराज, धन्य है आपको (दोनों हाथ जोड़ता है)। आपकी इस मूर्खता पर मेरे पिता जी अत्यंत क्रुद्ध हुए। उन्होंने कहा कि आपने जो निबंध दिया है, वह आपकी मूर्खता को प्रदर्शित करता है। इस निबंध के कारण कल मेरे हाथ पैर दुरुस्त हो गए।[२]

यहाँ पर नाटककार का उद्देश्य हास्य की सर्जना करना प्रतीत होता है। पर अशिष्टता या अश्लीलता हास्य नहीं है। हास्य सुरुचिपूर्ण और तर्कसंमत होना चाहिए। किंतु इसका मुख्य कारण उस युग में नाटकों का न खेला जाना और किसी बाल रंगमंच का न होना है। मंच पर ऐसे नाटकों का प्रेक्षण असभ्य है। यद्यपि संकलन करते समय संपादक ने नाटक के संबंध में बड़े पते की बातें कही हैं—'मेरी समझ में, नाटकाभिनय इतना आवश्यक है कि प्रत्येक विद्यार्थी को वह जानना ही चाहिए। क्योंकि नाटक खेलने से हावभाव प्रकट करने की योग्यता होती, वृहत् जनसमुदाय के समक्ष अपने विचार स्वातंत्रता से प्रकट करने का साहस होता तथा यदि नाटक अच्छे लेखकों के लिए गए होवें तो अभिनेताओं को अच्छी भाषा सीखने का अवसर प्राप्त होता है'--पर नाटकों का लेखन और संपादन दोनों का दृष्टिकोण सीमित है। तभी 'स्त्री पात्र न आवें' और 'यथासंभव शिक्षा मिले' जैसे नाटकों का चयन किया गया। आज ऐसे नाटक का कोई महत्व नहीं, जिसमें स्त्री पात्र न हों। इसी प्रकार कोरी शिक्षा के नाटक नीरस ही माने जाएँगे। स्वाभाविक बाल नाटक वह है जिसमें जीवन की स्वाभाविकता की भाँति बालक बालिकाएँ अभिनय करें और बालकों के हँसखुशी, उल्लास तथा खेलभरे जीवन की जिसमें अभिव्यक्ति हो।

---

१. सरल नाटकमाला : सं० नर्मदाप्रसाद मिश्र : भूमिका, पृ० ७।

२. पाठशाला का एक दृश्य : रामचंद्र रघुनाथ सर्वटे : (सरल नाटकमाला में संकलित), पृ०८८।

फिर भी इस नाटक ने रंग चेतना पैदा की और पुस्तक प्रचारित हुई।

स्वातंत्र्यपूर्व नाटकों का मंचन कहाँ, कब और किस प्रकार हुआ इसका कोई वृत्त उपलब्ध नहीं है। तत्कालीन परिस्थितियों में विशेष नाट्य आयोजन की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

बालनाटक का विकास सही माने में स्वातंत्र्योत्तर काल में ही होता है। छिटपुट नाट्य प्रकाशनों के अतिरिक्त पराग ने दो दो बाल नाटक प्रतियोगिताएं आयोजित कीं। इन प्रतियोगिताओं में कतिपय श्रेष्ठ नाटक पुरस्कृत हुए, साथ ही अनेक अच्छे नाटक लिखे और प्रकाशित किए गए। प्रतियोगिता में आए नाटकों के साथ मंच निर्देश भी माँगे गए। तात्पर्य यह कि पूरी तरह रंगदृष्टि स्थापित हुई। पराग के अनेक नाटक सफलता के साथ मंचस्थ भी हुए हैं।

पुस्तकाकार प्रकाशनों में प्रतिनिधि बाल एकांकी'[1] महत्त्वपूर्ण संकलन है। इसमें सुविख्यात साहित्यकारों द्वारा लिखे गए बाइस नाटक संकलित हैं और अधिकांश हिन्दी की श्रेष्ठ बाल पत्रिकाओं में प्रकाशित होकर लोकप्रिय हो चुके हैं। कई एकांकियों को बच्चों ने अवसर मिलने पर खेला भी है और कुछ बाल एकांकी प्रतियोगिताओं में पुरस्कृत भी हो चुके हैं।

संकलित नाटक 'सीख और मनोरंजन' दोनों उद्देश्यों को पूरा करते हैं। पर सबसे बड़ी विशेषता है इनकी अभिनेयता और 'अत्यंत साधारण परिस्थितियों और सामान द्वारा इन्हें रंगमंच पर खेला जा सकता है'।[2]

निश्चित रूप से भूमिका में बताई गई ये विशेषताएँ नाटकों में उपलब्ध होती हैं। एक नाटक के स्वाभाविक संवाद इस प्रकार हैं—

जज : (मेज को थपथपाते हुए) खामोश। खामोश।
कृष्णा : जज साहब, हम इस औरत के सताए हुए हैं।
जज : यह औरत कौन है ?
वीणा : हुजूर, वह हमारी आया है।
कृष्णा : यह हम पर बहुत जुल्म करती है।
वीणा : यह हमें जीने नहीं देती।

---

१. प्रतिनिधि बाल एकांकी : सं० श्रीकृष्ण, योगेन्द्र कुमार लल्ला : प्र० आत्माराम एंड संस : दिल्ली।

२. वही : भूमिका :

कृष्णा : यह हमें मार डालेगी।

मदन : हुजूर, ये झूठ बोल रहे हैं आया का कोई कसूर नहीं।[1]

दूसरा प्रतिनिधि संकलन चुने हुए एकांकी है। इसका प्रकाशन भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय ने किया है और इसमें १८ बाल एकांकी रखे गए हैं। इसके कुछ अच्छे एकांकी है—'न्याय' (विष्णु प्रभाकर), खेल के मैदान में (श्रीकृष्ण), सिद्धार्थ का ग्रहत्याग (नरेश मेहता), दो सहेलियाँ (ललित सहगल) तथा शिशु नगर (प्रफुल्लचंद्र ओझा मुक्त)।

इन नाटकों में यद्यपि बालकों के खेल जीवन की अभिव्यक्ति हुई है, पर शिक्षा का स्वर प्रधान है।

रघुवीर शरण मित्र ने बच्चों के लिए कविताएँ और नाटकों की रचना की है। नाटकों का संकलन है 'बच्चों का देश।' इसमें राखी, दशहरा, होली, दीवाली आदि त्योहारों पर नाटक संकलित हैं। सभी नाटकों में कुछ सिखाने और उपदेश देने की प्रवृत्ति विशेष है जैसे—'हमारा देश प्रेम और शांति का देश है, हमारे त्योहार ऊँचे आदर्शों के त्योहार हैं, हम अपने त्योहारों का रूप नहीं बिगाड़ेंगे। होली प्रेम और मिलन की गीत गाती हुई आती है, काले-नीले मुँह करने नहीं आती है। हम स्वाधीन और गौरवशाली देश के आदर्श बालक हैं। हम अपने त्योहार गंदगी से नहीं, गौरव से मनाएँगे।'[2]

उपर्युक्त संवाद नाटक की दृष्टि से अनुपयुक्त नीरस वक्तव्य मात्र है।

एक महत्वपूर्ण संकलन मस्तराम कपूर 'उर्मिल कृत है' 'बच्चों के नाटक'। इसमें छः नाटक संकलित हैं। लेखक ने 'ये एकांकी' भूमिका में लिखा है—'सभी एकांकी छात्र जीवन से सम्बन्धित हैं। इनमें शिक्षा का गुण विद्यमान हैं। पर यह शिक्षा उपदेश वचन के रूप में नहीं है। जीवंत पात्र के सशक्त चरित्र में से उसका प्रस्फुटन हुआ है। हास्य व्यंग्य की धारा सर्वत्र बड़े सहज भाव से बही है।'

नाटक अभिनेय है और थोड़े सामानों से मन्चित हो सकते हैं।

डा० भानुशंकर मेहताकृत नाटक है 'वे सपनों के देश से लौट आए हैं। यह कल्पना प्रधान नाटक है जिसमें सुधारवादी दृष्टि प्रमुख है।

हबीब तनवीर कृत 'गधे' नाटक एक लोक कथा पर आश्रित है। यह अत्यंत मनोरंजक और अभिनेय नाटक है।

---

१. **आया का मुकदमा : गंगा प्रसाद, पृ० ३। (प्रतिनिधि बाल एकांकी में संकलित)।**

२. **बच्चों का देश : रघुवीर शरण मित्र, पृ० ५६।**

कमलेश्वर कृत 'पैसों का पेड़' भी महत्त्वपूर्ण संकलन है जिसमें छः एकांकी हैं। सभी नाटक मनोरंजक और अभिनेय है तथा आदर्श मनोवृत्तियों के विकास के उद्देश्य से लिखे गए हैं।

अन्य उल्लेख्य नाट्यकृतियाँ हैं—गार्गी के बाल नाटक (परितोष गार्गी), मोटे मियाँ (बिमला लूथरा), कमलेश्वर के बालनाटक (कमलेश्वर), नटखट नन्दू (दयाशंकर मिश्र ददाजी), आओ, नाटक खेलें (सिद्धनाथ कुमार), परीक्षा (श्रीकृष्ण), माँ का बेटा (विष्णु प्रभाकर), बालकों के चार नाटक (प्रफुल्लचंद्र ओझा मुक्त) आदि।

बाल साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा नाट्य विधा में रचना करना कठिन रहा है। कारण, यह प्रयोगात्मक विधा है और इसमें नाटक की मंच के संदर्भ में मूर्त कल्पना करनी पड़ती है। यही कारण है कि हिन्दी में बाल नाट्य कृतियाँ कम है। पर इधर जो रंग चेतना पैदा हुई है, वह इस बात की सूचक है कि भविष्य में अच्छे बाल नाटक लिखे जा सकेंगे।

बड़ों के लिए जिस प्रकार रंगमंच की स्थापना हुई है, बाल नाटकों के लिए भी भविष्य में बाल रंगमंच की स्थापना हो सकती है। साथ ही जिस प्रकार सरकारी स्तर पर राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय (नेशनल स्कूल आफ ड्रामा) संचालित होता है, भविष्य में बाल नाट्य विद्यालय बाल नाटकों को विधिवत प्रशिक्षण प्रदान करेंगे। दिल्ली में दिल्ली चिल्ड्रेंस लिटिल थियेटर बालकों का सभी स्तरों पर कलात्मक विकास कर रहा है, जिसमें संगीत के साथ उनका नाट्य प्रशिक्षण भी सम्मिलित हैं।

दिल्ली की अन्य शिक्षण संस्थाओं में भी नियमित नाट्य प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है। कलकत्ते में भी बालनाट्य क्रियाओं में सक्रियता रहती है, यह पहले ही कहा जा चुका है।

काव्य नाटक

कविता में बालकों की अभिरुचि होती है वे उसे गाते हैं, गेयरूप में सुनते हैं उसके छंद से आह्लादित होते हैं और गद्य साहित्य से पृथक् कल्पना का आनंद प्राप्त करते हैं। कविता की दो विशेषताएँ मुख्य होती हैं—छंद सौंदर्य जो गति पैदा करता है और भाषा की व्यंजकता।

काव्य नाटक में इन दोनों तत्वों का समावेश रहता है। मंचीय प्रस्तुति में समस्त नाट्य तत्त्व काम करते हैं, किन्तु संवाद छंद बद्ध होते हैं। संवादों को कहने की शैली वार्तालाप के स्तर पर होती है, जिसमें व्यंजना के अनुसार छंद टूटता भी है, फिर भी संवाद प्रेषण काव्य पूर्ण रहता है।

काव्य नाटक में कविता वार्तालाप का रूप ग्रहण कर लेती है। इसलिए काव्य नाटक रचना में लम्बे और जटिल छन्द की अपेक्षा वार्तालाप की शैली का सरल छन्द अधिक उपयोगी हो सकता है। मुक्त छन्द (फ्रीवर्स) भी काव्य नाटक के लिए उपयोगी होगा—जिसमें छन्द के अधिक रूढ़ बन्धन नहीं होते, केवल लयात्मकता और व्यंजकता होती है।

बालकों के लिए हिन्दी काव्य नाटकों की रचना अधिक नहीं हुई है। यह प्रयोगधर्मी विधा है। मंच पर भी काव्य नाटक प्रस्तुत करने में संभवतः कठिनाई अनुभव की गई है। पर वास्तविकता यह नहीं है। काव्य नाटक भी मंच पर उतनी ही सरलता से सफलतापूर्वक प्रस्तुत किया जा सकता है जितनी सफलता से गद्य नाटक।

काव्य नाटक में नाटक और कविता, दोनों का समन्वय रहता है, पर कविता नाटक से अधिक सशक्त रूप में रहती है। यही कारण है कि इनकी रचना बालकाव्यकारों ने की है। गद्यकारों ने नहीं क्योंकि छन्द की साधना कवियों के द्वारा ही संभव है।

उपलब्ध काव्य नाटकों में सरस्वतीकुमार दीपक का नाटक 'आराम हराम है' श्रम की महत्ता को आधार बनाकर लिखा गया है। 'आराम हराम है' का नारा एक बार देश में तेजी से प्रचलित हुआ। बड़ों की भाँति बच्चों को भी अनलस भाव से श्रम करते जाना चाहिए यह रामी नामक किसान की एक पुत्री के माध्यम से दिखाया गया है। रामी की श्यामा और रधिया दो बहनें हैं जो आलसी हैं। किसान भोला की रामी ही एकमात्र अभी पुत्री है। वाचक रामी की बाबत बताता है—

रामी दौड़ी दौड़ी आई
पाँव छुए थोड़ी सरमाई
दूध कटोरे में भर लाई

सबेरा हो चुका है। रामी पिता के दरवाजा खटखटाते ही इस प्रकार काम में लग जाती है जबकि उसकी दोनों बहनें आलस में सोई हुई हैं। भोला उन्हें जगाता है। इस पर दोनों बहनें कहती हैं—

श्यामा : रात देर तक काम किया था।
रधिया : नहीं बैठने तलक दिया था।
श्यामा : बड़ी देर से सोई मैं।

रधिया : बड़ी देर से सोई मैं।
श्यामा : इसीलिए तो सोई थी।
रधिया : इसीलिए तो रोई थी।

दोनों आलसी बहनें सोई ही रहती हैं जबकि सवेरा हो जाने के कारण रामी अपने काम में लग जाती है—

गगरी में भर लाई पानी
यह नन्हीं गुड़ियों की रानी
पहले हँसकर आटा छाना
फिर पानी में उसको साना
दिन भर उसने काम किया
नहीं जरा आराम किया।

और अंत में नाटक का कथ्य सामने आता है—

जो भी काम करेगा उसको
जीने का अधिकार है
रोटी खाना और दूध के
पीने का अधिकार है।[1]

इस प्रकार श्रम की महत्ता दिखाकर नाटक समाप्त हो जाता है।

यह संयोगात सादृश्य ही माना जाएगा कि इसी लोककथा (उक्रइनी) कृति गेहूँ की बाली में भी दो चूहों और एक मुर्गे के द्वारा श्रम का महत्त्व प्रतिपादित हुआ है। दोनों चूहे आलसी हैं और मुर्गा श्रमी। फलतः चूहे रोटी से वंचित हो जाते हैं जब कि मुर्गा अपने श्रम का फल पाता है।

दूसरा काव्य नाटक है 'राम कहानी, कहती नानी।'[2]

इसमें परंपरित रामकथा के राम के बनवास की कहानी को काव्यात्मक ढंग से नाट्य विधा में व्यक्त किया गया है। नानी पात्र वाचक का कार्य करती है वह मंच पर बैठकर बच्चों को राम कथा सुनाती है। उसके कथा सुनाने के मोड़ पर नाटक प्रारम्भ हो जाता है। कैकेयी मंथरा को आते हुए देखकर कहती है—

आरी बहन, बड़ी देरी की
कहाँ रही थी अब तक
मैं चिंतित रहती हूँ, तुझको—
देख न पाती जब तक

1. आराम हराम है : (प्रति० बाल एकांकी में संकलित) पृ० ८२-८४।
2. राम कहानी कहती नानी : श्रीप्रसाद : मध्यप्रदेश संदेश, २५ मार्च, ७२।

कैकेयी द्वारा प्रेमपूर्वक मंथरा का समाचार पूछे जाने पर वह कहती है—

मंथरा : तुम कहती हो खुशी रहूँ मैं
तुम्हें नहीं कुछ ज्ञान
अब जो कुछ मैं बता रही हूँ
उसको भी लो जान
रामचंद्र का राजतिलक है
कल होंगे वे राजा
अवध पुरी में खूब बजेगा
कल खुशियों का बाजा ।।

मंथरा ऐसा मंत्र फूँकती है कि राम को बन जाना पड़ता है—

राम : माँ, अब तो मैं बन जाऊँगा
नहीं करूँगा राज
मुझे पिता जी ने ऐसी ही
आज्ञा दी है आज

घटनाचक्र राम को वन ले जाता है, साथ ही लक्ष्मण और सीता जाती हैं। प्रस्तुत काव्य नाटक में रामकथा का इतना ही अंश लिया गया है।

'गौतम की जीवदया'[1] भी एक काव्यनाटक है जो बाल भारती में प्रकाशित हुआ था। इसकी रचना मुक्त छंद में हुई है। नाटक की मुख्य घटना गौतम के भाई देवदत्त द्वारा हंस का घायल किया जाना और गौतम द्वारा उसकी रक्षा है—

गौतम : आह, बाण यह किसने मारा
(हंस को उठाकर बाण निकालते हुए)
किसने घायल किया हंस को
बिना दोष के।
यह अपनी भूरी पांखे फैलाए सरसर
फरफर उड़ता था
हिलते जैसे कोमल पत्ते पेड़ों के
हरे हरे
डालों के ऊपर।

1. गौतम की जीवदया : बाल भारती।

गौतम हंस उठा लेते हैं। देवदत्त से विवाद होता है और अंत में मामला राजदरबार में जाता है, जहाँ, हंस गौतम को मिल जाता है।

'दिल्ली चिल्ड्रेंस लिटिल थिएटर' ने लोक कथाओं के आधार पर अनेक अभिनयार्थ लयबद्ध नाटकों की रचना कराई है। फिर भी बालकों के लिए काव्य नाटकों का अभाव है। भारतीय और विदेशी लोक कथाओं के आधार पर अच्छे काव्य नाटकों की रचना हो सकती है। पंचतंत्र और हितोपदेश की व्यंजक कहानियों के आधार पर भी काव्य नाटकों की रचना हो सकती है। रूसी लेखक सैमुएल माशांक और सौगेई मिखाल्कोव ने लोक कथाओं के आधार पर काव्यनाटकों की रचना की है। बंगला बाल साहित्यकारों ने भी लोक कथाओं को काव्य नाटकों में रूपांतरित किया है। आस्कर वाइल्ड की प्रसिद्ध कहानी 'स्वार्थी राक्षस' (सैल्फिश जाइंट) के आधार पर बंगला में भारतीय परिवेश के साथ काव्य नाटक सृजित हुआ है। कलकत्ते की सी० एल० टी० संस्था ने इसको सफलतापूर्वक अभिनीत किया है।

बाल नृत्य नाट्य

इधर बालकों के लिए नृत्य नाट्य (बैले) भी लिखे और खेले जाने लगे हैं। नृत्य नाट्य संगीत नाटक और नृत्य तीनों का मिलाजुला रूप है। इसमें अभिनेता केवल अभिनय करता है, और वह भी नृत्य के साथ। पार्श्व संगीत के माध्यम से कथा आगे बढ़ती है। नृत्य नाटक का सहायक बन जाता है।

बैले का प्रचलन योरोप में बहुत पहले से है। रूस में भी बैले सर्जना बहुत हुई है। हंस क्रिश्चियन ऐंडरसन और ग्रिम की लोक कथाओं पर निर्मित नृत्य नाट्य अंग्रेजी में काफी लोकप्रिय हुए हैं। रूसी भाषा में भी नृत्यनाट्य सर्जना लोककथाओं के आधार पर ही हुई है। ग्रिम की कहानियों पर तो चालीस नृत्यनाट्यों की अंग्रेजी में रचना हुई है, जिनमें हूंपरडिक का 'हंसेल और ग्रेटेल', प्रसिद्ध नृत्यनाट्य है। सोती सुन्दरी भी आकर्षक नृत्य नाट्य रहा है।

वास्तव में नृत्य नाट्य प्रस्तुतियों में विश्व में रूस ही सर्वाधिक ख्याति-प्राप्त है। वहाँ की नृत्य शिक्षा संस्थाओं में विधिवत बैले की शिक्षा दी जाती है और पूरे देश में बिखरे हुए नाट्य गृहों में इनके प्रदर्शन होते हैं। रूस के प्रसिद्ध नृत्यनाट्य हैं—हंस सरोवर, पत्थरों का फूल, सोती हुई सुन्दरी, पगानिनी और जिजेल। बैले की संगीत रचना भी विशिष्ट है। यह शास्त्रीय राग-

रागिनियों पर आधारित होकर भी शास्त्रीयता के भार से मुक्त रहती है। रूस में बैले की संगीत रचना करने में वाइकोवस्की, प्रोकोफिएव शोस्ताकोविच और ग्लिएर की ख्याति है।[1]

नृत्यनाट्य रचना में कवि, नाटककार और संगीतकार तीनों का व्यक्तित्व झलकता रहता है। संगीत, नृत्य, नाटक और काव्य की यह जटिल रचना है।

हिंदी में नृत्य नाट्य का प्रारम्भ हाल ही में हुआ है। रामकथा और कृष्णकथा के आधार पर इस विधा का सम्भवतः प्रारम्भ हुआ। अब लोक कथाओं को भी नृत्य संगीत रूप दिया जाने लगा है। फिर भी हिन्दी में कोई अत्यधिक प्रचलित नृत्य नाट्य अभी निर्मित नहीं हुआ है। बालकों के सांस्कृतिक कार्यक्रमों में बढ़ती हुई रुचि को देखकर नृत्यनाट्य का भविष्य उज्ज्वल लगता है।

रामकथा और कृष्णकथा के अतिरिक्त वर्ष की प्रमुख ऋतुओं और बाग-बगीचे, फूल, पौधों तथा तितलियों पर आधारित नृत्यनाट्य देखने में आए हैं। बालकों को प्रकृत्ति का जीवन अच्छा भी लगता है। अतः ऐसे नृत्यनाटक बाल प्रेक्षकों को पसन्द आते हैं।

प्रकाशित नृत्यनाट्यों में चिरंजीत की रचना है 'पुष्पनगर की राजकुमारी'।[2]

कवि ने नाटिका की योजना सूत्रधार के साथ छः दृश्यों में की है। एक नृत्य नाटिका के लिए छः दृश्य व्यवहार्य नहीं है। नाटिका की प्रमुख पात्र फूलवती पुष्प नगर के राजा सुमनपाल सिंह की पुत्री है। वह खूब हँसती है। किन्तु जब वह कुछ बड़ी हो जाती है राजा को उसका हँसना अनुचित लगने लगता है। वह उसे टोक देता है—

राजा : बेटी मेरी बात सुनो अब
बड़ी हुई तुम देखो कितनी
लाज शर्म की उम्र तुम्हारी
अच्छी नहीं हँसी यह इतनी।

---

१. बाल स्पुतनिक : खंड २ : ३, स.१६६६ (सोवियत बैले की एक झांकी) पृ० १५।

२. पुष्प नगर की राजकुमारी : चिरंजीत : साप्ताहिक हिंन्दुस्तान; १५ नवम्बर, ७०।

और बस राजा के इतना कहते ही सब कुछ बदल जाता है। हँसती हुई प्रकृति दुःखी हो जाती है। राजकुमारी की हँसी गायब हो जाती है। राजा को अपनी करनी पर पश्चात्ताप होता है। उदास राजकुमारी खाट पकड़ लेती है। तब राजा घोषणा करता है कि जो राजकुमारी को हँसा देगा, राजा उसी के साथ राजकुमारी का विवाह कर देगा तथा आधा राज्य भी देगा। राजा की यह घोषणा राज्य भर में प्रचारित की जाती है—

डोंडी वाला : सुनो, सुनो ऐ नगर वासियो
सुनो, सुनो दे ध्यान
महाराज श्री सुमनपाल का—
आवश्यक फरमान
राजकुमारी फूलवती है
अर्से से बीमार
एक दवा है केवल उसकी
हँसी ठहाके दार
हँसा सकेगा फूलवती को
जो भी करतब बाज
फूलवती का दूल्हा बनकर
पाए आधा राज

घोषणा सुनकर भाँड़, विदूषक आदि राजकुमारी को हँसाने का प्रयत्न करते हैं पर निरर्थक। अन्त में एक बन्दर के प्रयास से राजकुमारी हँस पड़ती है। सैनिक बन्दर को राजदरबार में लाते हैं। सबको चिन्ता होती है, कि राजा अपनी प्रतिज्ञा कैसे पूरी करेंगे। पर यह चिन्ता शीघ्र ही दूर हो गई, क्योंकि बन्दर राजकुमार था जो शापवश बन्दर बना था। शाप मुक्त होते ही वह राजकुमार वेश में आ गया। राजकुमारी का विवाह हो गया तथा आधा राज्य राजा ने दे दिया।

अंतिम नृत्यगीत है—
हम हँसते हैं, हँसे हमारे
साथ सकल संसार
हँसी हमारी इन फूलों में
हँसो हँसाओ खुशी मनाओ
यह जीवन का सार।

कवि ने कथ्यमूलक अन्तिम गीत न दिया होता तो नाटिका अधिक प्रभावशाली बनती। इसके स्थान पर कोई अन्य भावपूर्ण नृत्यगीत होना चाहिए था। फिर भी नाटिका भावपूर्ण और अभिनेय है। लोक कथा शैली में यह एक फंतासी है, जिसे बच्चे अभिनीत रूप में पसन्द करेंगे।

अन्य नृत्यनाटिका है 'गोबर्द्धन की कथा।'[1] इसका कथानक नाम से स्पष्ट है। कृष्ण ने इंद्र की पूजा रोककर गोबर्द्धन की पूजा कराई थी। कुपित इन्द्र ने व्रजवासियों को कष्ट पहुँचाया प्रलयंकर वर्षा करके। पर कृष्ण ने उसी गोबर्द्धन पर्वत को उठाकर ब्रजवासियों की रक्षा की।

यह कथा भागवत की है। अब तक इसको धार्मिक रूप में देखा गया। नाटिका में कृष्ण के द्वारा पर्वत उठाना आधिभौतिक घटना है। पर इसे प्रतीकवत भी मान सकते हैं। और इन्द्र अत्याचारी का प्रतीक हो जाता है। कृष्ण जननायक तथा लोकहितैषी बनते हैं।

बालकों के लिए यह नाटिका आधुनिक और प्राचीन दोनों परिवेशों में महत्वपूर्ण है, क्योंकि दोनों में कृष्ण की महानता उभरती है। पर रचना का उद्देश्य वास्तव में आधुनिक दृष्टि मूलक रहता है।

संगीत, नृत्य और अभिनय के साथ यह नाटिका मंचित होने पर काफी पसन्द भी की गई। लगभग पन्द्रह पात्रों ने इसमें भाग लिया और दर्शकों की भाँति बाल अभिनेताओं ने भी पूरी तन्मयता का अनुभव किया।

नाटिका का प्रारम्भ वाचक से होता है। प्रातःकाल का दृश्य है और वाचक इस दृश्य का अनुकथन करता है—

वाचक : फूल खिले, कलियाँ मुसकाईं
नभ में जीवन आया
जाग गई धरती, जागे वन
नव जीवन फिर छाया
गाने लगे पखेरू उड़ उड़
मीठे मीठे गाने
हलचल आई, लोग लगे
घर बाहर आने जाने
ग्वालिन चली दही लेकर के

१—गोबर्द्धन की कथा : श्री प्रसाद : मध्यप्रदेश संदेश, ३० सितम्बर, १९७२।

दूध ले चले ग्वाले
थाल सजाकर चले इन्द्र की
पूजा करने वाले।

कृष्ण इन्द्र की पूजा का कारण जानना चाहते हैं। यशोदा बताती हैं। कृष्ण विरोध करते हैं, फलतः ब्रजवासी गोवर्द्धन की पूजा करते हैं।

इन्द्र को यह सूचना मिलती और वह क्रुद्ध होकर गरज उठता है—

इन्द्र : मेरा जो अपमान हुआ है
लूँगा मैं प्रतिशोध
पागल ब्रजवासी कर बैठे
मेरा आज विरोध
श्रीकृष्ण ने बहकाया है
देखें वे परिणाम
क्या मुझको समझा है, रोका
जो पूजा का काम

पर कृष्ण सबको बचा लेते हैं। तब इन्द्र को कृष्ण की महानता का ज्ञान होता है और वह उनसे क्षमा माँगता है।

एक नृत्य नाटिका सत्यवती श्रीवास्तव कृत 'सोने की गुड़िया'[1] है जो 'रंग-मंच पर सफलतापूर्वक उतारी जा चुकी है।' इसमें कहानी के साथ-साथ कविता का भी आनन्द है।

अभी नृत्य नाट्य विद्या की दिशा में बहुत कुछ होना शेष है।

कठपुतली नाटक

कठपुतलियों का खेल भारत का अत्यन्त प्राचीन खेल है। कठपुतली या काष्ठपुत्तलिका का विकास भी संभवतः भारत में ही सबसे पहले हुआ। फिर अन्य देशों में भी यह खेला गया। पर समय के परिवर्तन के साथ भारत में इसका ह्रास हो गया। कठपुतली संचालक रूढ़ियों के कारण इसका विकास न कर सके। कुछ ऐतिहासिक चरित्रों पर ही टिके रह गए।

इधर सरकार ने कठपुतली कला को प्रोत्साहन दिया है और अब विविध विषयों को कठपुतलियों के माध्यम से प्रस्तुत किया जा रहा है।

कठपुतली कला का राजस्थान में ही मूलतः विकास हुआ। आज भी

---

1. सोने की गुड़िया : सत्यवती श्रीवास्तव : बाल साहित्य प्रकाशन, १६२ डी०, कमला नगर, दिल्ली—७।

वहीं के कलाकार कठपुतलियों का खेल दिखाते हैं।

सरकारी प्रश्रय के बावजूद कठपुतलियों का विस्तृत व्यवहार नहीं हुआ है। रूस में कठपुतली नृत्य अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति का है। वहाँ विश्वविख्यात कठपुतली संचालक सेर्गेई ओब्रोत्सोव ने इस कला में अनेक प्रयोग किए हैं और कठपुतलियों में भी बहुत परिवर्तन किए हैं। उनकी कठपुतलियाँ डोरी से ही संचालित नहीं होतीं वरन् उँगलियों में कठपुतलियाँ फँसाकर भी उनका संचालन किया जाता है। बड़ों की अनेक कथाएं शेक्सपीयर के नाटक और बालकों के लिए अनेक कृतियाँ कठपुतलियों के माध्यम से उन्होंने प्रस्तुत की है।

कठपुतली संचालकों को रूढ़ियों से मुक्त करके नई कथाएँ उन्हें प्रदान की जायँ तो कठपुतलियों के माध्यम से बालकों को शिक्षा और मनोरंजन दोनों चीजें प्रदान की जा सकती हैं। कठपुतली एक कला रूप है। इसका दो रूपों में प्रस्तुतीकरण हो सकता है— १—कठपुतलियों के रूप में और २—कठपुतली शैली के अभिनय के रूप में। बालकों की मनोरंजक कथाएँ दोनों रूपों में भी प्रस्तुत की जा सकती हैं।

'सीता विवाह' कठपुतली नाटक बालक-बालिकाओं द्वारा कठपुतली शैली में प्रस्तुत किया गया था। अभिनय की शैली ही कठपुतलियों से ली गई थी। उन्हीं की शैली की ढोलक और मुँह से बजने वाली पिपहरी। पर जब नाटक प्रस्तुत हुआ तो दर्शक लोट-पोट हो गए।

नाटक जनक की वाटिका के दृश्य के साथ प्रारंभ हुआ—

दोनों भाई पकड़े हाथ
फूल तोड़ने आए साथ
लक्ष्मण छोटे राम बड़े
फूल तोड़ते खड़े खड़े

× × ×

राम : लक्ष्मण, राजकुमारी बाई
किसे देखकर के मुसकाई

जनकराज की राज दुलारी
कितनी भोली कितनी प्यारी।

धनुषयज्ञ और सीता विवाह का यह मनोरंजक प्रसंग एक सफ़ल प्रयोग सिद्ध हुआ, जो इसकी संभावनाएँ उद्घाटित करता है।

कठपुतली नाटकों की एक पुस्तक प्रकाशित हुई है 'कठपुतली'[१] इसमें यह देश कठपुतलियों का और 'रोपो हो बाँसमती धान' नामक दो कठपुली नाटक संकलित हैं। कठपुतली एक कल्पना है। कल्पना के आधार पर ही काठ की पुतली सजीव होकर विशेष मुद्राओं में अभिनय करती है। इसके विश्वास (मेक बिलीव) का मूलाधार बच्चों की कल्पना के अधिक अनुकूल पड़ता है। लेखक ने थिओडार बान क्लेस्ट का उद्धरण दिया है—

'एक आदमी के लिए यह संभव नहीं कि वह पुतलियों के स्तर तक उतर कर उनका विश्वास करे। कारण इसका बड़ा साफ है। आदमी अपने आप में इतना अधिक चौकन्ना रहने लगा है कि अदृश्य शक्तियों को अपने माध्यम से व्यक्त करने की वंशगत शक्ति समाप्त हो गई है। अब तो यह कार्य केवल पुतलियाँ कर सकती हैं या कोई देवता कर सकता है।'[२]

लेखक ने कठपुतलियों के माध्यम से बड़ों के अनुरंजन के लिए विशेषतः नाटक लिखे हैं। पहले नाटक में एक स्वच्छ, निष्कपट समाज की कल्पना की गई है और दूसरे में ग्रामीण जीवन के सुखद रूप की अवतारणा है।

केवल बच्चों के लिए कठपुतली नाटकों की सर्जना कम ही हुई है। यदि इस दिशा में काम किया जाय तो बालकों को एक मनोरंजक नाट्य रूप मिल जायगा।

बाल रेडियो नाटक

ऊपर नाटक के विविध रूपों की विवेचना की गई है। एक नाट्य रूप आकाशवाणी से प्रसारित होने वाले ध्वनि नाट्य हैं। पर अभी इस रूप का भी अधिक विकास नहीं हुआ। छिटपुट लोक कथाओं को ध्वनि नाट्य का रूप दे दिया है। आकाशवाणी बाल कार्य-क्रमों में बाहर के बाल साहित्यकारों का अधिक योग नहीं लेती। इसीलिए इसका अधिक विकास अब तक नहीं हुआ। यद्यपि हर आकाशवाणी केंद्र के अपने बाल कार्यक्रम हैं।

बाल ध्वनि नाटकों के द्वारा बालकों का बहुत मनोरंजन किया जा सकता है। वैसे इस शैली के नाटक लिखने के लिए आकाशवाणी माध्यम को समझना आवश्यक है। पर रचनाकारों का अभाव नहीं है। मंचीय नाटकों में जिस

---

१. कठपुतली : ले० ठाकुरप्रसाद सिंह : राष्ट्रीय प्रकाशन मंदिर, अमीनाबाद, लखनऊ।

२. वही : भूमिका, पृ० ६।

प्रकार अनेक मंच द्वारा प्रस्तुत किए जाते हैं। इसमें ध्वनि द्वारा मंच पर दिखाई जाने वाली सभी बातें ध्वनि नाटक में संयोजित नहीं की जा सकतीं।

आकाशवाणी से बालकों के लिए प्रसारित ध्वनि नाटकों का कहीं क्रमबद्ध प्रकाशन नहीं हुआ। इधर वीरेंद्र मिश्र के दो ध्वनि नाटक आए हैं—१—'जय जवाहर' और २—'सुनो राम की कथा'।[१] वीरेंन्द्र मिश्र आकाशवाणी से संबद्ध रहे हैं तथा सफल गीतकार हैं। अतः आकाशवाणी के माध्यम का सही उपयोग भी हुआ है और कृतिनिर्माण में उनका कवि भी पूर्णतया उभरा है।

'जय जवाहर' में भारत के प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू की काव्यमय गाथा है जो कालपुरुष के द्वारा कहलाई गई है। बालिका पूछती है—

बालिका : चारों ओर उदासी क्यों है ?
भाग रहे हैं लोग आज क्यों
बिना किसी के कहे सुने ही
बंद हो गया काम काज क्यों ?

तब कालपुरुष जवाहरलाल नेहरू की मृत्यु का समाचार देता है और बालिका के प्रश्नोत्तरों में नेहरू जी की महिमामय जीवनगाथा बता दी जाती है—

कालपुरुष : वह देखो आनंद भवन है
कितना आलीशान है
नंदनवन के बीच खड़ा हो
गाता स्वर्गिक गान है

× × ×

कभी साइकिल पर सवार तो कभी सिपाही की पोशाक
टोपी अचकन कभी जमाते कभी लाट साहब की धाक

पर प्रश्न उठता है कि कालपुरुष जैसे जटिल प्रतीक की योजना क्या बालकों के लिए उपयुक्त है। यदि कालपुरुष के स्थान पर कथा नानी या दादी से कहलाई जाती, तो न केवल स्वाभाविक ही होती, सरल भी होती। इसी प्रकार—

'नीचे उतरो वर्तमान की सीढ़ी से'

---

१. दोनों के प्रकाशक : शकुन प्रकाशन : सुभाषमार्ग, दरियागंज, दिल्ली—६।

जैसे प्रयोग बालकों के लिए लिखी गई कृति में असंगत लगते हैं। वैसे रचना महत्त्वपूर्ण है और आगे की ऐसी कृतियों के निर्माण की दिशा निश्चित करेगी।

दूसरी कृति सुनो राम की कथा का कथ्य नाम से स्पष्ट है। रामकथा की कथायात्रा रामजन्म से लेकर राम रावणयुद्ध और अयोध्यावासी तक तेरह शीर्षक में पूरी की गई है। छंद के बंधन को शिथिल रखा गया है। वाचक वाचिका और रामकथा के अन्य चरित्रों के माध्यम से पूरी होती है।

बीच-बीच में कोरस पंक्ति है—'रामायण की राम कहानी सुन लो भई सुन लो' फिर वाचक अतीत काल में ले जाता है—

वाचक : है बहुत पुरानी, बहुत पुरानी
बहुत पुरानी गाथा
जब हिंदमहासागर में कोई
भारी ज्वार उठा था।
उस सागर में था द्वीप
द्वीप में स्वर्ण, स्वर्ण की लंका
लंका से हटा कुबेर, बजा
रावण का भारी डंका।

कवि ने ध्वनि नाटक में आधिभौतिक घटनाओं का भी उल्लेख किया है जो वर्तमान वैज्ञानिक युग में अनुपयुक्त प्रतीत होता है।

अनूदित बाल नाटक

बाल साहित्य के पाठकों की संख्या सीमित होने तथा बाल साहित्य के कम प्रचार प्रसार के कारण अनुवाद कार्य भी कम हुआ। केवल कहानी और उपन्यासों के अनुवाद ही विशेष रूप से हुए। कहानियाँ अंग्रेजी और भारतीय भाषाओं में बंगला से मुख्यतः अनूदित हुई और उपन्यास प्रायः अंग्रेजी से। इसके अतिरिक्त कविताओं और नाटकों के भी कुछ अनुवाद हुए। स्वातंत्र्यपूर्व काल में कविताओं के अनुवाद हुए थे, स्वातंत्र्योत्तर काल में नाटकों के।

नाटकों के अनुवाद अत्यन्त नगण्य है जो भारतीय और विदेशी, दोनों भाषाओं से हुए हैं। नाटकों के मंचन की ओर कम रुचि होने के कारण नाटक लिखे भी कम गए और अनूदित भी बहुत कम हुए।

अनूदित बाल नाटकों में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ब्राजीली नाटक है मारिया क्लारा माशाडो कृत 'नीला घोड़ा'। इसका अनुवाद अनंतदस अग्नि द्वारा हुआ

है।[1] मा० क्ला० माशाडो ब्राजील की ख्याति प्राप्त नाटक रचयिता हैं, जिन्होंने कठपुतली नाटकों की भी रचना की है। नाटक १९६५ में पेरिस में रंगमंच के अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन के अवसर पर यूनेस्को की रंगमंचीय मण्डली द्वारा प्रस्तुत किया गया था।

भारत में इसका प्रदर्शन दिल्ली के राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के द्वारा हुआ। इस नाट्य कृति की विशेषता यह है कि इसके प्रदर्शन में बच्चे और बड़े समान रूप से आनन्दित होते हैं। इसकी महत्त्वाकांक्षा विषयक प्रतीक योजना बड़ों के लिए है, जबकि प्रस्तुति की शैली बाल नाटकों के स्तर पर है।

प्रस्तुति के स्तर पर यह प्रयोगधर्मी नाटक भी है। सरलता और रोचकता के साथ-साथ आदमी की गहरी बेचैनी और तलाश की ओर सहज इशारा भी है। हिन्दी बाल नाट्य रचयिताओं के लिए नाट्य सर्जना की यह कसौटी है।

दूसरा अनूदित बाल नाटक 'छोटा सा घर' है जो मूलतः रूस के सुप्रसिद्ध बाल साहित्यकार सैमुएल माशांक की नाट्य कृति है। सैमुएल माशांक रूसी बाल साहित्य के सर्वोत्तम कृती हैं। कवि और नाटककार दोनों रूपों में वे ख्यात हैं।

छोटा सा घर एक लोक कथा का काव्य रूपांतर है। नाट्य निर्देश इसमें नहीं हैं जो मंचन के समय जोड़ लिए गए और फिर उसका सफल मंचन हुआ।

चूहा, मेढ़क, मुर्गा, साही, भालू और भेड़िया तथा एक वाचक इतने पात्रों से नाटक की सर्जना हुई है। छोटा सा घर के लिए प्रथम चार पात्र एक ओर संघर्षशील हैं और अंतिम तीन पात्र दूसरी ओर। संघर्ष होता है और लोमड़ी भालू तथा भेड़िया जो दुष्ट पात्र हैं, पराजित होकर भाग जाते हैं।

काव्य नाटक का काव्य रूपान्तर हुआ है और बालकों का नाटक से मनोरंजन तथा शिक्षा दोनों बातें समान भाव से मिलती हैं।

वाचक से नाटक का आरम्भ होता है—

वाचक : छोटी सी पहाड़ी पर
छोटा सा घर था
पहाड़ी पर घर था
पास ही में कलकलकल

---

१ : नीला घोड़ा : मा० क्ला० माशाडो : नटरंग : वर्ष ४, १३, १९७०।

झरने का स्वर था ।
झरने का स्वर था ।
एक दिन मेढक एक निकला उस ओर से
और सोचा, खोलूँ छोटे फाटक को जोर से

और यहीं नाटक दृश्य में बदल जाता है ।

इस नाटक के साथ एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है प्रयोग का । कल्पना यह की गई कि बालक बालिकाएँ स्वयं नाटक खेल रहे हैं । एक बालक नाटक की पुस्तक पढ़ रहा है । दूसरे बच्चे सुनने लगते हैं । तभी एक के मन में जिज्ञासा होती है कि इस नाटक को खेलें ।

दूसरा बालक : खेलें कैसे ?
पहला बालक : कैसे ?

खेला जाता जैसे ।

दूसरा बालक—मतलब कोई मंच नहीं है
परदा, सीन, सीनरी, झरना
छोटा सा, घर
कुछ भी, यहाँ नहीं है
तब हम खेलेंगे यह नाटक कैसे ?

इसका समाधान पहला बालक यह कहकर निकालता है कि मंच की कल्पना कर ली जाय अर्थात् जिस जगह वे हैं, वही मंच है । और इधर-उधर पड़े हुए टूटे फूटे बक्स आदि से छोटा सा घर बना लिया जाय और संगी-साथी विभिन्न पशु-पक्षियों का अभिनय करें ।

बालकों में नाटक करने की प्रेरणा पैदा करना इस नाटक की अतिरिक्त विशेषता है । यह भूमिका अंश मूल नाटक में जोड़ा गया है ।

बाल नाटकों के अनुवाद की संभावनाएँ भी कम नहीं है, यद्यपि किसी भी साहित्य की उपलब्धि मौलिक कृतियाँ ही होती हैं । बंगला और मराठी दोनों भाषाएँ बाल नाटकों की दृष्टि से समृद्ध हैं । पर बंगला का कोई अनुवाद देखने में नहीं आया । मराठी से कुछ प्रयास अवश्य हुए हैं ।

उर्दू से मिर्जा अदीब कृत दो नाटक शरारत [1] और तलाश का दफ्तर [2] अनूदित हुए हैं । दोनों मनोरंजक हास्य नाटक हैं साथ ही अभिनेय भी ।

१ : शरारत : मिर्जा अदीब; अनु० सुरजीत, पराग, मई १९६७ ।
२ : तलाश का दफ्तर : मिर्जा अदीब : अनु० लक्ष्मीचंद्र गुप्त : पराग, जुलाई १९७०, पृ० २४ ।

'जादू के रंग' नाम से एक रूसी नाटक का अनुवाद शिवदान सिंह चौहान का है, जो श्रेष्ठ है पर बाल नाटकों के उपेक्षित संसार में लोकप्रिय नहीं हुआ है।

हिन्दी बाल नाट्य साहित्य की यह यात्रा कम उत्साहप्रद नहीं है। इस यात्रा के पड़ावों पर राष्ट्रीय, सामाजिक पारिवारिक और वैयक्तिक समस्याएँ हैं उनके समाधान हैं। इसका क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है, अनेक रूप हैं, प्रयोग की अनेक शैलियाँ हैं, पर राष्ट्रीय नाट्य संस्था के अभाव में सभी संभावनाएँ दबी पड़ी हैं। नटरंग ने बाल रंगमंच अंक निकालकर और माशाडो कृत नीला घोड़ा पूरे प्रयोग के साथ अभिनीत करके अवश्य आशा जगाई है।

जीवनी-साहित्य

मनुष्य में अनुकरण की प्रवृत्ति बड़ी तीव्र है। यह अनुकरण सही दिशा में होता है तो व्यक्ति महान् बनता है और गलत दिशा में होने पर व्यक्ति की हानि होती है। विवेकशील व्यक्तियों ने अनुकरण को सही दिशा प्रदान की है। इसका एक रूप है जीवनी साहित्य।

जीवनी महान् व्यक्तियों की होती है। महान् व्यक्ति अपनी सच्चरित्रता कर्मठता, नैतिकता, परिश्रमशीलता आदि गुणों से अपने को अमर बना लेते हैं। जीवन पथ पर ऐसे पदचिह्न छोड़ते हैं जिन पर चलकर मानव उन्हीं की तरह महान् बन सकता है। अनेक कलाकार साहित्यकार, समाजसेवी इसी प्रकार महान् बने हैं। उन्होंने दूसरों का हित किया, अहित नहीं और अपने व्यवहार से महानता का कार्य प्रस्तुत किया।

साहित्य का अध्ययन भी एक सीमा में किसी का अनुकरण है। यह अनुकरण पाठक को आत्मसात करके उसे उदात्त और महान बनाता है। ऐतिहासिक या पौराणिक महापुरुषों के विषय में जानकर उन्हीं की तरह महान् बनने की प्रेरणा प्राप्त होती है। साहित्य का यही मनोवैज्ञानिक प्रभाव है। इसी बात को एक कवि ने इस प्रकार कहा है—

बड़े-बड़े लोगों के जीवन
बस जाते हैं मन में
हम भी उठ सकते हैं ऊँचे
इसी तरह जीवन में।
और छोड़ते हैं जब दुनिया
तब अपनी पदछाप
समय बालुका पर रखते हैं
ये जन अपने आप।[1]

१—लाइफ्ज आफ ग्रेट मैन आल रिमाइंड अस।
बी कैन मैक आवर लाइफ्ज सब्लाइम
ऐंड डिपार्टिंग लीव बिहाइंड अस
फूट प्रिंट्स आन द सैंड्स आफ टाइम

बालकों के लिए जीवनियाँ लिखने का उद्देश्य उपर्युक्त कथन में निहित है। जीवनी किसी महान् पुरुष का स्मरण और अनन्तर तादाम्यीकरण है। यह तादाम्यीकरण हृदय में स्थायी प्रेरणा पैदा कर देता है, जिससे हम भी कुछ न कुछ करने को सन्नद्ध होते हैं अथवा अपने व्यक्तित्व को बदल कर उन्नत बनाने की चेष्टा करते हैं।

महान कौन है ? इस प्रश्न का उत्तर बड़ा सरल है। वैज्ञानिक कलाकार साहित्यकार, समाज सेवी, राजनेता या प्राचीन काल के ऐतिहासिक अथवा प्रागैतिहासिक चरित्र महान् पुरुष हैं। अपने-अपने क्षेत्र में ये अपना जीवन होम करते हैं। अपनी सुख सुविधाओं की चिन्ता किए बिना ये समाज को कुछ प्रदान करते हैं। इसलिए ये महान होते हैं।

राबर्ट स्काट ने दक्षिणी ध्रुव की खोज में अपना जीवन समाप्त कर दिया। अपनी जिज्ञासा तृप्ति के लिए वह बर्फ में गल मरा। वह महान् व्यक्ति है। उसके जीवन त्याग से संसार का भौगोलिक ज्ञान बढ़ा। शेरपा तेनसिंह महान् है जिसने अनेक बाधाएँ सहकर एवरेस्ट पर भारतीय ध्वज लहराया। बरफीली हवाओं और बरफ की चट्टानों के खिसकने में प्रतिक्षण जीवन का खतरा था। उसने खतरा सहकर जीवन उत्सर्ग की परवाह न कर पर्वतारोहण के क्षेत्र में महान् कार्य किया।

तुलसीदास और रवीन्द्र महान है, क्योंकि उन्होंने संसार को महान् साहित्य दिया।

हमारी महानता की धारणा यही है। पर एक महान् वह भी है जो सिर्फ सड़क साफ करता है या हल चलाता है या सामान ढोता है। यदि वह अपने काम में तत्पर और ईमानदार है तो महान् है। अभी यह धारणा अधिक नहीं बढ़ी है। भविष्य में यह धारणा जीवनी रचना की प्रेरणा देगी।

बालकों के लिए जीवनी साहित्य की रचना का प्रारंभ बाल साहित्य के आदिकाल में ही हो गया था। इंडियन प्रेस ने सन् १९१५ में बालसखा प्रारंभ करने के साथ-साथ बाल साहित्य प्रकाशन का काम भी आरंभ किया। भारत में धार्मिक ऐतिहासिक या देवकोटि के और मानव कोटि के अनेक महानपुरुष हुए है। बालकों के लिए इनका आदर्श जीवन अनुकरणीय माना गया और भक्त बालक सोहराब रुस्तम, प्रह्लाद, तथा आल्हा ऊदल की प्रेरक जीवनियाँ प्रकाशित की गई। बाल जीवनियों के अनेक संग्रह भी प्रकाशित किए गेए जैसे चमत्कारी बालक जिसमें उन्तीस बालकों के शिक्षाप्रद जीवन चरित्र संकलित हैं

अथवा आदर्श महापुरुष जिसमें सत्रह महापुरुषों का जीवन दिया गया है और प्रत्येक बाल बालिका के लिए उपादेय माना गया है। भक्त शिशु में ध्रुव प्रहलाद आदि पाँच भक्त बालकों का जीवन चरित्र है।

जीवनी साहित्य लेखन और व्यवसाय दोनों दृष्टियों से लोकप्रिय मान लिए जाने के कारण और लेखन को सस्ता कार्य समझने के कारण अनेक जीवनियाँ प्रकाशित की गई। बाल कालिदास, बाल रवीन्द्रनाथ, युधिष्ठिर बालकों के विद्यासागर आदि जीवनियाँ आईं। पर महावीर प्रसाद द्विवेदी कृत विदेशी विद्वान् यामिनीकान्त सोम कृत बालकों के विद्यासागर और सुदर्शन कृत सोहराव रुस्तम आधिकारिक कृतियाँ मानी जानी चाहिए।

बालकों के लिए जीवनी साहित्य के रूप में प्रायः बड़ी जीवनियाँ संक्षिप्त कर दी जाती हैं। यह अवैज्ञानिक है। जीवनी साहित्य रचना की सामग्री के उपलब्ध होने पर भी लेखक की इसमें दृष्टि होनी चाहिए। यह बाल साहित्य की मौलिक विधा है। किस आयु वर्ग के लिए जीवनी लिखी गई है, उसमें घटनाएँ सजीव होकर आई हैं, या मात्र वर्णन किया गया है और रचना की भाषा स्तर क्या है ये कुछ विचारणीय प्रश्न हैं, जो जीवनी रचना के लिए आधारभूत हैं। साथ ही जीवनी के नायक से संबद्ध अनेक घटनाओं में लेखक किन पर बल देता है, यह भी दृष्टिगत प्रश्न है। इन लक्ष्यों को ध्यान में रखने पर ही जीवनी श्रेष्ठ हो सकती है।

यदि कोई लेखक किसी की महानता का कारण परिचय और प्रयास के स्थान पर दैवी चमत्कारों को मान लेता है या किसी के जीवन की दैवी चमत्कारगत व्याख्या करता है और वस्तुतः तथ्यों की उपेक्षा करता है तो आज के युग में ऐसी जीवनी अवैज्ञानिक मानी जायगी। उदाहरण के लिए लेखक का प्रयास यदि यह है कि कालिदास प्रारम्भ में महामन्द बुद्धि थे जिस डाल पर बैठे थे उसी डाल को काट रहे थे और फिर काली की कृपा से कवि हुए तो यह व्याख्या कवि के वास्तविक जीवन पर परदा ही नहीं डालेगी, बाल पाठकों के मन में अवैज्ञानिक दृष्टि भी उत्पन्न करेगी।

जीवनी साहित्य की मौलिक रचना के प्रति सही दृष्टि कम ही रही। इसी का परिणाम है कि प्रत्येक प्रकाशक ने जीवनियाँ प्रकाशित कीं। एक ही जीवनी विभिन्न रूपों में अनेक प्रकाशकों के यहाँ आवृत होती रहीं।

•जीवन से सम्बद्ध अवैज्ञानिक तथ्य का एक उदाहरण इस प्रकार है—एक बार एक ज्योतिषी ने मनूबाई को देखकर बताया कि वह भविष्य में राजसिंहा-

सन पर बैठेगी। ज्योतिषी की भविष्यवाणी सही निकली और उसका विवाह सन् १८४२ के शुभ मुहूर्त में झाँसी के राजा गंगाधर राव के साथ धूमधाम से हुआ।'[1]

भविष्य के सत्य को वर्तमान में जानना सम्भव नहीं है। यह वैज्ञानिक दृष्टि के विरुद्ध है, जिस पर लेखक ने अनजाने बल दे दिया है।

नन्द किशोर एण्ड ब्रदर्स के यहाँ से भी भीष्मपितामह (गोपाल चन्द्र वेदान्तशास्त्री) महात्मा गौतम बुद्ध (गंगाप्रसाद उपाध्याय) भारत के नेता (बेनीमाधव शर्मा), राष्ट्रपिता बापू (राम प्रकाश कपूर) तथा संत विनोबा भावे राष्ट्ररत्न नेहरू और भारत की विभूतियाँ (श्रीप्रसाद) जैसी पुस्तकें प्रकाशित हुईं।

सस्ता साहित्य मंडल ने समाज विकास माला के अंतर्गत जो जीवनियाँ प्रकाशित की हैं, वे बालकों और नवसाक्षर प्रौढ़, दोनों के लिए हैं। भीष्मपितामह, महात्माबुद्ध, चैतन्य महाप्रभु, संत तुकाराम, हजरत उमर, बाजी प्रभु देशपांडे, कस्तूरबा गाँधी, विवेकानन्द, शंकराचार्य तथा रामकृष्ण परमहंस आदि अनेक महापुरुष निवृत्त हो गए हैं। इनसे बाल पाठकों का ज्ञान तो अवश्य बढ़ता है, पर बालकों और प्रौढ़ों का मानसिक गठन भिन्न-भिन्न होता है अतः एक ही जीवनी दोनों को कैसे परितृप्त करेगी।

इधर नये दृष्टिकोण से भी जीवनी लिखने के प्रयास हुए हैं। रवींद्रनाथ टैगोर में लेखक ने लिखा है—'श्री अल्फ्रेड नोबेल ने अपनी संपत्ति अपनी संतान को नहीं दी। आपका विचार था कि बिना परिश्रम किए धन पाने पर संतान बिगड़ जाती है।'[1]

राजपाल ऐंड संस के यहाँ से प्रायः सभी आधुनिक और प्राचीन महानपुरुषों पर जीवनी साहित्य प्रकाशित हुआ है। पर जीवन लिखना प्रायः न तो मौलिक श्रेय का काम रहा है और न परिश्रम का इसमें पूरा सम्मान है। यही कारण है कि थोड़े से व्यक्तियों ने जीवनियाँ लिखीं और एक स्तर से अनेक जीवनियाँ लिख डालीं। अकेले प्राणनाथ वानप्रस्थी के नाम से तेईस जीवनियाँ हैं—सदाचारी बच्चे, महापुरुषों का बचपन, बीर पुत्रियाँ, आदर्श बालक, आदर्श देवियाँ, सच्ची देवियाँ, साहसी बालक, भारत के महान् ऋषि, गुरु गोविन्द सिंह, अच्छे बच्चे, श्यामाप्रसाद मुखर्जी, गुरुनानक देव, वीर हनुमान, सुभाषचंद्रबोष, श्रीकृष्ण, रवीन्द्रनाथ टैगोर

रवींद्रनाथ टैगोर : प्राणनाथ वानप्रस्थी। राजपाल ऐंड संस।

गौतम बुद्ध, सम्राट् अशोक, हरिसिंह नलवा, विनोबा भावे, सरदार भगतसिंह, चंद्रशेखर आजाद, चाणक्य। इसी प्रकार विनोद के नाम से छः और सत्यकाम विद्यालंकार के नाम से तीन जीवनियाँ हैं।

इससे जीवनी लेखन का सस्तापन स्पष्ट होता है। एक ही प्रकार की अनेक पुस्तकें लिखने से शैली सौंदर्य समाप्त हो जाता है।

जीवनी लेखन का सर्वोत्तम प्रयास भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय का माना जाएगा। बालगंगाधर तिलक (विष्णुचंद्रशर्मा) दादाभाई नौरोजी (सूरजनारायण मुंशी) टैगोर और मालवीय जी आदि पर बालकोपयोगी सुंदर और प्रेरणाप्रद जीवनियाँ प्रकाशित हुई हैं। लेखकों ने शैली में भी वैशिष्ट्य पैदा करने की चेष्टा की है। जैसे दादाभाई नौरोजी की जीवनी प्रश्नों से प्रारंभ होती है—

अंग्रेजों को स्वयं उनके घर इंग्लैंड में उनके कुशासन के लिए खरीखोटी सुनाने वाला सबसे पहला हिंदुस्तानी कौन था?[1]

ऐसे ही अनेक प्रश्न हैं जिनके उत्तर के साथ पुस्तक का प्रारंभ होता है। ये प्रश्न पाठक के मन में जिज्ञासा का वातावरण उत्पन्न कर देते हैं, जो किसी भी कृति की सफलता है।

पुस्तक की भूमिका में लिखा गया है—'आधुनिक भारत के निर्माताओं और देश की आजादी की लड़ाई के सेनापतियों में दादा भाई नौरोजी का नाम सबसे पहले आता है। एक साधारण पुजारी के घर जन्म लेकर वह अपनी कर्मठता, सच्चाई और ईमानदारी से महानता के शिखर पर जा पहुँचे। दादाभाई नौरोजी ने ही सबसे पहले अंग्रेजों को भारत की जनता का शोषक बतलाया।.........
भारत को स्वराज्य का नारा उन्होंने ही दिया था।

प्रकाशन विभाग से ही नवीन भारत के निर्माता और भारत के गौरव पुस्तकें प्रकाशित हुईं जिनमें स्वतंत्रता के सेनानियों और नेताओं की जीवनियाँ हैं।

पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस ने डार्विन, वाल्टेयर, एडिसन, मैडम क्यूरी और जगदीश चंद्र बसु, तथा साहित्यकारों में निराला और गालिब की महत्त्वपूर्ण जीवनियाँ प्रकाशित की हैं।

इस क्षेत्र में औपन्यासिक जीवनियों के प्रकाशन का प्रयोग उमेश प्रकाशन दिल्ली ने किया और मीरा बावरी, आचार्य चाणक्य, संत कबीर, रविबाबू आदि

---

१. दादाभाई नौरोजी : सूरज नारायण मुंशी : प्रकाशन विभाग : नई दिल्ली।

पठनीय कृतियाँ अधिकारी कथाकारों के माध्यम से प्रस्तुत कीं। हरिकृष्ण देवसरे ने 'ये कहानी वाले' में कथाकारों की रोचक जीवनियाँ प्रस्तुत कीं। इनमें पंचतंत्रकार विष्णुशर्मा से लेकर हैंस क्रिश्चियन ऐंडरसन और ग्रिम आदि विश्व-प्रसिद्ध बाल कथाकारों का जीवन परिचय दिया गया है।

बालकों के लिए जीवनी साहित्य के लेखन प्रकाशन की लंबी परंपरा रही है किंतु सजगता के साथ सृजित श्रेष्ठ जीवनियाँ कम ही हैं।

आज स्वतंत्र भारत के निर्माण के लिए महान देशवासियों की जीवनियों की और अधिक उपयोगिता है। पर उनकी रचना संयत भाव से होनी चाहिए— उनमें भाषा और शैली की ही विशेष दृष्टि अपेक्षित नहीं है, वरन् घटनाओं का चयन और लेखक का पाठकोपयोगी दृष्टिकोण भी होना चाहिए।

———

ज्ञान साहित्य

जीवन में जिस प्रकार कविता, कहानी, उपन्यास और नाटक जैसे सरस साहित्य की आवश्यकता है, उसी प्रकार ज्ञानवृद्धि करने वाले साहित्य की भी अपेक्षा रहती है। ज्ञान का सम्बन्ध सीखने से है। सीखते हुए ही मानव आगे बढ़ता है। जैसे-जैसे ज्ञान का विकास होता है, सीखने की प्रक्रिया बदलती जाती है।

बालक के सीखने की अपनी सीमाएँ होती हैं। वैसे चेतना की प्रारंभिक अवस्था में वह एक कोरे कागज की भाँति होता है। अपने चारों ओर सब कुछ उसे सीखना ही रहता है। वह जैसे-जैसे बड़ा होता जाता है, उसकी चेतना का विकास होता जाता है और उसकी जिज्ञासा बढ़ती जाती है। प्रारंभ में वह परिवार के सदस्य अपने खाद्य पदार्थ और वस्त्र आदि की जानकारी करता है। फिर उसकी जानकारी घर के बाहर फैलती है। घर के बाहर के व्यक्तियों और वस्तुओं के विषय में वह जानकारी प्राप्त करता है।

जानकारी का दायरा इसी प्रकार बढ़ता जाता है और ज्ञान स्थूल से सूक्ष्म होता जाता है। प्रारम्भिक बालक हँसने और रोने का तात्पर्य नहीं समझता, दया, ममता, और करुणा जैसी सूक्ष्म अनुभूतियों से परिचित नहीं रहता वह तो खाने पीने की वस्तुओं माता-पिता, भाई-बहन और वे खेल-खिलौने की वस्तुओं को ही जानता है।

अक्षरबोध और अध्ययन के साथ उसका ज्ञान अधिक विस्तृत होता जाता है। स्कूली शिक्षा के क्रम में पाठ्य पुस्तकें ज्ञान का माध्यम बनकर बालक के सामने आती हैं।

पर स्कूली शिक्षा की अपनी पद्धति होती है। उसके अनुसार बालक को अधिक व्यापक स्तर पर ज्ञान प्रेषित करना सम्भव नहीं है। उस चक्र में ज्ञान संप्रेषण के साथ साथ भाषा संस्कार की भी अनेक बातें जुड़ जाती हैं, जो अध्ययन पठन और मनन को तो व्यापक बनाती हैं, पर बाह्य ज्ञानप्राप्ति अपेक्षित रूप में व्यापक नहीं हो पाती।

दूसरी ओर बालक की ज्ञान प्राप्ति की भूख बड़ी तीव्र होती है। वह अपने चारों ओर के विश्व के सम्बन्ध में तर्कपूर्ण और विश्वसनीय जानकारी प्राप्त करना चाहता है। संसार में बालक सबसे जिज्ञासु होता है। फलतः सबसे बड़ा

ज्ञानार्थी। वह निरलस भाव से जिज्ञासा करता ही जाता है और हर जिज्ञासा की परिणति तर्कपूर्ण समाधान में चाहता है। आकाश को देखकर वह पूछता है—यह नीला क्यों है ? तारों के विषय में उसकी जिज्ञासा रहती है—ये कैसे चमकते हैं ? चंद्रमा, सूर्य, धरती, पेड़, पौधे, पशु पक्षी यहाँ तक की मानवोत्पत्ति के विषय में भी वह जिज्ञासा व्यक्त करता है और शिक्षकों अभिभावकों तथा माता-पिता से सही उत्तर की आशा करता है।

ये प्रश्न ज्ञानप्राप्ति की पृष्ठभूमि हैं। जो बालक जितना अधिक जिज्ञासु होगा जितने अधिक प्रश्न करेगा, वह उतना ही अधिक ज्ञानार्थी और ज्ञानी होगा। अनेक अभिभावक या माता पिता ऐसे प्रश्नों पर खीझ जाते हैं। वे बालक की जिज्ञासा पूर्ण मनोभूमि से परिचित नहीं होते। दूसरी ओर प्रबुद्ध अभिभावक बालक के प्रत्येक प्रश्न का समुचित उत्तर देकर उसके मन में ज्ञानार्जन का बीज बो देते हैं।

यह आवश्यक नहीं कि बालक स्वयं जिज्ञासा करे। जिज्ञासा बीज रूप में बालक के मन में सदा बनी रहती है। अतः स्वयं कुछ बताना भी ज्ञानार्जन कराने की दिशा में उपयुक्त माध्यम है। नेहरू जी ने इसी उद्देश्य से अपनी पुत्री के नाम लंबे लंबे पत्र लिखे जो पत्र न होकर प्रागैतिहासिक काल और ऐतिहासिक विश्व की जानकारी प्रदान करने वाले लेख थे। उनका स्तर बालक बालिकाओं के बोध के अनुकूल था। इतिहास, भूगोल, राजनीति, संस्कृति, नीति और आचार व्यवहार की उन पत्रों में सुन्दर शिक्षा दी गई है। बाद में यही पत्र 'पिता के पत्र पुत्री के नाम' से प्रसिद्ध हुए।

तात्पर्य यह है कि बालक की जिज्ञासु वृत्ति की परितृप्ति के लिए पुस्तकों की आवश्यकता होने लगती है। ये पुस्तकें संसार की प्रत्येक वस्तु के विषय में हो सकती हैं, जिसके विषय में बालक नहीं जानता और उसे जानना चाहिए। बालक की इसी जिज्ञासा तृप्ति के लिए अनेक फुटकर निबंध और अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं।

बच्चों के लिए ज्ञानद साहित्य रचना के तीन स्वरूप हो सकते हैं—'एक, लेखक का प्रमुख उद्देश्य सूचना देना हो सकता है। दूसरा उद्देश्य यह कि लेखक सूचना देने के साथ-साथ अपनी पुस्तक के विषय की व्याख्या भी करे। एक और उद्देश्य यह (जो बहुत कम होता है) कि लेखक जिस पुस्तक की रचना करे वह केवल सूचना देने और व्याख्या करने का ही कार्य न करे, बल्कि साहित्य भी

हो ।[1]

हिंदी में तीनों प्रकार की पुस्तकें उपलब्ध होंगी, पर जैसा संकेत किया गया है, उन पुस्तकों की संख्या कम ही है जो साहित्य की श्रेणी में जा सकें ।

ज्ञान साहित्य रचना की सामान्यतः दो शैलियाँ रही हैं—

१—कथात्मक

२—निबंधात्मक

कथात्मक शैली स्पष्ट रूप से निबंधात्मक शैली से सरल है । इसमें किसी कथा या पात्रों की कल्पना की जाती है । अनंतर उन्हीं पात्रों के संवादों के रूप में ज्ञान प्रेषण होता है । एक पात्र प्रश्न करता है, दूसरा उत्तर देता है । उदाहरण के लिए विनोद रेखी राजन कृत खरगोश कथात्मक लेख है । अनिल भागता हुआ जाता है और बड़े भैया से खरगोश के विषय में जिज्ञासा करता है । लेख का प्रारंभ कहानी से होता है और कहानी से ही अंत भी होता है—

'बड़े भैया अपने कमरे में बैठे पढ़ रहे थे । तभी अनिल भागता हुआ उनके कमरे में आ घुसा । उसके साथ उसका दोस्त मोहन भी था । अनिल के हाथ में सफेद बालों वाला खरगोश था ।

'अनिल खरगोश को कहाँ से पकड़ लाए' भैया ने पूछा ।

अनिल से पहले उसका दोस्त मोहन बोल उठा—'यह खरगोश मेरे चाचाजी पकड़ कर लाए हैं ।'

'भैया खरगोश तो बहुत तेज भागनेवाला होता है । फिर भला यह कैसे पकड़ में आ गया ?' अनिल ने पूछा ।

'खरगोश तेज भागने वाला ही नहीं, बल्कि बहुत डरपोक भी होता है । जरा सी आहट सुनकर भाग लेता है और आसानी से पकड़ में नहीं आता ।'[2]

ज्ञानपूर्ण वार्तालाप इसी प्रकार अंत तक चलता है और कथात्मक सरलता के साथ खरगोश के विषय में जानकारी भी मिल जाती है ।

---

१. वन, राइटर मे हैव इनफारमेशन एज हिज सोल एम । एनवर इन गिविंग इनफारमेशन, आल्सो इंटरप्रेट्स द सब्जेक्ट आफ द बुक । स्टील एनवर (आल्दो दिस इज रेयर) राइट्स ए बुक ह्विच नाट ओनली इनफार्म्स एंड इंटरप्रेट्स बट ह्विच इज, इन एडिशन लिटरेचर : द अनरिलेक्टेंट ईयर्स : लिलियन हैलेन स्मिथ, पृ० १८१ ।

२. खरगोश : विनोदरेखी राजन : चंपक : नवम्बर, १९७१ ।

चंपक में पशु-पक्षियों के विषय में इस प्रकार की अच्छी जानकारी दी गई है। 'राष्ट्रीय गौरव के चिह्न' हरि कृष्ण देवसरे रचित[1] इसी प्रकार की कृति है जिसमें राष्ट्रीय ध्वज, अशोक स्तंभ आदि राष्ट्रीय प्रतीकों के विषय में पूर्ण जानकारी दी गई है। कथात्मक शैली में प्रतीक स्वयं अपनी गाथा कहता है। 'मैं दिल्ली हूँ'[2] रामावतार त्यागी कृत नाम से स्पष्ट है। कुदसिया जैदी की पुस्तक अनोखे जानवर में विविध जानवरों का रोचक वर्णन है। यह परीकथाओं की भाँति निर्मित है जहाँ नायक कालीन पर बैठकर उड़ता है और भिन्न-भिन्न देशों में पहुँचता है। जहाँ जाता है वहाँ के जानवरों से परिचित होता है। कुसुमावती देश पाण्डे कृत वर्षा की बूँद[3] में बूँद का परिचय कथात्मक सरसता की चरमसीमा पर है। बूँद की कहानी काव्यानुभूति तक कराने लगती है। बूँद के वर्णन में ज्ञान, कथा और कविता तीनों का सम्मिश्रण हो गया है। जैसे—

एक थी बूँद, वर्षा की
गोल गोल, गोलमटोल।
आसमान से नीचे उतरी
और लटक गई बिजली के तार पर।
तार पर लगी झूलने।
हवा आती, उसे झुलाती,
धूप आती, उसे चमकाती,
बूँद बहुत, बहुत खुश थी।[4]

जीवन में ज्ञान का जितना महत्त्व है, यह बताने की आवश्यकता नहीं। संक्षेप में ज्ञान प्राप्त करके व्यक्ति अपने को अपने वातावरण में समायोजित करता है। जीवन का समायोजन मानव की गम्भीर समस्या है। इसकी उपलब्धि से जीवनमार्ग निश्चित हो जाता है।

उपर्युक्त कथात्मक या निबंधात्मक, दोनों शैलियों का उद्देश्य एक ऐसा ज्ञान भंडार प्रदान करता है जो मानव को चिन्तक और सहज बना सके।

---

१. राष्ट्रीय गौरव के चिह्न : हरिकृष्णदेवसरे : नेशनल पब्लिसिंग हाउस।
२. मैं दिल्ली हूँ : रामावतार त्यागी : साहित्य संस्थान, दिल्ली।
३. वर्षा की बूँद : चिल्ड्रेंस बुकट्रस्ट, दिल्ली।
४. वर्षा की बूँद : कुसुमावती देशपाण्डे : चिल्ड्रेंस बुक ट्रस्ट : नई दिल्ली।

यह पहले कहा गया है कि कथात्मक शैली की पुस्तकों की अधिक रचना नहीं हुई है। इसका कारण है—कथात्मक शैली की अपनी सीमा है। विशेष तर्क-पूर्ण और गंभीर विषयों का विवेचन इस शैली में सम्भव नहीं है। दूसरे अल्प-वयस्क पाठकों के लिए यह शैली उपयुक्त है, पर जब बाल पाठक में तर्क शक्ति का विकास हो जाता है, तब अनावश्यक विस्तार प्रतीत होने लगता है।

निबंधात्मक शैली तर्कप्रधान गम्भीर शैली है। इसमें विषय प्रतिपादन स्फीत रूप में न होकर अत्यन्त सूक्ष्म रूप में होता है। यद्यपि धरती, आकाश, चाँद, सूर्य, तारे, पानी, हवा, बादल, रेल, हवाई जहाज, टेलीफोन, बिजली, विभिन्न मशीनें, समाचार पत्र, पुरातत्व, भूगर्भ, भूगोल, इतिहास आदि अनेक ही नहीं अनंत विषयों पर दोनों शैलियों में रचना हो सकती है, पर निबंधात्मक शैली तर्क सम्मत, सूक्ष्म और बौद्धिक अभिनिवेश की वास्तविक शैली है। और इसी शैली में अधिकांश स्फुट निबन्धों तथा पुस्तकों की सर्जना हुई है।

निबंधात्मक शैली के भी स्तर हैं। आयुवर्ग के अनुसार इसमें व्यंजना गूढ़ होती जाती है।

स्वातंत्र्योत्तर काल में इस दिशा में महत्त्वपूर्ण लेखन हुआ है। कई ऐसी मालाएँ प्रारम्भ हुई जिनके अन्तर्गत व्यापक जानकारीपूर्ण सर्जना हुई। राजपाल ऐंड संस की ओर से भावगतशरण उपाध्याय ने भारत की विस्तृत जानकारी प्रदान की। भारत की कहानी, भारतीय संस्कृति की कहानी, भारतीय नगरों की कहानी, भारतीय नदियों की कहानी, भारतीय साहित्यों की कहानी, भारतीय भवनों की कहानी आदि महत्त्वपूर्ण ज्ञान पुस्तकें हैं। पुस्तकों की भाषा भी सरल है; कुतुबमीनार के परिचय में लेखक लिखता है—

'इसके बनाने में तीन-तीन बादशाहों का हाथ लगा है। कुतुबुद्दीन ऐबक, अल्तमश और फीरोजशाह तुगलक का। शायद कुतुबुद्दीन ने इसे अपनी किसी विजय की यादगार में खड़ा करने का मंसूबा बाँधा था। पर पहली मंजिल बनने के बाद ही वह इस दुनियाँ से चल बसे। अगली तीन मंजिलें उसकी, गुलाम वंश के बादशाह अल्तमश ने तैयार कराई। पाँचवीं मंजिल लाट के आरंभ होने के करीब डेढ़ सौ साल बाद बनी। उसे फीरोजशाह तुगलक ने १३६८ ई० में बनवाया। उस साल बिजली गिर जाने से लाट का ऊपरी हिस्सा कुछ टूट गया था, सो उसकी मरम्मत कराते वक्त फिरोज ने चौथी मंजिल को कुछ छोटा कर एक नई पाँचवीं मंजिल भी जोड़ दी। उसने पत्थर भी दूसरे इस्तेमाल किए। पहले की मंजिलें लाल पत्थर की बनी थी। उसने नई मंजिल में सफेद पत्थर

लगवाये ।[1]

उद्धृत अंश ऐतिहासिक जानकारी से समृद्ध है । पर लेखक भाषा रचना के विषय में अधिक सजग नहीं रहा है । इसी का परिणाम है कि विषय प्रतिपादन में वांक्षित सरसता नहीं है । वाक्य गठन भी जल्दीबाजी का बोध कराता है ।

चित्रसज्जा और मुद्रण के क्षेत्र में दिल्ली के चिल्ड्रेंस बुक ट्रस्ट को ख्याति मिली है । उसने भी 'दुम की कहानी' और कौवा जैसी सुन्दर रचनाएँ प्रस्तुत की हैं । डा० एच० एस० बिश्नोई ने विभिन्न जीवों की दुमों की उपयोगिता का सविस्तार वर्णन किया है । पुस्तक पाठक को जीवविज्ञान की पर्याप्त जानकारी देती है । इसी प्रकार कौवा पुस्तक में के० शिवकुमार ने कौओं के तौर-तरीकों, आचरण, स्वभाव आदि का पूरा परिचय दिया है ।

सुरेश सिंह पशु-पक्षियों और कीड़े-मकोड़ों के विषय में बहुत पहले से जानकारी देते रहे हैं । जीवन जगत् उनकी इसी जानकारी का वृहत् प्रस्तुतीकरण है । कीड़े-मकोड़े'[2] उनकी अन्य पुस्तक हैं जो कीड़े-मकोड़ों का जीववैज्ञानिक परिचय कराती है ।

भारत में पुराने समय से अतर्क्य कल्पनाएँ और अन्धविश्वास चले आ रहे हैं । अब वैज्ञानिक जानकारी देने की ओर काफी झुकाव बढ़ गया है । इस उद्देश्य से विज्ञान को सरलीकृत करके प्रस्तुत किया जा रहा है । ऐसी पुस्तकों में जहाँ मौलिक हैं, वहीं अनूदित भी हैं । अंग्रेजी की ह्वाई ऐंड हाउ शृंखला की सितारे, हवाई जहाज, मौसम, बिजली, राकेट, मशीनें, हमारा शरीर विज्ञान के खेल आदि कई विषयों पर सचित्र अनूदित ग्रंथ शिक्षा भारती ने प्रकाशित किए हैं । ये प्रकाशन महत्त्वपूर्ण हैं । अधिकारी विद्वानों द्वारा लिखे गए ग्रंथों से पर्याप्त जानकारी होती है ।

पानी की रचना वैज्ञानिक आधार पर होती है । लेखक केशवसागर ने पानी के अन्दर इसका भौगोलिक और वैज्ञानिक दोनों रूपों में परिचय दिया है । बादलों का सम्बन्ध भी पानी से है । अस्तु बादल का भी परिचय दिया गया है । पानी के साथ वैज्ञानिक प्रयोग भी दिखाए गए हैं । पानी की शक्ति और उपयोगिता को भी विस्तार से समझाया गया है ।

अन्य महत्वपूर्ण पुस्तकें हैं आओ पुस्तकालय चलें (एस० आर० मित्तल), सड़कों की कहानी (आशा लता मलैया), पानी बोला (रामचंद्र तिवारी,

१. **भारतीय भवनों की कहानी : भगवतशरण उपाध्याय, पृ० ३० ।**

२. **सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन, दिल्ली ।**

सिद्धि तिवारी), देश देश के बच्चे (के० डी० वैश्य, बंसीधर), आदमी का जन्म (मन्मथनाथ गुप्त), अजगर (रमेश वेदी), भारत के हस्तशिल्प (सुभाषिणी), भारत के महान वैज्ञानिक (हरीश अग्रवाल), दुनियाँ रंगबिरंगी (श्रीकृष्ण, जयकृष्ण भारती), दूरबीन की कहानी (वेदमित्र), मैं हवा हूँ (व्यथित हृदय), जंगल की गोद में (श्रीकृष्ण), विज्ञान के जादू (मनोहरलाल वर्मा), नन्हे साथी (हरिकृष्ण देवसरे), सिक्कों की कहानी (मनोहर लाल वर्मा), आग की कहानी (केशवसागर), हमारे पक्षी (रुद्र दत्त मिश्र), आवाज (केशवसागर) आदि ।

वस्तुत: हिन्दी में बाल साहित्य का प्रकाशन कम नहीं है, वैसे हिन्दी भाषी बाल जगत् को देखते हुए अत्यल्प है । फिर भी जो बाल साहित्य है, उसमें जहाँ कुछ वास्तविक है, वहीं ऐसा साहित्य भी है जो बाल साहित्य की कसौटी पर खरा नहीं उतरता ।

पर अच्छे बाल साहित्य का भी समुचित प्रचार प्रसार नहीं है, इसका मूल कारण हिन्दी क्षेत्र का शिक्षा स्तर और बाल शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण है ।

बाल साहित्य की सात दशकों की यात्रा में काव्य, कहानी, उपन्यास, नाटक, निबन्ध आदि सभी कुछ सर्जित हुआ है । स्वातंत्र्यपूर्व के बाल साहित्यकारों ने भी बड़ी लगन के साथ बालकों के लिए ललित साहित्य के साथ-साथ ज्ञान साहित्य की रचना की थी । वह साहित्य अब अनुपलब्ध भी होता जा रहा है । बड़ों के उचित दृष्टिकोण के अभाव के कारण काफी बाल साहित्य नष्ट भी हो गया और उन्हीं के प्रयास के अभाव में बाल जगत् अपना साहित्य प्राप्त करने में पूर्ण सफल नहीं हो पाता ।

आज बाल साहित्य का जैसा विकास होना चाहिए था, वैसा नहीं है । भारतीय भाषाओं में मात्र बंगला भाषा का बाल साहित्य ही अधिक समृद्ध है । इसके बाद हिन्दी बाल साहित्य है जो हिन्दी भाषी विशाल बाल जगत की तुलना में नगण्य है । अब तक बाल काव्य की कोई ऐसी ग्रंथावली प्रकाशित नहीं हुई, जिसमें अद्यावधि प्रतिनिधि बालकाव्य समाविष्ट हो जाता ।

बाल साहित्य सम्बर्द्धन के लिए सरकारी स्तर पर भी प्रेरणा कम है । उचित होता कि बाल साहित्य को बाल शिक्षा की नींव मानकर प्रोत्साहित किया जाता। सरकार प्रकाशन, पुरस्कार और अपने आकाशवाणी, केन्द्रों के माध्यम से बाल साहित्य के विकास में सहयोगी बन सकती थी । पर उसके अनियोजित प्रयासों के कारण प्रेरणाप्रद कार्य नहीं हुआ है ।

शिक्षा के बदलते मान बाल साहित्य के लिए सहयोगी होंगे, ऐसी आशा की जा सकती है । बालकों तक बाल साहित्य पहुँचाने में अभिभावकों के अतिरिक्त शिक्षा संस्थाओं का भी गम्भीर दायित्व है । □□

सहायक ग्रन्थ सूची

बाल गीत साहित्य	:	निरंकार देव सेवक
शिक्षा मनोविज्ञान	:	चंद्रावली लखनपाल
मेघदूत : पूर्वमेघ	:	कालिदास
वाल्मीकि रामायण	:	
बांग्लाशिशुसाहित्येर क्रमविकास	:	आशा गंगोपाध्याय
महाभारत: आदि पर्व	:	
पंचतंत्र	:	विष्णु शर्मा
हितोपदेश	:	नारायण पंडित
कथासरित्सागर	:	सोमदेव
संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास	:	वाचस्पति गैरोला
हिन्दी विश्वकोश : खंड चार जातक	:	
संस्कृत साहित्य का इतिहास	:	बलदेव उपाध्याय
हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों के कतिपय खोज विवरण	:	नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास भाग १६	:	नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी
हिन्दी किशोर साहित्य	:	ज्योत्स्ना द्विवेदी
रवीन्द्रनाथ	:	डॉ० शिवनाथ
ग्रिम की कहानियाँ	:	अनु० डॉ० विष्णुस्वरूप
रूसी लोक कथाएँ	:	ए० पोमेरान्त्सेवा
हमारा ग्राम साहित्य	:	रामनरेश त्रिपाठी
हिन्दी बाल साहित्य : एक अध्ययन	:	डॉ० हरिकृष्ण देवसरे
बाल दर्शन	:	कृष्ण विनायक फड़के : एम० ए०
ज्ञान सरोवर भाग–२ :	:	केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय
निमाड़ी और उसका लोक साहित्य	:	रामनारायण उपाध्याय।
हिन्दी साहित्य का इतिहास	:	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
भारतीय शिक्षा का इतिहास	:	रमणीकांत सूर तथा श्यामाचरण दुबे
हिन्दी साहित्य कोश : २	:	ज्ञानमंडल वाराणसी

भारतेन्दु ग्रंथावली : प्रथम भाग	:	नागरी प्रचारणी सभा
आबोलताबोल	:	बंग्ला बाल काव्य संग्रह : सुकुमार राय
भाषा की शिक्षा	:	सीताराम चतुर्वेदी
बाल साहित्य	:	रवीन्द्रनाथ टैगोर
टापुर टुपुर	:	बंगला कविता संग्रह : मोहित घोष
बूढ़े बाबा का दस्ताना	:	विदेशी प्रकाशन गृह मास्को
बुद्धूमल के कारनामे	:	निकोलाई नोसोव
जादूगर कबीर	:	विजय गुप्त मौर्य (अनु० मनहर चौहान)
प्रतिनिधि बाल एकांकी	:	योगेन्द्र कुमार लल्ला : श्रीकृष्ण
रवीन्द्रनाथ टैगोर	:	प्राणनाथ वानप्रस्थी
चाइल्ड स्टडी	:	रेवरेंड जी० एच० डिक्स
द रूडीमेन्ट्स आव क्रिटिसिज्म	:	ई० ए० ग्रीनिंग लैंबोर्न
ए क्रिटिकल हिस्ट्री आफ चिल्ड्रेंस लिटरेचर	:	कानोलिया मीग्स
राइटिंग फार चिल्ड्रेन टु डे व्हाई ऐंड हाऊ	:	बाल भवन दिल्ली
चिल्ड्रेन ऐंड बुक्स	:	मे० हिल आरबधनाट
क्लासिकल ड्रामा आव इंडिया	:	हेनरी डब्ल्यू० वैल्स
डिक्शनरी आफ़ वर्ल्ड लिटरेरी टर्म्स	:	टी० शिप्ले
स्टैण्डर्ड डिक्शनरी आफ फोकलोर	:	जार्ज फरजाग, भाग २
ए बुक आफ लीयर	:	एडवर्ड लियर
गिफ्ट बुक आफ नर्सरी राइम्स	:	डीन ऐंड संस लंदन
द टीचिंग आफ द मदर टंग	:	डब्ल्यू० एम० रॉयबर्न
द अनरिलेवटेंट ईयर्स	:	लिलियन हेलेना स्मिथ
एंथोलोजी आफ चिल्ड्रेंस लिटरेचर	:	एडना जानसन आदि
ए पेरेंट्स गाइड टु चिल्ड्रेंस रीडिंग	:	नेंसी लैरिक

पत्र-पत्रिकाएँ

सुधा	:	मासिक
संदेश	:	बंगला बाल मासिक
विद्यार्थी	:	मासिक
रीडर्स डाइजेस्ट	:	मासिक
द टाइम्स आफ इंडिया	:	अंग्रेजी दैनिक
पराग	:	बाल मासिक के विभिन्न अंक
दिनमान	:	साप्ताहिक
नंदन	:	बाल मासिक के विभिन्न अंक
मधुमती	:	मासिक
चंपक	:	बाल मासिक के विभिन्न अंक
नटरंग	:	त्रैमासिक
बालसखा	:	बाल मासिक
कुमार	:	बाल मासिक
बानर	:	बाल मासिक
बाल भारती	:	बाल मासिक
शिशु	:	बाल मासिक
आलोचना	:	त्रैमासिक
बालक	:	बाल मासिक
किशोर	:	बाल मासिक
उपलब्धि	:	काशी विद्यापीठ की शोध पत्रिका मासिक
बालस्पुतनिक	:	रूसी दूतावास का हिन्दी बाल मासिक

———